सारा आकाश

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

उखड़े हुए लोग
शह और मात

लघु-उपन्यास

कुलटा

कहानी-संग्रह

दरवाज़ों की मूर्तियाँ
खेल खिलौने
जहाँ लक्ष्मी कैद है
अभिमन्यु की आत्म हत्या

इंटव्यू

एण्टन चेखव एक काल्पनिक इंटव्यू

अनुवाद

चेखव के तीन नाटक
वसन्त-प्लावन } तुर्गनेव
प्रथम प्रेम }
हमारे युग का एक नायक । लर्मोन्तोव

कविताएँ आवाज़ तेरी है

सारा आकाश

राजेन्द्र यादव



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - इलाहाबाद - बम्बई - पटना

मूल्य पाँच रुपये
पहला संस्करण, १९६०
© १९६०, राजेन्द्र यादव, आगरा
प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली
मुद्रक हीरा आर्ट प्रेस दिल्ली।

प्रकाश के नाम

सारा आकाश

मेरे लिए यह तीसरा उपन्यास भी है और पहला भी। इसकी मूल कहानी को जब मैंने 'रफ़' रूप में लिखा था तो नाम दिया था 'प्रेत बोलते हैं'। उस कहानी ने प्रेस के दर्शन भी किये और पुस्तक का रूप भी पाया—कुछ समीक्षाओं ने उसे जाना और पढ़ा भी। लेकिन वास्तविकता यह है कि पुस्तक बाजार में नहीं ही आई, न आएगी। अब लगभग दस साल बाद मैंने जब उसी कहानी को अलग परिवेश और प्रभाव देने के लिए एकदम नये सिरे से लिख डाला है, नये अर्थ और अभिप्राय दिये हैं तो नाम भी नया ही दे दिया है। शायद यह रूप और नाम अधिक सही और व्यापक है

"सेनानी करो प्रयाण अभय, भावी इतिहास तुम्हारा है
ये नखत अमा के बुझते हैं सारा आकाश तुम्हारा है।"

तेरह-चौदह वर्ष पहले किशोर-मन में गूंजती कवि 'दिनकर' की ये दो पंक्तियाँ उपन्यास के नाम की प्रेरणा हैं और इन्हीं के संदर्भ में प्रस्तुत कथा अपनी सार्थकता भी खोजती है। अपनी पीढ़ी की ओर से बोलूं तो कहूँ इस कहानी के व्याज, इन पंक्तियों को पुनः विद्रोही कवि' को लौटा रहा हूँ, कि आज हमें इनका अर्थ भी चाहिए। यों कहानी की पृष्ठभूमि पहले चुनाव से पहले की है लेकिन वास्तविकता आज सन ६० में भी बदली नहीं है।

जिन्होंने अपनी ओर से बढ़कर सम्मतियाँ और सुझाव दिये हैं उनकी शुभ-कामनाएँ चाहूँगा ताकि अपने समय की बेचैनी और संघर्ष को और भी अधिक ईमानदारी से आँक और अंकित सकूं

राजेन्द्र यादव

पूर्वार्ध : साँझ

बिना उत्तर वाली दस दिशाएँ

एक

बिना किसी ताल और लय के धमाधम पिटती ढोलक और औरतों के चिंचियाते स्वर अचानक रुक गए। 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' के साथ सारी औरतें-बच्चे गली वाले जंगले और छज्जों पर चढ़ आए। नीचे फाटक पर कमर लचका-लचकाकर ताली बजाते हिजड़े अपने 'जिया जिया रे लला' का अलाप भूलकर बौखलाए-से ऊपर मुंह उठा उठाकर ताकने लगे।

गली के पार, ठीक हमारे घर के सामने वाले साबल की बहू मिट्टी का तेल छिड़ककर काठरी में जल मरी थी। धुएं के बगूले देखकर लोग भागे, लेकिन किवाड़ तोड़ते तोड़ते तो उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। हाय, ऐसी शुभ घड़ी में यह सब क्या हुआ ? जाने किस अनिष्ट की आशंका से सबके दिल धड़क उठे। ऐसी चीख पुकार, भाग दौड़ मच गई थी जैसे कहीं भूचाल आ गया हो।

मैंने अपने को विश्वास दिलाना चाहा, लेकिन विश्वास ही नहीं होता था कि आज मेरी ही सुहागरात है।

मीलन भरी, गंदी, सँकरी गली में देर तक औरतों के रोने चिल्लाने के स्वर पीछे छूटते सुनाई देते रहे। इस उथल पुथल में आंख बचाकर मैं भाग निकला था। पीछे से आते हुए स्वर किसी के विवाह के आनन्द में गाने के स्वर हैं या किसी के जल मरने पर रोने के, यह फर्क करना मेरे लिए मुश्किल हो गया था। शायद यह फर्क करने की मुझे फुरसत भी नहीं थी।

आज सारा संसार जान गया है कि इस लड़के की सुहागरात है।

देश को साहसी और कर्मठ युवकों की जरूरत है' का नारा देने वाला यह युवक भी अब चौपाया हो गया है। कोई विश्वास करेगा कि जो आँधी-पानी में भी नहीं रुका वही समर आज दो हफ्ते से थामा नहीं गया है अपने ही सार्थियों से आँख चुराता घूम रहा है? कि इस समय वह मेहमानों, दोस्तों परिचित अपरिचितों—सभी की उँगली उठाती आँखों से बचता बचाता गलियों गलियों मंदिर की ओर चला जा रहा है? यहाँ तो एक जगह है जहाँ बैठकर कुछ क्षण शान्ति से इस इतने बड़े परिवर्तन पर सोचेगा रात को देर से लौटेगा। तब तक यह हल्ला गुल्ला भी शान्त हो लेगा। लेकिन स्वर पीछा कर रहे हैं

'अरे लो तो एक और पिया ठाकुर साहब 'तुम्हारे दूसरे लड़के की शादी है और तुम ऐसे सुस्त हो? पर यार, तुम्हारे ये समधी साहब कुछ क्या ठाकुर साहब आप लोगों में भी बरात के लिए देसी का ही इन्तजाम किया जाता है? आज तो विलायती

अलसाया हुआ चेहरा कीचड़ भरी आँखें लड़खड़ाती जबान उधार खाई शराब सामने मोढ़े के नीचे पगड़ी सँभालते बाबूजी दहाड़ रहे थे हमारे साथ धोखा किया गया'

'उठो उठो परात का वक्त हो गया। सोना ही है तो जाकर जनवासे में सोना। यहाँ पड़े हो, न शरीर का होश, न कपड़ों का सयाने क्या कहेंगे लोग कि अच्छे बराती लेकर आये हैं उठो उठो'

देखो देखो उधर देखो जरा वो जो लड़की की माँ के पीछे वाली है न बड़े बड़े बालों की चोटी किये जिसके कानों में सफेद नगोंवाले फूल हैं। यार क्या आँखें हैं हमारी तो अर्थी यहीं उठेगी!'

'हाँ कहो, कुमी-बाबरी धमगाला, जो कुछ भी बनवाऊँगा तुम्हारी राय और मशविरे से ही बनवाऊँगा इसके बाद लड़की वचन लेती है कि

'तु तू ऊ ऊ तु तू ऊ ऊ बाहर नफीरी और किडिंग किडिंग

धम्' नगाड़े के जोड़-तोड़ मिलाये जा रहे हैं।

भागो भागो इस जंजाल से दूर भागो मेरे भीतर कोई लगातार रट लगाए चला जा रहा था। वह देखो, सामने वाला लड़का कुछ-कुछ जाना-पहचाना लगता है। एकदम मुड़ पड़ो, वरना ना घट बातें करेगा। बेवकूफी के मजाक सुनने पड़ेंगे बीवी कैसी लगी?' मिठाई खिलाओ', 'हम बरात में भी नहीं ले गए?' भागो।

कैसा बोझीला प्रारम्भ है जिन्दगी का! मन होता है सब-कुछ छोड़ छाड़कर कहीं दूर अनजानी जगह भाग जाऊँ। कल ही अखबारों में निकलेगा— बेटा तुम्हारी माँ की तबीयत बहुत खराब है हम अब कोई शिकायत नहीं है।' आस पास कहीं भी तो कोई गति नहीं है। लगता है जैसे कोई भारी ट्रक किसी रेतीली और भुसभुसी धरती में जाकर फँस गया है। इंजन घू घू कराहता है, घर घर पहिये घूमते हैं, लेकिन ट्रक वहीं खड़ा है और पहाड़-जैसे बगूले आसमान तक छा गए हैं। कुछ भी नहीं दीखता, दिशाएँ खो गई हैं शक्ति जवाब दे गई है। साँस घुटती है और जी घबरा घबराकर रह जाता है। वातावरण में छायी यह धूल धूल गतिहीन धूल

गा धूल के बाद का कोहरा चारों ओर छाया था। मैंने मन्दिर के खम्भे में माथा टेक दिया जाने क्यों भारी भारी भरा था सिर में! संगमरमर के सुन्दर काले-सफेद टुकड़ों से बनी फर्श ठाकुरजी के सामने वाले द्वार तक चली गई खम्भों की दो कतारें उन पर टिका बड़ा भारी हॉल बीचों-बीच मूर्ति के सामने मंजीरा मृदंग हारमोनियम सितार इत्यादि लेकर गाते हुए कुछ भक्त लोग मेरे तो गिरधर गुपाल और न कोई, मेरे तो गिरधर गुपाल' आस-पास गूँजते भक्तों के उद्गार नये बसेरी वाले की नंद के लाल की नमामि भक्त-वत्सलम।' गूँजती साँझ, लोबान और अगरबत्ती की छायी गंध, धुंधली-

धुंधली रोशनियाँ। कोई मुझे बताओ, मैं क्या करूँ?

खम्भे से टेक लगाए मैं बाहर की सीढ़ियों पर ही बैठा रहा।

मुझमें भागने का भी तो साहस नहीं है। कहीं उस समय पन्द्रह दिन को ही कहीं कलकत्ता-बम्बई, पूना-हरिद्वार—कहीं भी भाग गया होता तो यह सब क्या होता? तब तो बस रोना और गिड़गिड़ाना रहता 'मेरे पाँव में चक्की मत बाँधो' 'मेरे पाँव में यह चक्की मत बाँधो' मुट्ठी में पसीजता हरी चूड़ियों वाला हाथ और आटे का गोला लिये चुपचाप बैठा-बैठा भीतर से क्रम क्रम से आती दोनों आवाज़ें सुनता रहा था। अब भी समय है उठ भाग! और हाय भगवान्, यह जाने किसको मेरे गले बाँधा जा रहा है। धुंधलाती लपटों के आस-पास झगमगाते कन्धों से नाप गए वे सात फेरे। पंडित जाने क्या-क्या कह जा रहा था। याद आया था—इसी तरह तो पुरोहित ने कहा होगा 'सावधान' और उस चेतावनी समझकर सभय गुरु रामदास माँडा छोड़कर उठ भागे थे।

'अब तो इस घर में बहू आनी ही चाहिए। बड़े की बरात गयी थी, उसे आठ साल से ऊपर हो गया।' सगे सम्बन्धी कहते। अम्मा रोज मनातीं 'यह कौनसा दिन होगा जब दहलीज़ पर छोटी बहू का पाँव पड़ेगा। बाबूजी सुनाते इस मुन्ने के ब्याह में सात आठ हज़ार कर्जा हो गया है। अब ये लड़के ही कुछ करें तो हो, मेरे तो बस का है नहीं। 'अपना सुख अपना स्वार्थ अपना सन्तोष, बस यही हमारे घर की रीति है। दूसरा मरे जिये, उन की बला से। न दूसरे की इच्छा है न जान। बड़े-बूढ़े समझते हैं, दुनिया जैसी उनके ज़माने में थी वैसी ही चलना चाहिए नहीं तो रसातल में चली जाएगी। अजी साहब, लड़कों की भी अपनी कोई इच्छा होती है? समझते ही क्या हैं? हमने दुनिया देखी है।' और सच बात यह है कि नाक के आगे उन्हें कुछ दीखता नहीं है। लड़के को इससे ज़्यादा और चाहिए ही क्या कि उसकी शादी हो जाए बहू आ जाए, बच्चे हों, वह क्लर्क बाबू हो जाए और

हमार बाद हुक्के की न मंभाल ले । हाय, मेरी वे सारी महत्त्वा काक्षाएँ, वह कुछ बनकर दिखान के सपन, अब या ही घुट घुटकर मर जाएँगे—रात रात भर की नींद और खून दे-देकर पाल हुए वे सारे भविष्य के सपन अब दम तोड दगे ।

लगता है सुबह जो कुछ माचता रहा था वह मैंन नही, किसी और ने सोचा था । अब तो सब-कुछ नली-सा लगता है । मैंने डायरी म लिखा था— 'मैं इतनी जल्दी अपनी हिम्मत क्यो हार जाता हूँ ? अभी से क्या सोचता हूँ कि मरी सारी महत्वाकाक्षाएँ मर गइ ? सोन को आग म भी तपना पडता है तभी ता वह कुन्दन का तरह निखरता है— सभी के जीवन म परीक्षा के क्षण आते हैं—यह मरी अग्नि-परीक्षा का क्षण है । मुसीबतो स इतनी जल्दी घबरा जाना अच्छी आदत नही है । एस सकट के अवसरा पर अपने को साधे रखना मुझ सीखना होगा । यही तो महान् बनन का सबसे पहला गुर है—मुसीबतो मे दिमाग शान्त रखना । नपोलियन युद्ध के मदान म खत लिखा करता था । मुझे इस बात को कभी नही भूलना कि मुझ कुछ बनना है—'कुछ' बनना है जिसके सामन दुनिया झुके । जिसकी एक बात देश के लिए आशा हो, जो भारत-माता का इन विदेशी म्लेच्छो के चगुल से मुक्त कर सके । भारत महापुरुषा का देश है । राणा प्रताप और शिवाजी का रक्त मेरी धमनिया मे बजता है, उसे लजाना नही है। उनकी वह परम्परा, सस्कृति की रक्षा की धारा का हम ही तो चलाना और जीवित रखना होगा । हम युवक हैं । आज भी हममे हजारो भगवान् बुद्ध महावीर स्वामी भगवान् कृष्ण भगवान् राम हैं उन्हे जगाने और सामने लाने की जरूरत है । हमारी ही शक्तियाँ आज हनुमान, भीम और भीष्मपितामह को पदा कर सकती हैं । मेरे सामने आज परीक्षा का काल है—हमारा तो रहेगा नही । यही ता व खाइयाँ और रुकावटें हैं जिनके पार महानता और गौरव के आत्म-सम्मान का सौरभ है—अमरता का देश है । यह 'हडल रेस वहाँ तक पहुँचने के लिए चुनौती है। [illegible]

हमारी शक्तियों को मांजते रहने के लिए रखी हैं। हाँ, हम इन्हीं बाधाओं और मुसीबतों पर पाँव रखकर आगे बढ़ेंगे। मैं आज भी दृढ़ हूँ अपनी उस आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा पर।

यह सुबह लिखी डायरी! इस समय तो ऐसा लगता है जैसे एक तेज बहाव है जो मुझे अपने साथ बहाए लिये जा रहा है। जाने कहाँ से जाकर छोड़ेगा? लेकिन अब इस वर्तमान का क्या करूँ? बीच में आए इस माया जाल और मोहिनी में अपने को फँस जाने दूँ या इस झाड़ी में बचाकर निकल जाऊँ? जहाँ तक हो सकेगा मैं इसमें उलझूँगा नहीं यही मेरा निश्चय है। हे भगवान्, इस परीक्षा के समय मेरी आत्मा को बल देना मुझमें दृढ़ता देना कि मैं झुक न जाऊँ कहीं मैं हार न जाऊँ।

खैर जैसा भी हुआ अब तो यह विवाह हो ही गया है। लेकिन मैं आज भी मन से वही हूँ। मैं इसकी रंगीनियों और झंझट में नहीं फँसूँगा। शायद बहुत बड़ी बात सोच रहा हूँ, लेकिन जी जान से इसे निभाने की कोशिश करूँगा। यह मेरे बनने का समय है, मेरा निर्माण काल है।

कोई कहता था प्रभा दमयी पास है। मैंने तो उसके हाथ के सिवा कुछ देखा ही नहीं हाँ भाँवरों पर जब वह आगे चल रही थी तो पाँव देख थे महावर लगी थी। लेकिन जो भी हो मुझे उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना। मैं उससे बोलूँगा ही नहीं। अगर बोलना ही पड़ा तो मतलब की दो एक बातें ही बस। अभी तो कोशिश करूँगा कि उसे उसके घर ही भेज दूँ। जब सभी अपना अपना स्वार्थ देखते हैं तो मैं भी क्यों न देखूँ? किसी के बहकावे में नहीं आऊँगा। दबाव और कहने में आकर शादी कर ली। बस यहीं बहुत हो गया। तुम्हें कुछ मिला हो या न मिला हो मुझे कोई मतलब नहीं। मुझे तो अपना निर्माण खुद ही करना है। चाहता हूँ—खूब मन लगाकर जी जान से अपनी शिक्षा दीक्षा पूरी कर डालूँ। अभी चार साल और हैं। एम० ए० करूँगा। तब तक यह क्या करेगा कहाँ रहेगी मुझे नहीं मालूम। होगा भी क्या

मालूम करके ? जिस राह जाना ही नहीं उसके मील गिनने से फायदा ? बाधाएँ कभी कभी बड़ा सुन्दर रूप धरकर सामने आती हैं उनमें न भरमाना ही बुद्धिमानी है। पत्नी की जो इच्छा हो करे, हम क्या एक-दूसरे के लिए बाधा बनें ?

कोई कहता था बहुत पढ़ी लिखी है, बड़ी समझदार है, क्या उसे अपना सारा दृष्टिकोण समझाया नहीं जा सकता ? मान लो आगे जाकर गृहस्थ जीवन बिताना ही हुआ तो यह ज्ञान उसके लिए भी तयारी का हो सकता है। कम-से-कम मुझे उसका चेहरा तो देख ही लेना चाहिए था। भाभी कहती हैं चेहरे पर हल्के-हल्के चेचक की झाँई है। पता नहीं, नाक-नक्शा कैसा है ! आज सुहागरात है। सब लोग छेड़ेंगे, इसलिए यहाँ आ बैठा हूँ। जाने आज क्या-क्या करना होता है ! कैसे करना होता है !

खैर, जो भी हो। मुझे इन सबसे लेना-देना क्या ! मुझे तो आज एक बहुत बड़ा निश्चय करना है—परीक्षा का सबसे कठिन पेपर है। आज अगर फिसल गया तो संसार की कोई शक्ति मेरा उद्धार नहीं कर सकती और अगर आज ही निकल गया तो एक साथ सारे सिर-दर्द से पीछा छूट जाएगा। एकदम न बोलने की बात तो शायद संभव न हो। हाँ मैं उससे कहूँगा, देखिए, हम लोग काफ़ी समझदार हैं। माँ-बाप जैसे भी हैं या जो भी कर सकते हैं, उन्होंने कर दिया, लेकिन अपना आगा पीछा तो हम ही देखना है। सबसे पहले तो हम अपनी शिक्षा पूरी करनी होगी ' लेकिन यह सब सुनकर अगर वह रोने लगी तो ? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि उसके खारे आँसू मेरी दृढ़ता की सारी धरती को ही गला डालें ? नहीं, नहीं, नहीं भगवान् बुद्ध को यशोधरा का सौन्दर्य बाँधकर नहीं रख पाया, गोपियों के प्यार ने कृष्ण को योगिराज बनने से नहीं रोका

अच्छा क्यों जी, पत्नी क्या सदैव ही बाधा होती है ? राम की शक्ति को क्या सीता से अलग किया जा सकता है ? राजपूताने की क्षत्राणियाँ

ने ही क्या खुद अपने सुहागो को रण म नही भेज दिया था ? लेकिन मैं मैं तो बहुत ही कमजोर हूँ। अपने को उस रूप म ढाल लू तभी तो यह हो सकेगा। तब तक उपक्षा मेरा अस्त्र होगी और उदासीनता मेरी ढाल । आँसुओ और वासना के इस दलदल म काफी पाँव जमा जमाकर मुझ चलना होगा। साक्षी रह यह भगवान् की मूर्ति

हे भगवान् मुझ शक्ति दे सयम दे, सुबुद्धि दे कि मैं अपने आपको सही मार्ग पर लिय चलू। जो मेरे साथ रह सके वह रहे, पीछे छूट जाने वाले के मोह म पडकर मुझ रुकना न पड मै गुनगुनाने लगा वह शक्ति हमे दो दयानिधे कर्त्तव्य मार्ग पर डट जाएँ

तभी चौंककर मैंने देखा, भजन बन्द होकर कीर्तन शुरू हो गया था।

दो

वे हसी-कहकहे खिलखिलाहटें और मजाक शहनाई वालो का एक-दूसरे के मुँह की ओर घुमाते हुए जोर-जोर से शहनाइयाँ बजाना । सविन मुझ लगता रहा जैसे एक तूफान किसी भारी गुम्बद म बन्द हो गया है गूज-गूजकर घूम घूमकर इधर-से उधर पुकारता फिर रहा है और बाहर निकलने का रास्ता नही पा रहा।

मालूम नही यह अच्छा हुआ या बुरा। सुहागरात आयी और चली गई। सच ही मैं उमस नही वाला। अभी तक बडी दुविधा म हूँ कि यह भगवान् की ओर स मेरी प्रार्थना की स्वीकृति है या मेरे दुर्भाग्य का प्रारम्भ ।

मैं बहुत भावुक हूँ बहुत कमजोर हूँ। भावा और कमजोरिया

के उफान में बड़ी जल्दी बह और बहक जाता हूँ और उस समय कोई किनारा मुझे नहीं मिल पाता।

हल्के-से धक्का देकर भाभी ने पीछे से किवाड़ बन्द कर दिए तो मैं कमरे में आ गया। उस समय प्रभा जंगले में सिर रखे खड़ी थी, जैसे खड़ी-खड़ी सो गई हो। थोड़ी देर यों ही खड़ा रहा और फिर धीरे से जाकर पलंग के सिरे पर इस तरह बैठ गया जैसे डर लग रहा हो। सोचा था कि चुपचाप जाकर पलंग पर सो जाऊँगा और रात के बाद सुबह से पहले जाना मैंने जाना नहीं। इस समय मेरा दिल धड़क रहा था और सारा शक्ति की चट्टान जैसे डायनामाइट के विस्फोट से फट जाने को तयार थी। अपने आत्म विश्वास और दृढ़ता को समेट समेटकर ला रहा था। लड़के मुझे जाने क्या क्या बनाने को उत्सुक थे। मूर्ख लड़के! वे उन हजारों-लाखों की तरह मुझे भी ममता हैं जिनके लिए नारी या कोई भी चलती-फिरती लड़की न जाने किस स्वर्ग का फूल है और उसके लिए युगों से उनकी आत्माएँ तड़फड़ाया करती हैं। आगे न जाने लड़कियों के पीछे अपना रास्ता छोड़कर वे मीलों केवल उसका ध्यान मुग्ध लेते चले जाते हैं। मैं उन जैसा तो था नहीं। मेरा रास्ता भी उनका रास्ता नहीं था।

मन-ही-मन मैं दुहराता रहा नारी अन्धकार है नारी मोह है नारी माया है। नारी स्वत्व की ओर उठते मनुष्य को बाँधकर दासत्व के गहरे अंधे कुएँ में डाल देती है। नारी पुरुष की सबसे बड़ी कमजोरी है।

मेरा रास्ता हजारों-लाखों लड़कों का रास्ता नहीं है। ऊपर से देखने में मैं चाहे जैसा लगूँ मैं उनसे हर तरह भिन्न हूँ। मेरा भविष्य मेरे हाथों में है। मैं हर क्षण तलवार की धार पर चलता हूँ। बस जरा-सा अपने को साथ लूँ और डगमगाऊँ नहीं। मैंने हर समय अपने को इन लोगों से कितना ऊँचा उठा हुआ पाया है।

इस कमरे में आने से पहले मैं सोच रहा था कि जैसा सभी विवाहों में होता है प्रभा सजीली नव-वधू की तरह गठरी बनी होगी उसी साज

शय्या से मेरा स्वागत करने को तयार होगी। वही तो एक क्षण है जब मुझे अपने को सावधान रखना होगा। लेकिन अब उसे देखकर मैं चौंक पड़ा कपड़े तो उस विवाह में पहनाए जाते हैं वैसे ही रंग बिरंगे पहने थी लेकिन मेरे खाट पर बैठ जाने पर भी वह यों ही चुपचाप सामने के जंगले पर खड़ी रही। भीतर प्रवेश करते समय भाभी के साथ और भी मुहल्ले-पड़ोस या रिश्तेदारी की जाने कौन-कौन आपस में खुसुर पुसुर करती खिलखिलाती भगवान् जाने क्या-क्या कह रही थीं! मैंने कुछ भी नहीं सुना था। इस समय तो कमरे के सन्नाटे में स्टूल पर रखे पंखे की भनभनाहट ही गूंज रही थी। जब कभी पंखे की कोई पंखड़ी किसी तार से लग जाती तो खनखनाहट बज उठती। विवाह के अवसर पर बिजली पड़ोसी से उधार ले ली गई थी। मैं भरसक उपेक्षा और लापरवाही दिखाना चाहता था। कल्पना कर रहा था कि मेरी भावनाओं की शुद्धता और ऊँचाई के कारण मेरा चेहरा जगमगाते ज्योतिवलय से घिरा हुआ है। कुछ देर बाद जरा-सा कौतूहल भी हुआ कि कहीं सो तो नहीं गई। लेकिन मेरे पलंग पर बैठते ही उसने जरा-सा सिर उठाकर देखा, और जैसे कुछ हुआ ही न हो इस तरह फिर सिर वहीं टिका लिया।

मैं बुद्धू की तरह बैठा-बैठा पंखे को देखता रहा। अब क्या करूँ? धीरे-से पलंग पर आड़ा ही लेट गया। फिर दीवार के सहारे उठा था। क्षण के पीछे भागते क्षण फिसलते रहे। मुझे आशंका हो रही थी कि अभी मेरी इस कठोरता पर वह फूट फूटकर रो उठेगी दोनों हाथों से मेरे पाँव पकड़कर अभय माँगती-सी आँसू भीगा मुँह उठाकर पूछेगी—'मेरे नाथ, बताओ इस दासी से क्या अपराध हुआ है?' फिर पाँवों पर सिर पटक-पटककर हजारों बार क्षमा माँगेगी। उस क्षण अपने को साध लेना शायद सबसे कठिन साध होगा। बस, एकाध पल ही जा रहा है। यही नाटक होगा

लेकिन मुझे लगा कि काफी देर हो गई है और कभी-कभी कुछ

चूड़ियों की खनक के साथ-साथ आधी रात का सन्नाटा हमारे बीच विषैले धुएँ की तरह फैलता रहा। अचानक मुझे लगा कि आशंका और भावुकता के सागर में स्पंज की तरह फूलता पिचकता मेरा हृदय अब जमकर एक पत्थर का टुकड़ा रह गया है। किसी ने भीतर पूछा—'मैं यहाँ क्यों आया? न बोलना, न स्वागत—क्या यह मेरा अपमान नहीं है?' मैं स्वीकार करता हूँ कि इन तमाम महत्वाकांक्षाओं, आशाओं और दृढ़ता की निस्पन्द और बर्फीली चादर के नीचे गरमाहट के बहते स्रोत की सनसनाहट मैं अनुभव करता रहा था। मन के किसी अँधेरे कोने में शायद बहुत-कुछ इस विषय में था भी—शायद उत्सुकता शायद मिठास। अपनी इस ऊपरी सारी दृढ़ता के साथ यह भय भी मुझे था ही, कि कहीं नीचे बहते गरम खून का यह स्रोत प्रचण्ड ग्लेशियर की तरह फूट न पड़े और फिर उसके बहाव में मैं खो जाऊँ।

जैसे सनसनाता हुआ तीर लक्ष्य से अपने लक्ष्य में आकर धँस जाए, इसी तरह मुझे लगा जैसे मेरे भीतर कोई चीज़ सन्नाकर टकरायी—अपमान! यह मेरा अपमान है। भीतर बहती तरल खून की धार पल भर में जमकर बर्फ बन गई। मैं यहाँ आया ही क्यों? आज के दिन कहीं और नहीं जा सकता था? घर वाले ज़रा-से परेशान हों तो होने दें! हमारे घर के लोग बे-पढ़े हैं और यह मट्रिक तक पढ़ी है। शायद यही गुमान इसे हो गया है। निश्चय ही यह अपने को बहुत समझती है। वह यों ही खड़ी रही, और मैं गुस्से में उठकर सीधा बैठ गया। बराम! यही आजकल की शिक्षा है?—न किसी का लिहाज़ न हया। समझती है, दूसरे लड़कों की तरह मैं इसे मनाऊँगा खुशामद करूँगा? हुँह! ज़रा इत्मीनान-जमा रखें। क़यामत तक तो यह मौक़ा आएगा नहीं। पहले मैंने सोचा था कि हम लोग शिक्षित हैं, समझदार हैं। आपस में बातें करके अपने को अधिक-से-अधिक योग्य बनाने की ओर ध्यान देंगे। लेकिन नहीं। अगर इनकी मरज़ी यही है तो यही सही। झुकूँगा नहीं, आज का झुकना ज़िन्दगी भर का बवाले-जान हो जाएगा। आज

तो बिल्ली मुझे ही मारनी है। आप शायद खड़ी-खड़ी यही सोच रही हैं कि मैं जाकर कह चलिए, खड़ी क्यों हैं? बैठिए।" फिर वे शरमाएंगी और नखरे दिखाएंगी रूठने मटकने की रेकिटस होगी। तभी पहला बार मेरा ध्यान उसकी इस अशिष्टता की ओर गया कि मेरे आने पर नमस्कार प्रणाम कुछ नहीं। मैं तो सोचता था कि वह मेरे पांवों पर झुक जाएगी तो मैं उसके दोनों कंधे पकड़कर उठा लूंगा। यही तमीज और अदब सिखाया है घर वालों ने? उस वक्त तो बड़े गर्व से कहा था कि हमारी लड़की मैट्रिक तक पढ़ी है।

जब कुछ क्षण यों ही बैठे-बैठे और बीत गए तो मैं एक झटके से उठकर खड़ा हो गया। दिमाग भन्ना रहा था और सारा कमरा अपमान के सैकड़ों डंकों से जैसे मुझ पर अट्टहास कर रहा था। मन के भीतर तब भी कहीं यह भाव था कि जब मैं चलूंगा तो वह पीछे से आकर मेरा हाथ या कुरते का छोर पकड़ लेगा। तब मैं कुछ देर ठिठकूंगा और उसे क्षमा कर देने के विषय पर विचार करूंगा। लेकिन जब खड़े होकर दो चार कदम दरवाजे की ओर चल भी लिया और उसने ऐसा कोई भाव नहीं दिखाया तो मेरे आत्मसम्मान का पेट्रोल कुण्ड भकभकाकर जल उठा। मैंने निश्चय कर लिया कि अब अगर यह रोकने आएगी भी तो बिना मुड़कर पीछे देखे ही चल दूंगा। बदतमीज!

झटके से जब किवाड़ खोले तो लगा चौंककर उसने सिर उठाकर देखा। तब तक मैं बाहर आ चुका था। जाने क्या मैं एक क्षण बाहर रुका और फिर सीढ़ियां चढ़कर खुली छत पर आ गया। सभी लोग चारपाइयों या जमीन पर सो चुके थे। चांदनी की वर्षा हो रही थी और चांद का छाता लगाए रात की रानी नीहारिकाओं के पथ से चली जा रही थी। मैंने कुछ भी नहीं देखा और एक कोने में नंगी धरती पर पड़कर अपने आपसे लड़ने लगा।

उफ़ इस व्यवहार को मैं कभी जिन्दगी भर भूल पाऊंगा? नहीं, नहीं। विद्योत्तमा के इसी व्यवहार ने एक वज्रमूर्ख को कविता का

राजकुमार—कालिदास—बना दिया था। अब देखना है कि मैं इस अपमान का बदला किस रूप में चुकाता हूँ। लेकिन आखिर मैं वहाँ गया ही क्यों? क्या यह मेरे भीतर ही कोई कमजोरी नहीं है? क्या यह पथ भ्रष्ट होने का दंडी दण्ड नहीं है? मुझे सँभालने वाली ठाकर! कहीं पढ़ा था—अपमान से बढ़कर संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो मनुष्य की सच्ची आत्मा को खींचकर बाहर ला सके। अब मुझे देखना है कि मेरी आत्मा में कितनी शक्ति है। याद रहेगा यह मुट्ठीगंज का उपहार! जो हुआ अच्छा ही हुआ। वह रास्ता मरा था भी नहीं।

मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अपने भाग्य की गति को स्पष्ट देख रहा हूँ—जैसे वह सारे इधर उधर के रास्तों को बन्द करता हुआ एक निश्चित रास्ते पर लिए चला जा रहा हो। और निश्चय ही वह रास्ता ऊँचाई का रास्ता है महानता का रास्ता है।

और इसी त्रिभंगी उठा-पटक में कब मेरी आँखें बुरी तरह डबडबा आईं कि लाख कोशिश करने पर भी मैं अपने को सँभाल न सका। अपलक आकाश की ओर ताकती खुली आँखों में चुप चुप आँसू बहते रहे। हे भगवान् यह मेरे जीवन में क्या बाधा दिया है! क्यों लाकर पटक दिया है मुझे! इस क्षण वही पुरानी भावना उमड़-उमड़कर मन-मस्तिष्क पर छा गई कि इस कठोर पथ पर मैं अकेला हूँ—नितान्त अकेला। कोई साथ नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो मेरी थकान और पराजय को सान्त्वना के आँचल से समेट ले, मेरी निराशा के आँसुओं को पोंछकर कहे—लो मैं तो तुम्हारे साथ हूँ पता नहीं, किस तरह की जड़ता का मेरे मन पर मढ़ दिया गया है? कैसे चलेगी जिन्दगी? फिर लगा जैसे कोई अज्ञात शक्ति मेरे लिलार के बाल-बाल में पानी निचोट-निचोटकर आँसुओं की राह उलीचे दे रही है।

अपने मन की और भी गहराई में मैं सोचता रहा कि मान लो अभी उठ और बिना किसी से कुछ कहे-सुने बाहर निकल पड़ूँ तो कैसा रहे।

यहीं चला जाऊंगा—कलकत्ता, बम्बई या फिर हरिद्वार भागो भागो ।

घुग्घो, सगारो और भाप की भट्ठी पर मैं रात भर सुनता और उबलता रहा ।

तीन

बात लगी भयंकर आग की तरह यह समाचार सारे घर में फैल गया कि समर प्रभा से नहीं बोला ।

दोनों हाथों से सिर पकड़े कुहनियों को घुटनों पर रखे, मैं अपने कमरे की देहली पर बैठा-बैठा जाने क्या-क्या सोचता रहा । मन में ऐसी उदासी छाई थी जैसे अभी अभी लाश फूंक कर आया हूँ । सांझ की छायाएँ अब कोना-अतरों की ओट से बाहर निकल निकलकर फैलने लगी थीं । लेकिन उदासी थी कि अंधेरे के साथ-साथ बढ़ती चली जा रही थी । लगता था जैसे आगे एक महाशून्य का अंधा सागर ठाठें मार रहा हो—अब मैं क्या करूं ?

मुझसे कई लोग पूछ चुके थे । शायद प्रभा से भी पूछा हो । लेकिन दोनों ने ऐसी अनिच्छा का भाव दिखाया कि फिर पूछने की किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी । भाभी ने पहले व्यंग में प्रश्न किया, फिर गम्भीरता से जानना चाहा । अम्मा ने पूछा । लेकिन सबको मैंने टाल दिया । सारा दिन मैं मुंह छिपाता इधर से-उधर भटकता रहा । मैं अपनी उस तथाकथित पत्नी से नाराज जरूर था, लेकिन यह भी जानना चाहता था कि सुनूं उसने मेरे खिलाफ क्या-क्या कहा है । अभी तक तो कुछ भी सुनने में नहीं आया था और इसी का मुझे आश्चर्य था ।

लगा, उससे घरवाले कुछ भी नहीं निकाल पाए। जो भी उन्होंने जाना वह सब मेरे ही व्यवहार से। कभी-कभी तो मैं चौंक उठता कि यह सब कहीं मुझे प्रभावित करने का ढंग तो नहीं! लेकिन मुझे अब एक ऐसी तटस्थ निरासक्ति भी अपने भीतर महसूस हो रही थी, जैसे अब घर में कोई भी मेरा कुछ नहीं लगता। अगर वह सबसे कुछ-न-कुछ कहती फिरती, तब भी शायद नया नहीं लगता।

बाबूजी ने अत्यंत गूढ़ रहस्य जानने की मुद्रा में पूछा था, "कुछ खास बात हुई क्या?" मैं चुप रहा। फिर उन्होंने पूछा, "लड़ाई-वड़ाई तो नहीं हो गई?"

उस समय तो मेरा सारा साहस डगमगा गया जब मुन्नी आयी, 'बाबूजी ने बुलाया है। बाबूजी ने क्यों बुलाया? मरे मरे कदमों से मैं वहाँ पहुँचा।

बाबूजी के सामने पड़ने से मैं हमेशा ही डरता रहा हूँ। यों इधर तीन-चार साल से उन्होंने हाथ नहीं उठाया, लेकिन शरीर पर पड़ी हुई पुरानी नीलें अभी भी ताजी हो आती हैं। और ये यादें ही उनके आतंक को जैसे दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ाया करती हैं। किस समय वे क्या कर बैठेंगे, कोई ठिकाना नहीं। जिन दिनों वे मुझे मारते थे, उन दिनों तो एक अल्हड़ और जिद्दी निश्चिन्तता रहती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा पीट ही तो देंगे। हॉकी फुटबाल में भी तो चोट लग जाती है और हम उसे सहते ही हैं। लेकिन इधर तो एक अजब रहस्यमय खौफ मुझे उनके हर व्यवहार से लगता था। अपनी किसी गलती पर जब मैं पिटने या डाटे जाने की आशंका करता और वे टाल देते तो लगता जैसे मेरे खाते में जाने कितनी सजा इकट्ठी हो गई है। भतीजे में उनसे कतराना और डरना मेरा स्वभाव बन गया था। मैं मन में चाहे जितना विरोधी और विद्रोही बनता रहूँ, बाबूजी का आतंक मेरी नस-नस में इस तरह समा गया था कि उनके सामने जबान ही नहीं खुलती थी। और मन-ही मन कुढ़ते हुए भी जो कुछ वह कहते मैं कर डालता।

बहुत डरते हुए भी मैंने उनकी बातों के जवाब में एक भाषण तैयार किया। वे चुपचाप फर्श पीते हुए अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक की मुद्रा में बैठे होठ टेढ़े करते हुए धुआँ निकाल रहे थे। आस पास के खाली कुरसी और मूढ़े देखकर लगा जैसे अभी अभी कुछ लोग उठकर गये हों। उन्होंने मौहा के सदन से बैठने को कहा तो मेरा सारा साहस धुएँ की तरह उड़ गया। मैं जैसे तैसे चुपचाप किनारे पर बैठ गया।

क्या बात है? वह तुझे पसंद नहीं आई? अत्यन्त मुलायम शब्दों में उन्होंने पूछा। शब्दों की मुलायमियत से मैं चौंककर डर गया। अपने भाषण का एक एक शब्द फिसलता लगने लगा।

मुझे चुप देखकर उन्होंने फर्श में एक लम्बा-सा कश खींचा और धुआँ घूटते हुए फिर पूछा साफ बता न, इसमें झिझक की क्या बात है? सुनते हैं तू उससे बोला भी नहीं?

मैं चुपचाप हथेली फैलाकर हाथ की लकीरें देखता रहा। सारे सोचे हुए सवाल जवाब दिमाग से निकल गए। मन में एक आर्द्र उच्छ्वास-सा फिर आया।

अब बाबूजी ने एक हुंकारी भरकर कहा "यह भी तो सोचा कि वह बेचारी पराया लड़का किसके बूते पर आया है? कोई घर में आता है तो इस व्यवहार के लिए? क्या कहेगी वह घर जाकर? माना कि गाली करने की तुम्हारी इच्छा नहीं थी लेकिन बेटा, यह लोक-व्यवहार है। और जो हो जाता है उसे निभाना तो पड़ता ही है। मान लो कि "

अचानक मेरे फूट फूटकर रोने से उनकी बात बीच में ही टूट गई। सच पूछो तो इस रुलाई के लिए मैं खुद भी कतई तैयार नहीं था। लेकिन बाबूजी की इन बातों के सामने जाने क्यों अपने को रोक ही नहीं पाया। मैं बच्चों की तरह अपने को सँभालता, मुट्ठियों के पिछले हिस्से से आँखों और नाक को रगड़ने लगा। और जब उन्होंने समझाने के स्वर में कहा कि जाओ, ऐसा लड़कपन नहीं करते, तो मैं चुपचाप उठकर चला आया।

अपने पढ़ने की कोठरी के दरवाज़े पर बैठा-बैठा मैं बड़ी देर तक निरुद्देश्य जाने क्या-क्या सोचता रहा—वे सिर-पाँव की बातें। इस सारे बाढ़ में मुझे अपनी गलती ही दिखायी नहीं देती थी। यह शादी मेरे उच्चादर्शों और महत्वाकांक्षाओं के लिए ज़हर थी, यह जानते हुए भी कहीं यह आशा थी कि चलो लड़की पढ़ी लिखी और समझदार है। हम लोग एक-दूसरे को समझने की कोशिश करेंगे, बनने में मदद देंगे। चाहता तो मैं भी अपनी सुहागरात के दिन उसे खींचकर पलंग पर डाल देता और अंधाधुंध उसके रूप का बखान शुरू कर देता, या बिलकुल जाहिलों की तरह कोई ताना और बिरुदी ले जाता और ऐन मौके पर क्रोध में उसे मारकर ज़िन्दगी भर के लिए अपना रौब ग़ालिब कर लेता। लेकिन, मैंने तो चाहा था कि पढ़े लिखे सभ्य और शिष्ट आदमी की तरह मैं यह सब नहीं करूंगा और सबसे पहले उसे बाकायदा अपना परिचय दूंगा, उसका परिचय पूछूंगा। फिर उसे अपने सपनों और महत्वाकांक्षाओं के बारे में बताऊंगा उसे समझाऊंगा कि जीवन और जगत् के बारे में मेरे विचार क्या हैं? यह सब अच्छी तरह समझा चुकने के बाद नम्रता से पूछूंगा कहिए, इस सबमें आप कहाँ और किस तरह मेरी सहायता करना चाहेंगी? लेकिन इस सबकी तो उसने अपने व्यवहार में गुंजायश ही नहीं रखी। वहाँ ऐसा मौका ही कौनसा था कि मैं ये सब बातें कह पाता! नहीं इस सबमें मेरा ही अपराध नहीं है। बाबूजी व्यर्थ ही मेरे सिर सारा दोष मढ़ रहे हैं।

अचानक किसी ने भीतर से पूछा—मैं उससे नहीं बोला, यह बात बाबूजी को पता कैसे चली? मैं चौंक उठा। हाँ, ठीक ही तो है उनसे यह बात किसने कही? मैंने तो इस बात का किसी से भी ज़िक्र नहीं किया। उसीने कहा होगा। मुझे तो मुंह से ही इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि क्यों वह इस इतनी महत्वपूर्ण बात को अत्यन्त तुच्छ बनाकर उड़ाये हुए है क्यों नहीं उसने किसी से कुछ कहा? लेकिन उसके बताए बिना कोई जान ही नहीं सकता। आखिर औरत है ना अम्मा

बहुत डरते हुए भी मैंने उनकी बातों के जवाब में एक भाषण तैयार किया। वे चुपचाप फर्श पर पीठ हुए अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक की मुद्रा में बैठे हाथ टेढ़े करते हुए धुआँ निकाल रहे थे। आस-पास के खाली कुरसी और मूढ़े देखकर लगा जैसे अभी अभी कुछ लोग उठकर गये हों। उन्होंने मौका व मकान से बड़ा को कहा तो मेरा सारा साहस धुएँ की तरह उड़ गया। मैं जस का तस चुपचाप किनारे पर बैठ गया।

'क्या बात है? वह तुझे पसन्द नहीं आई?' अत्यन्त मुलायम शब्दों में उन्होंने पूछा। शब्दों की मुलायमियत में मैं चौंककर डर गया। अपने भाषण का एक एक शब्द फिसलता लगने लगा।

मुझे चुप देखकर उन्होंने फर्श में एक लम्बा-सा कश खींचा और धुआँ घूटते हुए फिर पूछा 'साफ बता न, इसमें झिझक की क्या बात है? सुना है तू उससे बोला भी नहीं?'

मैं चुपचाप हथेली पलटकर हाथ की लकीरें देखता रहा। सारे सोचे हुए सवाल जवाब दिमाग से निकल गए। मन में एक आर्द्र उच्छ्वास-सा घिर आया।

अब बाबूजी ने एक हुंकारी भरकर कहा, 'यह भी तो सोचो कि वह बेचारी पराये लड़के किसके बूते पर आयी है? कोई घर में आता है तो इस व्यवहार के लिए? क्या कहेगी वह घर जाकर? माना कि शादी करने की तुम्हारी इच्छा नहीं थी लेकिन बेटा, यह लोक-व्यवहार है। और जो हो जाता है उसे निभाना तो पड़ता ही है। मान लो कि "

अचानक मैं फूट फूटकर रोने में उनकी बात बीच में ही टूट गई। सच पूछो तो इस रुलाई के लिए मैं खुद भी कतई तैयार नहीं था। लेकिन बाबूजी की उन बातों के सामने जाने क्यों अपने को रोक ही नहीं पाया। मैं बच्चों की तरह अपने को सँभालता, मुट्ठियों के पिछले हिस्से से आँखों और नाक को रगड़ने लगा। और जब उन्होंने समझाने के स्वर में कहा कि जाओ ऐसा लड़कपन नहीं करते, तो मैं चुपचाप उठकर चला आया।

अपने पढ़ने की कोठरी के दरवाज़े पर बैठा-बैठा मैं बड़ी देर तक निरुद्देश्य जाने क्या-क्या सोचता रहा—वे सिर-पाँव की बातें। इस सारे काड में मुझे अपनी ग़लती ही दिखायी नहीं देती थी। यह शादी मेरे उच्चादर्शों और महत्वाकांक्षाओं के लिए ज़हर थी यह जानते हुए भी कहीं यह आशा थी कि चला लड़की पढ़ी लिखी और समझदार है। हम लोग एक दूसरे को समझने की कोशिश करेंगे, बनने में मदद देंगे। चाहता तो मैं भी अपनी सुहागरात के दिन उसे खींचकर पलंग पर डाल देता और अंधाधुंध उसके रूप का बखान शुरू कर देता, या बिलकुल जाहिलों की तरह कोई सोना और बिल्ली ले जाता और इस मौके पर क्रोध में उसे मारकर ज़िन्दगी भर के लिए अपना रोब गालिब कर लेता। लेकिन, मैंने तो चाहा था कि पढ़े लिखे सभ्य और शिष्ट आदमी की तरह मैं यह सब नहीं करूंगा और सबसे पहले उसे बाकायदा अपना परिचय दूंगा, उसका परिचय पूछूंगा। फिर उसे अपने सपनों और महत्वाकांक्षाओं के बारे में बताऊंगा उसे समझाऊंगा कि जीवन और जगत के बारे में मेरे विचार क्या हैं? यह सब अच्छी तरह समझा चुकने के बाद नम्रता से पूछूंगा 'कहिए, इस सबमें आप कहाँ और किस तरह मेरी सहायता करना चाहेंगी?' लेकिन इस सबकी तो उसने अपने व्यवहार में गुंजायश ही नहीं रखी। वहाँ ऐसा मौका ही कौनसा था कि मैं ये सब बातें कह पाता! नहीं इस सबमें मेरा ही अपराध नहीं है। बाबूजी व्यर्थ ही मेरे सिर सारा दोष मढ़ रहे हैं।

अचानक किसी ने भीतर से पूछा—मैं उससे नहीं बोला, यह बात बाबूजी को पता कैसे चली? मैं चौंक उठा। हाँ, ठीक ही तो है उससे यह बात किसने कही? मैंने तो इस बात का किसी से भी ज़िक्र नहीं किया। उसीने कहा होगा। मुझे तो सुबह से ही इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि क्यों वह इस इतनी महत्वपूर्ण बात को अत्यन्त तुच्छ बनाकर उड़ाये हुए है क्यों नहीं उसने किसी से कुछ कहा? लेकिन उसके बताए बिना कोई जान ही नहीं सकता। आखिर औरत है ना, अम्मा

से चाहे न कहा हो लेकिन मुन्नी या भाभी से जरूर कहा होगा। मुन्नी या भाभी से मालूम करूँ ? नहीं, यह पूछना अपनी ही कमजोरी होगी। ये फिर झट उसके कान में जाकर बात फिरो देंगी तो सोचेगी कि कितना कमजोर आदमी है। कमजोर ? अभी तो उसने मेरी मजबूती की एक ही झलक देखी है

'लालाजी क्या सोच रहे हो ऐसे डूबे हुए ?' तभी जाने किधर से निकलकर भाभी ने कहा 'तुम्हारी तो शादी न हुई लगता है दुनिया भर की चिन्ताओं का बोझ ही तुम्हारे ऊपर आ गया। माथे पर हाथ रख क्या बैठ हो ? सिर फिर में दर्द है क्या ? कोई देखे तो समझे, जाने किस लड़के लड़की की शादी करनी है तुम्हें।

मैं चौंक गया, जैसे चोरी करता हुआ पकड़ा गया होऊँ। अपनी चिन्ताओं और दुख को दिखाना भी तो भीतरी कमजोरी है। सँभलकर कहा "कुछ भी तो नहीं भाभी सोच-साच तो कुछ नहीं रहा। यों ही बैठा हूँ। मुझे लगता था जैसे घर का एक एक आदमी या हर मिलने वाला अपनी बातचीत या हरकत से सिर्फ इसी ओर संकेत करता हो। और इस संकेत की चुभन या उसकी जबावदेही से मैं बुरी तरह भयभीत हो उठता था।

लालाजी, बनो मत ! दोस्ती तो सभी को है। दिन छिप गया और न तुम्हें स्नान की सुध है न पीने की। इसके बाद कुछ नाराजी से मुस्कराकर वे बोलीं, क्यों बनी नहीं क्या ?

उनके मजाक को समझते हुए भी गम्भीरता से जवाब दिया, और भाभी, बन भी नहीं सकती। घमण्ड में अपने सगे-से सगे का नहीं सह सकता चाहे वह कितना ही खूबसूरत हो या पढ़ा लिखा। ऐसे घमण्ड को मैं जूती पर रखते हैं।' आज भी नहीं कह सकता कि इतनी जोर से मैंने बाबूजी की बात का जवाब दिया, घर में बहती प्रभा को सुनाया या सिर्फ भाभी से बात कही।

"सो तो बात हमें भी लगती है, लालाजी!" भाभी ने इधर-उधर शंकित निगाहों से देखते हुए धीरे-से घुसुर घुसुर करके कहा "अभा में थोड़ा-सा अपनी पढ़ाई और खूबसूरती को लेकर गुमान है। मुझसे पूछो, तो कोई ऐसी परीजादी भी नहीं है। या अपनी उमर पर खूबसूरत कौन नहीं होती! हम नहीं थे? अम्मा जी नहीं थीं?" और कहने के साथ ही वह अपनी बात पर लजा गई।

हूँह, मैंने उपेक्षा से सिर मटका, ऐसी खूबसूरत हैं तब तो यह हाल है। अगर सचमुच खूबसूरत होतीं तो न जाने दिमाग का क्या हाल होता? मैं जोर से ही बोला था ताकि वह भी सुन ले।

भाभी मेरी बात समझ गई। खुशामद से बोलीं, 'तुम्हारे हाथ जोड़ू लाला जरा धीरे बोलो, नहीं तो कोई जरा-सा में समझेगा कि मैं तुम्हें जाने क्या उलटा-सीधा सिखा रही हूँ।"

"सिखाने की क्या बात है, भाभी! मैं क्या समझता नहीं हूँ? अंधा तो नहीं हूँ। कहता था कि मुझे इस कुएँ में मत डालो मत डालो। पर तब तो तुम्हें भी जिद चढ़ी थी कि इसके गले में भी फाँसी का फंदा क्यों न पड़े! बताओ अब क्या करूँ?

"अच्छा छोड़ो लालाजी तुम भी क्या जरा-जरा-सी बातों में सिर खपाया करते हो, स्नेह और आत्मीयता से भाभी बोलीं 'चलो खाना खा लो। सब धीरे धीरे ठीक हो जाएगा। तुम्हारा भी खून गरम है और वह भी अभी बच्ची ही है। मैं समझा दूंगी उसे। तब भी उसे ऐसा करना नहीं चाहिए था। पर सबसे बड़ी मुश्किल तो यही है कि अपने को जाने क्या समझती है! हमें तो बात करने लायक भी नहीं मानती। कोई आए, कोई जाए—न घूघट, न पल्ला। बस किताब से आई है अपने घर से, सो उसे ही पढ़ती रहती है। और तो कुछ लायी नहीं है। जो है सो तो है ही पढ़ाई का दिखावा बहुत है। खैर, लालाजी, तुम अपनी पढ़ाई लिखाई इस सबके पीछे क्यों बरबाद करते हो?' फिर भाभी थोड़ी देर चुप रहीं। सोचती-सी बोलीं 'कल मुन्ना का खाना वही बना रही

है। तुम्हारे भाई साहब तो कहते थ कि खाना क्या बनाती है अमरित बनाती है उँगली चाट चाटकर खाओ तब भी सताप न हो।

'उन्हे क्या पता ?' मैं सहसा मूख बठा।

भाभी कुछ चौंकी। फिर साधारण बात की तरह कहा 'देखने गये थ तो खा आए होंगे, तभी म तारीफ के भार घर भरे दे रहे हैं। कल तुम्ही देख लेना। फिर व मुडकर चल दीं— 'अच्छा आओ, तुम्हे मेरी कसम है, दो रोटियाँ खा लो। मैं चलकर परोस रही हूँ।

सुबह स ही मुझ घर का वातावरण इतना बोझीला दमघोटू और उबाने वाला लग रहा था कि खाना तो क्या, पानी पीने की इच्छा नही हो रही थी। पर अब भाभी स बातें करके जाने क्या मन हलका हो गया। चुपचाप उठकर रसोईघर म जा पहुँचा।

रात को फिर अम्मा-बाबूजी न अप्रत्यक्ष और मुन्नी तथा भाभी ने साफ-साफ मुझस आग्रह करके कहा, 'ऐसा होता ही रहता है। इस तरह की बातो पर क्या जिन्दगी भर के लिए लडा जाता है ? जिसके साथ सात भाँवरें डालकर लाये हो उस तो निभाना ही पडेगा। आखिर वह बचारी करे भी क्या ? कसूर उसका ही हो तब भी एस मौके पर माफ कर देना ही ठीक है। दो दिन बाद उसके भाई उसे लेने आ जाएँगे। क्या कल्गी घर जाकर हमार बार म ? सारी बिरादरी म बदनामी होगी सो तो होगी ही सम्बन्धो म भी तनाव आ जाएगा। अब वह माफी माँग लेगी। पर इस सारे वातावरण म मुझे भी जाने कसी जिद आ गई थी। मैंने भी मुन्नी स साफ-साफ कह दिया आप लोग मुझ रात को यहाँ सोने दना चाह तो सोने दीजिए नही तो रिक्शा कर या किसी और दोस्त के यहाँ जाकर पडा रहूगा।

"लालाजी जब तुम्हें जिद चढ़ जाती है तब तुम किसी की नहीं मानते। अब यह भी कोई बात हुई ! कभी-कभी तो बडो का कहना भी माना करो।

'नहीं भाभी, नहीं एक कहना मानकर तो यह सुख पाया। अब तो मेरा पीछा छोड़ दो।" उन सारे लोगों की बातों में जाने अस्पष्ट सा क्या था कि मेरे हठ को बढ़ाए जा रहा था और कल की घटना कई गुना बढ़कर सामने आ रही थी।

तभी मैंने देखा, दरवाज़े पर कोई छाया-सी आयी। वही द्वार के पास आकर खड़ी हो गई। भाभी ने दबी ज़बान पास जाकर चौखट के पास कान ले जाकर बोली क्या लायी हो? दूध? और तुम क्या लायीं? कोई और नहीं था? यह मुन्नी बीबी भी गज़ब करती है! नई बहू को दो दिन तो बैठने दिया होता कि दूध लेकर भिजवा दिया। खुद ही ज़रा सी तक्लीफ कर लेती। अब यहाँ तक ले आई हो तो दे दो न! शरम काहे की? तभी भीतर दूर से आवाज़ आयी "भाभी अम्मा बुला रही हैं। सुबह के लिए दाल कितनी भीगेगी बता जाओ। मुन्नी थी।

'अच्छा आयी। मेरी ओर रहस्य से मुस्कराती भाभी चल दी। धीरे-से उससे कहती गई 'माफी माँग लो ऐसी बातों से क्या फायदा? तुम्हीं छोटी बन जाओ।

फिर वही सूना कमरा था। लाल डोरी से गहरे नीले रंग का बल्ब खूटी के पास जल रहा था। अजब सपनीला-सा वातावरण था। मैं बल्ब की ओर यों ही देखता चुपचाप इस तरह बैठा रहा जैसे सारी दुनिया से बेखबर होकर कोई गम्भीर बात सोच रहा हूँ। मगर मेरी सारी चेतना दरवाज़े की ओर जा सिमटी थी। हाथ में गिलास और रेशमी साड़ी वाला आधा शरीर दिखायी दे रहा था। मैं मन-ही-मन उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा था कि वह अभी आकर मुझसे माफी माँगेगी दूध पी लेने का आग्रह करेगी। अब मैं भी उसे माफ ही कर दूँगा। घर जाकर हमारे घर के बारे में कहेगी तो मुझे भी अच्छा नहीं लगेगा। उसे पता तो यह लग ही गया कि मैं आदमी कितना ज़िद्दी हूँ।

एक मिनट दो मिनट पाँच मिनट दस मिनट काफी देर हो गई और यों बैठना भद्दा लगने लगा। मैं झटके से इस तरह सचेत हुआ

जसे सोचते-सोचते कोई बात याद आ गई हो, और सहसा चौंक उठा हूँ, फिर भी घुटनो पर हाथ रखे इस तरह बठा रहा जसे उठने ही वाला हूँ। और तब खडा होकर द्वार की ओर इस तरह चलने लगा जसे मुझे पता न हो कि वहाँ कौन खडा है। निहायत लापरवाही से उसके स्पर्श से बचता हुआ मैं द्वार स निकल आया और वह दूध लिये यों ही चुपचाप खडी रही। बाहर आते समय भर्राए-स कण्ठ की झिझकती आवाज सुनी— सुनिए! पर मैंने कुछ नही सुना, और इस तरह घडघडाता हुआ बाहर निकल आया जस मुझे किसी की चिन्ता नही है। आज फिर छत पर खुला आसमान तना था।

उस रात मैंने दो निश्चय किये। एक तो यह कि अब चाहे वह अपनी ओर स बोले या न बोल, मैं नही ही बोलूंगा। भरसक न तो कोई सम्बन्ध रखूगा न कोइ इस तरह की कमजोरी दिखाऊँगा। दूसर, खूब ध्यान म पढूगा और अपन पुरान कायक्रम पर इस तरह लौट आऊगा जस कुछ भी न हुआ हो एक बुरा सपना दखा था, जो बीत गया।

सुबह खाना बना। न बोलने का निश्चय अभी भी यों ही था। लेकिन रात का यह निश्चय कि उससे कुछ सम्बन्ध न रखूगा, अब कुछ अपनी ज्यादती लगने लगी। न बालूगा और न अपनी ओर स कोई भुलाव ही दिखाऊगा, यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन उसके हाथ का बना खाना—कम से-कम एक बार देखने के लिए ही सही—खाने में कोई बुराई नहीं लगी। हाँ जाऊँगा तभी जब कोई खुशामद करगा। वह तो सर करगी ही क्या! कान

उसके हाथ की रसोई को पहले मुझे ही खाना था। या घर म विवाह के जितने भी रीति रिवाज हो रहे थे उनसे मुझे कोई मतलब नही था। रोज पास-पडोस की औरतो की फौजें आती और तीन बजे से रात के ग्यारह बज तक बुरी तरह ढोलक पीटी जाती। बाद मे अजलियां भर भरकर बूंदी के लड्डू और बताशे बाँटे जाते। मुन्नी का तो गाते-गाते

गला पड़ गया था। भाभी बड़ी-बूढ़ियों के पर लगउ-लगते और उनके लिए पान लगाते-लगाते बुरी तरह झल्लाने और बड़बड़ाने लगी थीं। ऐसे समय में अकेले कमरे में चुपचाप कोई किताब पढ़ती या अपनी समवयस्काओं में जो उस दरवाजे या मिलन आयी होतीं, बातें करती प्रभा के पास वह पानों की डलिया और पानदान रख जाती। और जब कभी सुन आती कि छोटी बहू बड़ी से ज्यादा सुन्दर, सलीकेदार और शिष्ट है, तो आकर अपने आपसे बोलती, 'तुमने अभी तक पान नहीं लगाए बहू, वहां भाभीजी और अम्माजी मरी जाती होंगी कि ला पान ला। लाओ मैं लगा डालूं जल्दी-जल्दी। तुम नयी बहू हो न सो लजा रही हो। और फिर दो-चार लगे हुए पानों को ले जाकर बाहर वालियों की बातों में शामिल हो जातीं कि इस शादी में उन लोगों को कितना कम मिला है।

मैंने भाभी से साफ़ कह दिया कि खाना ही क्या, उसके हाथ की मैं कोई चीज़ नहीं खाऊँगा। मैं असल में देखना चाहता था कि वह क्या कहती है। इतनी देर में अम्मा ने पहली बार कहा, 'नहीं भैया, ऐसा नहीं करते। यह तो घर की रीत है। अन्न देवता का कहीं अपमान किया जाता होगा?' इस सारे काण्ड में अम्मा ने पहली बार मुझे समझाया था। यह भी मुझे आश्चर्य था कि वे मुझे डाट क्यों नहीं रही। कभी-कभी तो घर वालों की इस अप्रत्याशित शालीनता को देखकर लगता था जैसे जो कुछ मैं कर रहा हूँ उसमें उन्हें छुपा ही है। लेकिन बात-बात पर डाँटने वाली अम्मा चुप थीं। बस, कभी-कभी मौसी से बहुत धीरे-धीरे कहतीं 'क्या बताएँ बूना, हमारा तो शादी करने का सारा हौसला ही खतम हो गया। और गहरी साँस लेकर मानो शेष बात को दबा जातीं।

जब मुझे खाना खाने को बुलाया गया तो रसोई में मुन्नी अम्मा, भाभी और अमर बगरा तब बैठे थे। रसोईघर में खाना बनाने और खाने खाने की जगह का बँटवारे के लिए छाती के बराबर ऊँची एक ईंट की दीवार उठा दी गई है ताकि बने भोजन का परदा बना रहे। वह उसकी आड़ में थी। मैं यह तो नहीं देख सका कि कब बैठकर वह

खाना बना रही है लेकिन थाली परोसते या थाली में कटोरियाँ चुनते हुए हाथ मुझे दिखायी पड़ रहे थे। अब मैंने मानो पहली बार देखा हाथ गोरे थे और हथेलियों और नाखूनों पर मेहंदी लगी थी। दो अँगुलियों में सोने की नये डिज़ाइन की नौकाकार लम्बी-लम्बी अँगूठियाँ थीं, एक हाथ में सोने की दो चूड़ियाँ—काँच की चूड़ियों के बीच में और दूसरे में काले रेशमी फीते से बँधी छोटी-सी रिस्टवाच। मुझे लगा जैसे हाथ काफी सुन्दर हैं अँगुलियाँ पतली पतली और नाजुक हैं। पहली बार उसका चेहरा भरपूर देखनेको मन हुआ। साथ ही अपनी उस सारी बेवकूफी की एँक्टिंग पर गुस्सा भी आया।

काँपते दो हाथों ने थाली बढ़ायी तो भाभी ने सँभालकर मेरी ओर सरका दी। सब लोग चारों ओर से इस तरह झुक आए जैसे मैं कोई जादू करने वाला हूँ। थाली में दो तह की हुई पतली-पतली छोटी-सी दो रोटियाँ तीन रंग एक दाल रायता दो चटनियाँ, पापड़ और अचार। देखकर ही भूख से मुँह में पानी भर आया। मुस्कराते हुए मुँह का पानी सटका और थाली अपनी ओर सरका ली। बड़ी नजाकत से पहला टुकड़ा लेकर दाल में डुबोया। सबको उत्सुकता थी कि मैं खाने की प्रशंसा किन शब्दों में करता हूँ। लेकिन जैसे ही ग्रास मुँह में रखा कि ओऽ ओऽ! करता हुआ बाहर भागा। बाहर ज्यों-का-त्यों मुँह नीचा करके सारा उलट दिया। आँखों में बुरी तरह पानी भर आया।

'क्या हुआ? क्या हुआ?' सब मेरी ओर स्तब्ध-सी देखने लगीं। लगा जैसे प्रभा के हाथ से बेलन छूटकर नीचे जा गिरा हो।

'हुआ मेरा सिर! दाल कड़वी जहर कर रखी है। मुझे नहीं खाने थे सपने भाग!' मैंने पहलवान की तरह झुककर एक टुकड़ा तोड़कर भाभी से लगाया और फिर जोर की ठोकर थाली में मारकर उछलती कटोरियों को बिना पीछे मुड़कर देखे ही बाहर चला आया। शायद रुआँसी सी आवाज भी सुनी थी मैंने सो चल ली थी दाल।

खूब हंगामा मचा। 'बहू खाना बनाना नहीं जानती। "अब यह

सब भी सिखाना होगा ।' भाभी ने ताना कसा 'दिखाने वक्त किसी को क्या पता कि खाना किसने बनाकर खिलाया है । बड़ी चली थी रिस्टवाच पहनकर खाना बनाने ! दोनों, घड़ी का तुम चूल्हे में करोगी क्या ? या तो फाका ही कर लो या काम ही कर लो । अरे, पहली बार तो ठीक से बनाकर खिला देती ! अब चाहे अमरत ही बनाती रहो, यह बात तो अब आने से रही । अम्मा की बड़बड़ाहट सुनी, 'बड़ी आयीं, दाल तो मैंने चख ली थी ! अरे तुम्हारे यहाँ निरा नमक खाया जाता हो, हमें क्या मतलब ? जरा कम ही डाल देतीं । दुबारा माँगने में कौनसी इज्जत जानी है ! लो, अब इन्हें यह भी सिखाओ । हमें तो इस शादी में कुछ भी नहीं मिला । न लड़की ही मिली न ।

जाने क्यों मुन्नी बिलकुल चुप थी मुझे ऐसा लगा जैसे वह अम्मा की ओर है ।

दूसरे दिन उसके भाई आये और वह उनके साथ चली गई । जिन्दगी में थोड़ी-सी हलचल आयी चर्चा हुई और फिर पहले जैसी गति आ गई । दूसरे दिन ही रसोई से उठने वाली धौं और पकवानों की खुशबू बरसों पहले की बात हो गई ।

चार

"समर भैया जरा इधर देखो नीचे । नीचे से अमर की आवाज आयी । वह भाई साहब की साइकल साफ कर रहा था । झाँककर देखा चौक के दरवाजे में दो स्वयंसेवक खड़े थे । नीचे आया । "कई दिन से आप आ नहीं रहे हैं । हमने सोचा कुछ तबीयत " सुबह इधर मैंने व्यायाम की दृष्टि से शाखा जाना शुरू कर दिया था । संध्या को

'बौद्धिक जाता था। शादी और अपने मानसिक उद्वेलन के कारण जाने की मन ही नहीं हुआ। बड़ी मुश्किल से उन्हें लौटाया और निहायत उदास पाँव घिसटता हुआ लौटा आया। ये लोग अब फिर आएँगे यह आशंका ही अब डराने लगी।

सचमुच एक तूफान की तरह वह आयी और लहर की तरह चली गई। लेकिन घर में चली आती एक स्वाभाविक गति को जैसे किसी ने पकड़कर बुरी तरह झंझोड़ डाला। लगता है जैसे कोई बहुत बड़ी दुर्घटना होकर चुकी है और उसके वास्तविक प्रभाव को सही रूप से आँक पाने में अभी मन असमर्थ है। मैं तो कहता हूँ एक मुसीबत आयी और चली गई। ठीक ही कहा है किसी ने—'दूर से पहाड़ जैसी बड़ी और भयंकर दिखायी पड़ने वाली मुसीबत चाहे जितनी विशाल और विराट क्यों न दिखायी दे निकट आने पर उसमें कहीं न कहीं पगडण्डियाँ और रास्ते निकल ही आते हैं। एक बार अम्मा ने किसी से कहा, 'अपने लड़के को लड़कियों की क्या कमी? हम तो समर की दूसरी शादी कर देंगे।' सुनकर मैंने, शायद जिन्दगी में पहली या दूसरी बार जोर से डाँट दिया, एक शादी ने ही निहाल कर दिया, अब मुझे पढ़ लेने दो।' वह फिर कुछ नहीं बोलीं। भीतर कहीं यह विश्वास है कि चाहे आज न बोलूँ दो महीने चार महीने, साल-दो साल न बोलूँ, लेकिन है तो वह मेरी पत्नी ही। अब जब दोनों के भाग्य बाँध दिये गए हैं तो निभाना तो पड़ेगा ही।

मेरी जिद के कारण पहले से कोई सौदा नहीं किया जा सका और जितना उम्मीद थी उतना मिला नहीं, इसलिए अम्मा अक्सर ही कहती कहें क्या चन्दन, शादी के तो सारे होसले ही मर गए। चन्दन मामाजी का नाम है। उन्होंने ही शादी कराई थी। वे तो साफ कहतीं 'पगली लिखा लड़की के सिवा तूने कुछ और भी देखा या बस?'

विवाह के लिखा का सारा सिलसिला समाप्त हो चुका था और अब वही कठोर यथार्थ आ गया था। चीनी वाले, गेहूँ वाले सभी को

पसे देने मे घर मे रोज महाभारत होता। अक्सर ही बिना किसी कारण बाबूजी अम्मा और भाईसाहब से कहते रहते, "अब आगे कैसे होगा, इस पर भी सोचा ? उन्हे सिर्फ पच्चीस रुपये पेंशन मिलती थी। महँगाई भत्ता सब मिलाकर नियानब भाई साहब को। शादी मे साइकल मिली थी उसे ही घसीट रहे थे। बीमारी से शरीर बिलकुल जजर हो गया है, इसलिए अक्सर अम्मा चारपाई पर ही बैठी-बैठी माला जपती हुई कुछ बुदबुदाया करती हैं। दो-तीन बच्चे पढ़ने वाले हैं। अमर मट्रिक देगा सबसे छोटा कुवर अभी छटे म है। सबको पढना है। मुन्नी है ही। मुझे इस बार बसे भी इण्टर पास कर ही लेना है।

हमार घर में मुन्नी ही सबसे अभागिनी है। मुझसे दो साल छोटी है। दो-तीन साल पहले, सोलह-सत्रह का उम्र मे उसकी पढाई छुड़ाकर शादी कर दी गई। 'इतनी बडी कर ली है' के लगातार प्रहारो से मजबूर होकर घर की कुछ चीजें बेच-बाचकर, कुछ भाई साहब की शादी म मिली चाजें मिलाकर दहेज दिया। उफ क्या तग किया बरातियो न भी— हमारी खातिर यों होनी चाहिए हम यह चाहिए। ससुराल से मुन्नी के बडे ही करुणापूर्ण खत आते। यहा आती तो बुरी तरह बिलख बिलखकर रोती। सास और पति मिलकर जो-जो अत्याचार करत उन्ह किसी से कह भी तो नहीं सकती थी। इसका पता तो बाद को चला कि पति का चालचलन कैसा है और वह रातो कहाँ-कहाँ घूमता है। एक डेढ साल तो गाडी रोते झीकते खिचती रही, लेकिन सास के मरते ही मुसीबतों का पहाड अरकर टूट पडा। अब पतिदेव के हाथ पकडने वाला कौन था ! उसने जात किसका लाकर घर डाल लिया। सुनते हैं कोई ब्राह्मणी जाति की था। नौकरानी की तरह अपनी और अपनी उस रखैल की मुन्नी से सेवा कराता, और दो-दो तीन तीन दिन खाना नहीं देता था। और भी न जाने कितने कहन अनकहन अत्याचार किये। मुन्नी तो बताती ही नही थी। रात रात भर इसकी दोनो हथेलियों पर खाट के पाये रखकर इसे बुढाने और जलाने को अपनी आनन्द-क्रीडा के प्रदर्शन किये

जाते। और एक दिन सारे शरीर पर बेंतों के फूले हुए नीले निशान लेकर मुन्नी सुबह-सुबह फिर हमारे यहाँ आ गई। बस तब से यही है।

अब तो उसे देखते ही मन जाने कैसा हो जाता है! इच्छा होती है, उसके पति को पकड़कर भरे बाजार में ठोकरों और कोड़ों से खूब पीटूँ—"क्यों री, हमारी फूल-सी बहन इसलिए हमने तुझे दी थी? देख, शरीर पर चोट या लगती है।' और मैं मन ही मन दाँत पीसता उसकी काल्पनिक तस्वीर की इतनी मरम्मत करता कि उसके मुँह से भाग निकलने लगते। मुन्नी तो पता नहीं कुछ सोचती भी है या नहीं। अधिक से अधिक चुप और तटस्थ रहना उसका स्वभाव हो गया है। सब नीचे होंगे तो वह ऊपर अकेली बैठी-बैठी एकटक ताका करेगी। ऊपर से आयी तो सिकुड़ी सिकुड़ाई-सी सबकी निगाहों से बचती रहेगी। जाने क्या उलटा सीधा सोचा करती है भीतर जैसे उसे कोई चीज पीसे डाल रही हो। हम सब देखते रहते हैं वह दिन दिन पीली पड़ती चली जा रही है। अठारह उन्नीस बरस की चमकती मोती सी उम्र भुरियों और दुख के पाले में मुरझा गई है। लेकिन करें भी तो क्या? अब तो शायद जिन्दगी भर उसे यहीं रहना है। बाबूजी ने उस आदमी को कितना लिखा है बाहर और बाहर बिरादरी के प्रमुख लोगों द्वारा उस पर कितना दबाव डलवाने की कोशिश की है, लेकिन कुछ नहीं होता। खुद इतनी पढ़ी लिखी नहीं है कि कुछ कर सके। दिन रात लिखे-पढ़े तो पाँच छः साल में इतना पढ़ पाएगी कि तीस-पैंतीस की मास्टरनी बन सके। सिलाई-कटाई सीखने में भी दो एक साल चाहिएँ। फिर इतना पैसा भी एक समस्या है। यहाँ लड़कों को पढ़ाने की ही आफत मची रहती है। मुन्नी जब आयी आयी थी तो सभी उसके प्रति हमदर्दी दिखाते उसे हिम्मत बँधाते थे। अब तो सभी प्रायः भूल चुके हैं हाँ अगर नहीं भूली है तो यह स्वयं, कि घर के ऊपर वह बोझ है।

शादी के बाद अब जाने क्यों लगता है जैसे घर की वास्तविक हालत मुझे जान बूझकर दिखायी जाने लगी है। लगता ही नहीं है कि मेरी शादी

भी हुई थी। वह तो शायद कोई और था। अब तो बहू की बात भी घर में कोई नहीं करता। लगता है जैसे मेरी अनिच्छा को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। किसी एक बाहरी आदमी को भी अब घर का आदमी माना जाने लगा है इसे सब भूल गए हैं। हाँ, एकाध बार भाभी ने प्रसन्न मन स्थिति में हँसकर कहा था, "ठीक है लालाजी सब ढर्रे पर आ जाएगी। औरत को तो जब तक दबाकर नहीं रखा जाता, हाथ नहीं आती। और जहाँ पहले से ही गुमान बढ़े हों वहाँ तो फिर कहना ही क्या है! औरत तो लकड़ी का बंदर है, हमारे बाबा कहा करते थे। इतना भी मुँह न लगाएं कि आदमी को आगा-पीछा कुछ दिखायी न दे। चाहे जितनी पढ़ी लो चाहे जितनी सरकारी परी बन लो, काम तो वही करना पड़ेगा। आदमी को काम प्यारा होता है, चाम नहीं। अब इसमें क्या फायदा कि किताबें तो तुमने लाख पढ़ लीं, आने के नाम खाक-धूल कुछ नहीं। हमें तो लालाजी तुम बराबर नौंद में उठा दो, बिना देखे, सारा मिर्च-मसाला डाल देंगे, नाक कटा दें जो जरा भी कम-ज्यादा हो जाए।" फिर अपने घर की बात बताने लगतीं, 'हमारे बड़े भैया की बहू भी ऐसी ही आयी थी। किसी को अपने सामने बढ़ती ही नहीं थी। सो भैया को यह सब कहाँ बरदाश्त! दो दिन में सारा नउला झाड़ दिया। वो तो किसी किसी की आदत ही होवे है लालाजी, बिना पिटे-कुटे ठीक रास्ते पर ही नहीं चल सकें। अब भाभी बिलकुल ठीक हैं। भैया की भौं पर बल देखा नहीं, कि पत्ते की तरह ना काँप जावें।' और उन्होंने पंजा काँप-काँपकर पत्ते के काँपने का रूप रचा।

जाने क्यों मेरा मन बड़ा भारी भारी और रोगी-सा रहने लगा है। कब देखा तब यह रुपये-पैसे की तंगी का बखान। हमसे यह मकसद कि हमारी मदद करूँ। मैं तो इन लोगों के सामने पड़ते डरता हूँ। एक दिन पूछा था 'आप चाहते हैं मैं एफ० ए० का इम्तहान दूँ या नहीं?' तो झट भैया बोले, 'पढ़ने का मना कौन करता है?' मैंने कहना चाहा 'तो फिर यह रात दिन की झक झक बन्द कीजिए, पढ़ने का अहसान

भी है और पढ़ने भी नहीं देना चाहता।

कभी-कभी ऐसा मन में बड़ी प्रबल तड़प जागती है कि इस सबको भूल भालकर पढ़ने में रात दिन एक कर दूं। जो जिसकी इच्छा हो, सो कहता रहे। अपने भीतर एक और अजब बात अनुभव हो रही है। पहले जैसी एक अल्हड़ निश्चिन्तता से मन ओत प्रोत रहता था, उज्ज्वल और उन्नत भविष्य के सपने मन प्राण में झिलमिलाया करते थे वे सब बुझते चले जा रहे हैं। जो कुछ मैं करूँगा वह सामने दीखने लगा है। एक अद्भुत वितृष्णा और विरक्ति भारी निहाई की तरह जमी है और उस पर ये सारी बातें घन की तरह बज उठती हैं—एक खोखली खन खनाहट और सूनी धमक से सारा अन्तर्लोक विद्युब्ध और भयत्रस्त हो उठता है। घर में रहने को मन ही नहीं करता। दोनों वक्त खाना और सोना मजबूरी है। चुप मैं पहले भी रहता था, अब भी रहता हूं। लेकिन पहले की चुप्पी आत्म तृप्ति और सन्तुष्टि की चुप्पी थी और यह चुप्पी तो जैसे भीतर-ही भीतर अपने को रेत जा रही है। किसी भी काम में मन नहीं लगता। डमोक्लीज की लटकती तलवार की तरह बोर्ड के इम्तहान अपनी निश्चित क्रूर मंथर गति से झुके चले आ रहे हैं। कभी जब उनका ध्यान आता है तो छुरे के नीचे पड़े बकरे की तरह सारा अस्तित्व काँप उठता है। कालेज में पीरियड हो या न हो, दस से चार बजे तक का समय मैं इधर-उधर भटककर ही काट देता हूँ। कभी होस्टल में किसी के यहाँ जा बैठा, या किसी के घर चले गए। समझ में नहीं आता मेरे भीतर क्या था जो खो गया। मैं एक और बात को भी गुमसुम लगा हूँ कि लोग मुझे बिलकुल बेकार का ऐसा आदमी मानने लगे हैं जिसे कोई काम धाम न हो जिन भर बस मन भर का मुंह बनाए घूमता रहता हो। उनकी आँखों में तरसती अवज्ञा और अनादर मन के भीतर की कोमलता पर तेजाब की लकीरें खींच जाते हैं। और जब इसे सहा नहीं जाता तो बाहर पार्क में जा बैठता हूँ। तीन-तीन चार-चार घण्टे पड़ा रहता हूँ। उठने को जी ही नहीं करता। पड़ा-पड़ा जाने क्या

क्या सोचा करता हूँ। या तो वे बातें इतनी अधिक हैं कि मुझे याद नहीं हैं या कुछ भी नहीं सोचता। अचानक जब इस बात का ध्यान आता है कि निरुद्देश्य पड़े-पड़े बहुत वक्त हो गया तो पाव घण्टा घर आ जाता है। घर में कौन आया, कौन गया, क्या हुआ कुछ भी जानने की इच्छा नहीं होती। खाना अपने पर झुंझलाता है पहले जैसा निश्चिन्त बनने को तड़पता है, लेकिन बात है कि टलता ही नहीं है।

व्यर्थ व्यर्थ सारी जिन्दगी मेरी बेकार गई। निरर्थक और निरुद्देश्य रह है वे दिन जो मैंने जिये हैं और आगे आने वाले दिनों के सामने भयंकर अंधकार की दीवार खड़ी हो गई है। वहाँ कोई राह ही नहीं दीखती। हर काम करने से पहले सामने प्रश्न आता है—क्या होगा इस करके? क्या फायदा? जैसे संसार की हर चीज निरर्थक और अनावश्यक हो। जिन्दगी के रस भरे स्वप्न का जग किसी क्रूर मुट्ठी ने भींचकर निचोड़ दिया है। बस कुहासा है जो मन और आँखों के आगे छाया रहता है और निरन्तर एक बर्फीली सीलन से उन्हें निष्प्राण रखता है।

अनुभव करता हूँ जैसे मकड़ी के जाल में फँसी मक्खी-सा मैं किसी चक्कर में उलझ गया हूँ जो मेरी सारी जीवन शक्ति का अपहरण करके मुझे बूँद-बूँद चूसकर बाकी बचे खोल की तरह सूखकर काम का छोड़ जाएगा कि मैं खुद मर जाऊँ। देख रहा हूँ, महसूस कर रहा हूँ कि मेरी आँखों की ज्योति और होंठों की मुस्कराहट चली जा रही है गलती जा रही है, लेकिन आखिर रोकूँ कैसे? यह घर की चख-चख, यह हमेशा अपने मन में किसी अपराध की ग्लानि और परिताप, यह घुट घुट करना सपनों का सामान।

कॉलेज के लड़कों को देखता हूँ जो बात-बिना बात हो हा करके जोर-जोर से हँसते हैं। साथ घूमते हैं और कभी इनको बनाते हैं कभी उससे मजाक करते हैं। मुझे लगता है इनमें से मैं किसी को नहीं पहचानता। ये चलती हुई लड़कियों पर आवाजें कसना, इशारे करना, उनके

तांगा के पीछे चक्कर काटना, या धर्मशालाओं में आकर ठहरी हुई, सहा यता मांगने आने वाली शरणार्थिनी औरतों के साथ के अपने झूठे-सच्चे किस्से बखानना, अभिनेता अभिनेत्रियों की बातें करना या क्रिकेट के खिला डियों पर बहसें करना, मुझे सब एकदम नकली और झूठे लगते हैं। यही क्या, जहाँ कुछ प्रबुद्ध लड़के राजनीति पर बहस करते हैं कम्यूनिज्म से भारतीय संस्कृति के संभावित खतरों की बातें करते हैं, वहाँ जाने को भी मन नहीं करता। लगता है ये सब लोग ऐसी बात करते हैं जिनका जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सब पर मुझे झुंझलाहट भी आती है कि ये लोग चुप क्यों नहीं बैठते ? क्यों दिन रात बड़-बड़ करते रहते हैं ? क्यों बेवकूफों की तरह उछलते कूदते रहते हैं ? क्या फायदा इन बातों से ? भाई मधुबाला संसार की सबसे सुन्दर ऐक्ट्रेस सही और अशोककुमार बुड्ढा होकर भी कमाल करता है फिर तुम्हें उन सबसे क्या लेना-देना ? माना कि असली खेल की अपेक्षा उसकी रनिंग कमेण्ट्री लाख दरजे रोचक होती है और स्तालिन की लड़की की बड़ी-बड़ी करतूतें खुल रही हैं, फिर ? आप आखिर क्या चाहते हैं ? सब मिलाकर बाहर का यह सारा जीवन निरानन्द, खोखला और अनावश्यक लगता है। कभी-कभी इन लोगों से बड़ा रश्क होता है कि क्यों नहीं मैं भी इनकी तरह जी खोलकर हँस-बोल सकता, क्यों नहीं उछलकर रास्ते में पड़े सिगरेट के डिब्बे में किक लगाने को मेरा मन करता ? मगर मैं करूँ क्या, मन ही मर गया है। कालेज के लड़कों से दिन रात 'मनहूस' 'मनहूस सुनते सुनते लगता है जैसे मैं बीस साल और बुड्ढा हो गया हूँ, एक गहरी निराशा सूक्ष्म किन्तु व्यापक थकान मेरी रग रग में बैठ गई है।

बालों के पार लहराता वह भगवा ध्वज मुझसे दिन-ब-दिन दूर होता चला जा रहा है। लगता है सिनेमा देखे बरसों हो गए हैं विवाह के दिनों में एकाध देखा था। जाने कैसे मन में यह बात समा गई है कि विवाह के बाद अम्मा-बाबूजी से पैसे माँगने का अधिकार छिन गया है ! निराश और हताश मैं अकेला पड़ गया हूँ। कभी-कभी गीता पढ़ता हूँ तो

क्षणिक शान्ति मिलती है। मंदिर के एकान्त में बैठकर सोचने में सुख मिलता है। दम उसी समय लगता है जैसे मैं सब-कुछ भूलकर आया हूँ। दुश्चिन्ताओं और परेशानियों से फटती नसों को यहाँ का सुगन्धित अगरु धूम्र सहला-सहलाकर सुला देता है। हाँ, लौटते समय लगता है जैसे फिर उसी काँय-काँय वाली दुनिया में जा रहा हूँ जहाँ मनुष्य कोल्हू में पेला जा रहा है। लेकिन एक घटना के बाद अब मन्दिर जाना भी छोड़ दिया है—कमीज-पाजामा पहने एक निहायत ही कमजोर मरियल-सा पंजाबी शरणार्थी मन्दिर में घुस आया था और प्रसाद माँग रहा था। पुजारीजी ने बाहर बरगद के नीचे जलती धूनी की लकड़ी से उस कुत्ते की तरह जैसे मार-मारकर भगाया। उस दृश्य से मेरे मन में कुछ फट गया। बोला मैं कुछ नहीं सिर्फ देखता रहा जैसे छत मंजिल ऊपर से नीचे का दृश्य देख रहा हूँ, लेकिन मन्दिर में वह मेरा अन्तिम दिन था।

हर क्षण ऐसा लगता रहता है जैसे सबने मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र कर लिया है कि इसे अकेला छोड़ दो। सीधे मुझसे कुछ न कहना मेरे प्रति अपमानजनक उदासीनता दिखाना या ढाल-ढालकर इशारों में सब कुछ कहते रहना मुझे दिन रात खाए जाता है। जैसे हर आदमी मुझसे ऊबा हुआ है हरेक का मुझमें घृणा है। सबके चेहरों पर मरे लिए है बस एक तीखा तिरस्कार है। मुझे इससे डर लगता है। घर की ओर आते हुए एक विचित्र आतंक से मन धड़कता रहता है। मेरे विवाह ने आपकी आशाओं को पूरा नहीं किया यह भी क्या मेरा ही अपराध है? कभी-कभी मन में बड़ी ललक उठती है, अम्मा मुझे बुलाकर कुछ पूछती क्यों नहीं है? भाई साहब को मेरी ओर देखने की भी फुरसत नहीं मिलती। बाबूजी के प्रति मेरा भय क्या दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता ही जाएगा?

मैं प्रभा के बारे में जरा भी नहीं सोचना चाहता, लेकिन घर उसकी बुराई की कथा का कोई-न-कोई अंश, आए दिन कान में पड़ता रहता है तो मन में हल्का विरोध उठता है। क्या इन लोगों को कोई और काम नहीं है? मैंने कहा था कि मेरे पाँव में यह चक्की बाँध दो? जो

कसी घमण्डी लड़की मेरे माथे मढ़ दी है लाकर, और सारा दोष भी मुझे ही मिल रहा है। अक्सर ही मैंने उसके चित्र को मन में दुहराया है और पाया है कि निश्चय ही उस सारे व्यवहार की जड़ में उसका अहंकार है। लेकिन जब भी तटस्थ होकर सोचता हूँ तो खुद ही पूछता हूँ—यह हो कैसे सकता है कि मेरी पत्नी चार दिन मेरे घर रही हो और मैं उससे एक शब्द भी न बोला हूँ।

और जब यह सब सहा नहीं जाता तो इच्छा होती है कहीं एकान्त में बैठकर इतना रोऊँ इतना रोऊँ कि बेहोश हो जाऊँ, और वह बेहोशी कभी न टूटे। फिर भी मन में यह क्या कमजोरी है कि कामना करता हूँ रोते समय तकिए का गन्दा लिहाफ होंठों से न रगड़ा जाए माथा मंदिर के ठण्डे संगमरमर के खम्भे से न टिका हो, और गाल पर लॉन की सूखी घास न चुभती रहे। नहीं जानता इनकी जगह क्या हो तो मुझे शान्ति मिले।

पाँच

एक दिन खाना देते समय मुन्नी ने पूछा, "भैया, तुम भाभी से जरा भी नहीं बोले?

मैंने आशय जानने के लिए उसका चेहरा देखा और थाली अपनी ओर खींचते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, 'नहीं।' स्वर में जरा भी उत्सुकता नहीं थी। हाँ कुतूहल जरूर हुआ कि मुन्नी को यह बात सूझी क्यों।

'दूसरी शादी करोगे?' वह चूल्हे के सामने बैठी एक कोयले से या ही जमीन पर निरर्थक कुछ काढ़ती रही।

'हाँ-हाँ एक शादी कराके तो उसे गला रही हो दूसरी किसके नाम

को रोएगी ?" अचानक मेरे मुह से निकला। तभी सहसा, पहली बार क्षण के एक अविभाज्य खड में यह बात मेरे सामने बिजली-सी कौंध उठी कि इस सब घर वालों के व्यवहार से प्रभा जान कितनी दुखी हुई होगी। उसकी ओर से कभी भी किसी न सोचा ही नहीं। अब तो इस तरह सब उसे भूल गए हैं जसे वह मर गई हो। अचानक दिमाग म आया, कहीं अत्यन्त दुखी होकर उसन यहा यह तो नहीं लिख दिया कि अगर मैं उससे खुश नहीं हूं तो दूसरी शादी कर लू। पढी और सुनी, इस तरह की कई लडकियों की बातें दिमाग में आइ। मन हुआ पूछू, प्रभा न कुछ लिखा है क्या ? निगला हुआ कौर न जान किस शक्ति से उलटकर ऊपर आन लगा। मुझे खाना बस्वाद लगन लगा, भूख मर गई। उठते हुए ज्वार को एक-एक घूंट पानी से दबाकर पूछा, 'तुमने कौन कह रहा था—अम्मा ?'

'नहीं, या ही पूछा मैंन तो,' मुन्नी टाल गई। फिर जान क्या मेरे चेहरे की ओर देखकर बोली, 'रात का खाना-वाना खाकर जब भाभी अम्मा के पर दाबता रहती हैं न तभी अक्सर इस तरह की बातें होती रहती हैं।" वह अपनी कलाई ऊँची करके हाथ की चूडियां उठाती-गिराती रही।

"मुन्नी, मैं सच कहता हूं मैं घर छोडकर भाग जाऊँगा। भले ढग स पढना चाहता हू सो पढाया तक तो जाता नहीं है, अब चार-चार शादियां करके रख दा। मैंन रुआसे स्वर म कहा।

वह थोडी दर चुप रही। फिर बोली, 'अच्छा भया, एक बात बताएँ ?' स्वर स लगा जस कोइ रहस्य खोलना चाहती हो।

मर चेहर पर सवाल उभर आया। तभी सहसा भाभी द्वार पर खडी दिखायी दी। पूरा खाना बनान की जल्दी म सिफ नहाकर चली आई थी। ढर-के-ढर निचुडे कपड कधा पर पड थ। देखत ही बोली, 'अहो आज तो मुना बाबा खाना दे रही हैं। मैं इसलिए भागी आई कि लालाजी तो चुपचाप बठे होंगे कि कोई खाना दे दे तो खा लें। फिर उठकर

चले जाएँगे बिना खाये पिये । हमारे लालाजी को तो जाने क्या हो गया है !' वह धीरे से मेरे सामने वाली दीवार से पीठ टिकाकर बैठ गई । थकान से हाँफ रही थी । पेट से थी । कंधे से सारे कपड़े उतार कर मुन्नी की ओर बढ़ाकर खुशामद के स्वर में बोली, 'मुन्नी दीदी, कैसी अच्छी हो, जरा इन्हें सुखा दो ।

अच्छा जी, तुम्हें हम ही मिले हैं काम कराने को ? अपने आप क्या नहीं सुखा जाती ? मुन्नी ने नखरे से कहा ।

तुम्हारी कसम दीदीजी, सारे हाथ टूट गए धोते धोते । तुम्हारे पाँव पड़ूँ, जरा चली जाओ । भाभी ने अत्यन्त थके हुए स्वर में कहा और कुछ विचित्र-सी दृष्टि से मुन्नी की ओर देखा । फिर खुद ही हँसकर झेंप गई । मुन्नी भी हँस पड़ी और कपड़े लेकर चली गई ।

मैं छोटे छोटे टुकड़े खाता रहा । खाने की कतई इच्छा नहीं हो रही थी । भाभी थोड़ी देर माथे पर हाथ रखे अपलक कुछ सोचती रहीं, जैसे मुझे सामने देखकर कोई बात उनके दिमाग में आ रही हो । फिर अपने आपसे बोलीं 'इस बार तो दिवाली से पहले ही काफी जाड़ा पड़ने लगा । दिवाली में कितने दिन और हैं लालाजी ?'

'यही दस-पन्द्रह दिन और,' मैंने लापरवाही से जवाब दिया ।

उँगलियों की पोरों पर हिसाब लगाकर वे बोलीं "इस दिवाली को ठीक छः महीने हो जाएँगे तुम्हारी शादी को ।

सचमुच छः महीने बीत गए ! एक एक दिन चाहे जितनी घुटन में काटा हो लेकिन अब लगा यह समय कितना जल्दी गुजर गया । पता नहीं इस बीच में प्रभा का क्या हुआ ! घर में एकाध पत्र तो आया ही होगा । सोचा था कि मुन्ना से पूछूँगा । लेकिन मुन्नी मुझसे कहना क्या चाहती थी ? आज ये सब लोग मेरी शादी की ही बातें क्यों कर रहे हैं ? इधर मेरे स्वभाव में यह विचित्र बात आ गई है कि उत्सुकता और उत्साह एकदम मर ही गए हैं । जानने की उत्कण्ठा एकाध बार मन में उठी और मर गई । सोच लिया कि शायद घर में ही कोई बात

हुई होगी।

"तुम्हारा ब्याह भी क्या हुआ, लालाजी!" बड़े निराश और अपनेपन के स्वर में गहरी साँस लेकर भाभी अन्यमनस्क स्वर में बोली, क्या-क्या अरमान थे सब पर पानी फिर गया। लेन-देने की तो खैर कोई बात नहीं, एकाध साल में बात आयी-गयी हो जाती है। लेकिन वो महारानीजी तो जिन्दगी भर को बैठ गईं। उन लोगों ने शायद भैजन को लिखा है।

उनकी पिछली बात न सुनकर मैं बोला, तुम्हें ही बड़ा शौक लगा था। तुम्हीं मरी जाती थीं कि बहू ऐसी है, वैसी है।"

'लो लालाजी की बातें! मैं क्या उसके पेट में घुसके देख आई थी? सुनी-सुनायी बात मैंने कह दी। फिर गहरी साँस ली, 'ओफ्फो, हद है घमण्ड की भी! आने-जाने के नाम साल धूल नहीं और घमण्ड एसा! कसम से कहती हूँ, मैं तो इतनी बड़ी हो गई, ऐसी घमण्डिन औरत अपनी जिन्दगी में नहीं देखी। बोला, गुन-करतब हो तो नखरे भी सहे जाएँगे, कोरे नखरे कौन उठाएगा? असल में उन्होंने लेना चाहा पढ़ाई और खूबसूरती के रोब में, सो एसी राजा इन्दर की परी भी नहीं लगीं।' भाभी मेरे मुँह के भाव देखने को चुप हो गईं। फिर न जाने क्या सोचकर बोलीं, हँसो तो मुझे तब आयी जब घड़ी हाथ में बाँध के रानीजी चौके में पहुँचीं। वो तो मैं ही चुप हो गई, लेकिन जब उनने कहा कि दाल तो मैंने चख ली थी अम्माजी, तो उसी पर जमीन आसमान एक कर देती। मैंने कहा, जाने दो। बोलो जिस आदमी को सबसे पहले खाना है पहले वह खाएगा। तुम चखने वाली होती ही कौन हो!'

मैं उठ उठा। कॉलिज को देर हो रही थी। कहा, "भाभी, कालेज को देर हो रही है। यह खाया नहीं जाता। मुन्नी ने ज्यादा रख दिया है।' और मैं उठ आया।

वह पीछे से कहती रही, "हाय, अभी तुमने खाया ही क्या है

लालाजी तुम्हें मेरी कसम है, इस रोटी को तो मत छोड़ो।"

'नहीं भाभी, पीरियड खत्म करके आऊँगा तब खा लूंगा।'

चलते चलते सुनायी दिया नकली हंसी में लपेटकर कहा गया उनका वाक्य, "आ तो रही है, लेकिन दबाके रखना लालाजी कह देता है कसम से पछताओगे।

पुरुषों का चुप्पी और स्त्रियों का यह विचित्र व्यवहार समझ में नहीं आता इन दोनों का क्या अर्थ समझूं ! लेकिन मन जैसे सुबह से ही बिगड़ गया। आज अचानक बार बार मन की उदासी से यह बात उठ उठकर भागने लगी कि छ महीने हो गए, जाने उसका क्या हुआ ? मुझे क्या वह एक खत तक नहीं लिख सकती थी ? शायद मैं पढ़ता और उपेक्षा से फाड़कर फेंक देता। लेकिन उसे क्या पत्र भी नहीं डालना चाहिए था ? इस बीच में कमी होगी यह ? उस आघात के बाद उस पर क्या असर पड़ा होगा ? न जाने क्या एक दुर्निवार मचलन हृदय में हुई कि किसी तरह उसके बारे में कुछ जानूं। क्या-क्या कहा होगा उसने अपने घर जाकर ?

कभी-कभी तो मैं सिहर उठता हूं। सारी जिन्दगी इस घमण्डी लड़की के साथ कैसे कटेगी ? हमारा और उसका भविष्य क्या होने जा रहा है ? और यह फिर नये सिरे से उठने वाली दूसरी शादी की बात ? कहीं मुन्नी इसी के बारे में तो नहीं कह रही थी ?

बोट की फीस मांगने अम्मा के पास गया तो पच्चीस रुपये का नाम सुनकर ही उनका मुंह खुला रह गया, "हाय, इतने रुपए मेरे पास कहां हैं भैया ? अपने बाबूजी से ही मांगना।' बाबूजी से न मांगना पड़े इसीलिए तो मैं अम्मा के पास गया हो था। अब दिल धसक उठा। एक बार भाई साहब भाभी से मांगने की बात भी मन में आयी लेकिन जानता था कि या तो उनके पास भी नहीं होंगे या जो कुछ बेचकर के लिए पच्चीस-तीस रुपे भी होंगे उन्हें वे देंगे ही नहीं।

'बाबूजी, कल बाड की फ़ीस जानी है,' जसे-तसे मैं उनके पास जाकर मानो अपने आपस बोला। पहले तो चुप बठा रहा था फिर सिर झुकाकर निहायत ही मरियल स्वर में कहा था जसे शराब पीने के लिए रुपये माग रहा हूँ।

साझ घिरे बाबूजी एक खाट की अदवायन को कस रह थ। मेरी ओर पहले तो देखते रह फिर घनघनाती-सी आवाज म बोले, 'कितना ?"

"पच्चीस ' ' द का उच्चारण मैंन इस तरह किया माना मेरे जीवन की पच्चीस साँसें ही बाकी रह गई हों।

'हूँ," उन्होने हुकारी भरी और फिर एक रस्सी का खींचा। उसे कुहनी म दबाकर बोले, 'ये मेरी पेंशन के पच्चीस रुपये आये हैं, सो इन्हें तुम ले लो। हमारा क्या है हमें तो हड्डे पलने हैं जिन्दगी भर, सो तुम्हारे लिए करेंगे। करम म लिखा के लाए थे कि लडक धींगरे, ऊट हो जाएँ तब तक खिलाना सो खिलाएँगे। कल-परसा अमर रो रहा था कि उसकी फ़ीस भी जानी है। अभी दिवाली गयी है खर्च के मारे ढर हुआ जा रहा है। कमान वाला वही एक धीरज है सो उस तुम चूस के खा जाओगे माफ़ दीस ही रहा है। उन्होंने कमीज के भीतर हाथ डालकर बनियान की जेब से नोट निकाले और बिना गिन ही मेरे सामन खाट पर डाल दिए। "अब उठा लो इन्हें यो खडे-खडे मेरा मुह क्या ताक रहे हो ?'

मरा हिम्मत नही थी कि सामने पडे नोटों का उठा लू। एकदम मन म आया कि या ही उलटे परों चला जाऊँ और इस सारी पढ़ाई-लिखाई म लात मारकर कही से लाकर रुपयों का इतना बडा ढर लगा दू कि इन लोगा का भी मन भर जाए। कहूँ, लो रुपया कितना चाहिए ? रुपया रुपया रुपया

एक बार मुझ या ही खडा देखकर बाबूजी ने फिर सिर झुका लिया। फिर एकदम बदले हुए स्वर म बोले, 'कितनी परेशानियाँ है

समर तुम्ही सोचो। हमारा ही दिल जानता है। बताओ, मैं करूँ क्या ? कहीं दुआरा नौकरी करने को हाथ परो म दम नहीं है। इधर उस धीरज की बहू के दिन भी पूरे हो रहे ह जान को एक नयी आफत। बड़ी बहू का पहला बच्चा है तुम जानो कम खच होगा ? सार बच्चे स्कूल कॉलेज जाने वाले हैं। ठीक समय पर उन्ह भी खाना पहनना होना चाहिए। तुम्हारी अम्मा चूल्हे म सिर भोंकते भावत इस हालत को आ गई है। बुढापे का शरीर। बहुत किया उस बचारी ने भी। अब उससे नहीं होता। तीसियो साल से बिना गाँस लिये यही तो करती रही है। न हो तो जरा जाकर अपनी बहू को ही लिवा लाओ, कुछ तो मदद मिलेगी। नौकरी-कालेज वाला को खाना तो ठीक समय पर मिल जाएगा। कुछ मुन्नी हाथ बँटा लेगी। अब मुन्नी को भी यही रहना है। सारी बिरादरी के लोग थूकते हैं लेकिन करें क्या, एक मुसीबत है ?'

सारी स्थिति का बाबूजी के दृष्टिकोण से देखकर उस क्षण सचमुच उनकी मजबूरी पर मुझे बड़ी दया आई। अगर वे कटखने या चिड़चिड़े हो गए हैं तो इसम उन बेचारा का भी क्या कसूर है ? बचारे कहाँ तक करें ? गले का घूट लीलकर बड़ा साहस करके मैंने कहा, 'बाबूजी, अमर को भेज दीजिए मैं नहीं जाऊँगा।

उनका स्वर एकदम बदल गया। बड़बड़ाकर बोले, "अमर चला जाएगा। तुम्हारा तो दम निकलता है बहू का नाम सुनकर। भेड़िया है न जो खा जाएगी ! अच्छी भुलावा औलाद हुई है ! सब अपन अपने को न जाने किस लाट साहब का बच्चा समझते हैं ! किसी का कुछ जिम्मा ही समझ म नहीं आता। मुझे भी देखना है कब तक नहीं बोलेगा। साफ समझाया कि दूसरे की लड़की है क्या समझेगी, क्या कहेगी अपने घर जाकर ? हम और भी तो शादी-ब्याह करते हैं। लोग दुनिया भर की बातें करते हैं किस किसका मुँह पकड़ोगे ? लेकिन बड़े हैं कि अपनी जोरदारी म किसी को अपने सामने बोलने ही नहीं। अगल का हो तो जिन्दगी भर मत बोलियो।

बिजली की तरह भाभी की एक बात कौंध गई। स्वर में मजाक भरकर लेकिन सलाह देने के लहजे में उन्होंने एक दिन कहा था, "लालाजी, बाबूजी आज अम्माजी से क्या कह रहे थे मालूम है?" मैंने जब जवाब नहीं दिया तो बोली, "कहते थे कि न हो तो समर से कहो किसी डॉक्टर वद्य से ही मिल ले। अच्छा तरह दिखा ले, जो फ़ीस लगेगी दे देंगे।" मैं समझा नहीं पूछा, "क्या, मुझे क्या हुआ है?" तो भाभी मुंह में आंचल भरकर हँसती रहीं, और मैं क्रोध से भन्ना उठा।

आग अदवायन की रस्सी को ज़रूरत-भर-ज़रूरत बाबूजी दांत भींच भींचकर कसते रहे और मैं रुपए उठाकर बिना एक क्षण रुके चुपचाप चला आया। छि, इन लोगों का दिमाग भी कहां तक जाता है! बाबूजी शर्मा भी बड़बड़ा रहे थे और उनकी आवाज़ भर भीतर के क्रोध का बढ़ा रही थी।

जा ये कह सो करो। कहें शादी करो तो शादी कर लो। कहें, उसे पढ़ाना आओ, लिवा लाओ तो पढ़ाना लिवा आओ। जनम जिन्दगी में पचीस रुपये मांगे हैं सो यह सब सुनना पड़ा। वाह तो कहो कि दौड़ भागकर फ़ीस माफ़ करा ली थी वरना हर महीने एक महाभारत खड़ा रहता। जब पढ़ा और लिखा ही नहीं सकते ढंग से, तो पढ़ा क्या किया था? किताब-कापी के लिए पैसा नहीं मांगता। कपड़े फट रहे हैं। पुराना में ही सिकुड़ सिकुड़ाकर काम चला रहा हूं। उनके ही आसरे हम सारे जाड़े से लड़ना है। एक पैसा सिनेमा जाने या कोई चीज खाने को नहीं मांगता। उस पर यह हाल है। हुंह हम भीखरे और ऊंट हो गए हैं

अरे तुम्हें लगे तो बुलाओ बहू को, न लगे जिन्दगी भर मत बुलाओ। मुझसे पूछकर ही सारे काम होने हैं? ऐसे ही तो मेरा कहना मानते हो न! शादी करते वक्त सुनी थी मेरी एक बात? उस वक्त तो "तुम लड़के हो जी इस वक्त चुपचाप रहो। ज्यादा जबान लड़ाई तो हम तुम्हारा सिर फोड़ देंगे।' सिर फोड़ देंगे थे! अब फाड़ें न! मैं ही रह गया हूं सारे घर में दब लग जाने के लिए? अगर क्या नहीं जा सकता है?

छोटा है, छोटा है कह-कहकर उसकी आदतें बिगाड़ ली है। हमें क्या है भुगतना खुद आगे जाकर। हाँ, मैं भी दिखा दूंगा कि जिन्दगी भर बोलता हूं या नहीं। यह तो मेरे हाथ की बात है। बोलने का मजबूर तो नहीं कर सकते। शादी थोड़ ही है कि जबरदस्ती से काम हो जाएगा! और यह तो अपना मन है नहीं बोलते। बिरादरी में बदनामी होती है हुँह।

छ

काम से लौटते समय अमर मिला। दोनों हाथों में फुटबाल घुमाता हुआ शायद कहीं खेलने जा रहा था। देखते ही बोला, 'समर भया, भाभी को लेकर आ गया हूँ।'

मैं सिर झुकाए चला जा रहा था एकदम चौंक गया। मुँह से आश्चर्य से निकला, अच्छा!' और घर लौटने को उठते कदम सहसा रुक गए। कुछ देर निरुद्देश्य-सा उसके मुँह की ओर देखता रहा। फिर पूछा "कोई खास बात?

खास बात तो कुछ नहीं। बड़ी मुश्किल से भेजा है। भैया, उनके घर वाले बड़े बदतमीज हैं। मैं तो साफ कह देता हूँ आगे से नहीं जाऊँगा।'

क्यों पकड़कर पीट-पाट दिया क्या? मैंने कण्ठ को भरसक दबा कर नीचे स्वर में, जहर घुली मुस्कराहट के साथ पूछा।

बस पीटना ही बदतमीजी होती है क्या? उठते-बैठते जब देखा तब तुम्हारी बड़ी भाभी ऐसी तुम्हारे अम्मा-बाबूजी ऐसे। हम लोग बुरे हों, लेकिन अपने घर वालों के बारे में ऐसी बातें नहीं सुनेंगे उनका मरी

और समर भैया कैसे हैं यह नहीं बताया ?' मैं एकदम पूछ बैठा। स्वर में अनजान ही कोमलता आ गई थी। जाने उसने मुझे अपने घर जाकर कैसा बताया होगा !

"भैया, यह तो बात है। तुम्हारी वहाँ सब तारीफ़ करते हैं।'

तारीफ ? मैं अथाह आश्चर्य से चौंका फिर अविश्वास से बोला, तू समझा नहीं होगा।

हाँ यह भी हो सकता है।' उसने मान लिया 'वैसे तुम्हारे बारे में ज्यादा बातें नहीं हुईं। बस, एकाध बार पूछा था—कितनी पढ़ाई और रह गई है और इस समय प्रभा को ले जाने से पढ़ाई का नुकसान तो नहीं होगा ? यह भी कह रहे थे कि जितना पढ़ेंगे, उन्हें तो खुशी ही होगी। हाँ, इस बारे में बड़ा बुरा मान रहे थे कि पहली बार तो तुम्हें ही लेने जाना चाहिए था, यह कायदा है। मैंने समझा तो दिया कि गौना तो शादी के साथ हो ही गया था। फिर भैया आजकल बड़ी मेहनत कर रहे हैं।'

"बस और तो सब ठीक है ?' उसके आत्म प्रशंसा के प्रवाह को रोककर मैंने पूछा। 'तारीफ' शब्द से जो जिज्ञासा गले तक उमड़ आई थी, उसका समाधान इन बातों में नहीं होना था। 'तू समझा नहीं होगा" कहकर मैं समर को उकसाना भी चाहता था और पक्का भी करना चाहता था कि कहीं उनकी बातों में व्यंग्य तो नहीं था। अब क्या पूछूँ ? उठती लहरों की तरह यह शब्द मेरे मानसिक उद्वेग को बुरी तरह बढ़ाए जा रहा था। मन में एक प्रबल आवेश उठा कि किसी जाकर पूछूँ कि तुमने मेरे बारे में क्या कहा। उस एक क्षण को मुझे लगा कि कितना घोर अनुचित व्यवहार किया है मैंने भी ! आज अदालत में खड़ा करके कोई मुझसे पूछे कि सुहाग रात के दिन तुम अपनी पत्नी से क्यों नहीं बोले थे ? क्या केवल इसीलिए कि तुम्हें देखते ही वह गठरी बनकर नहीं बैठ गई थी और या ही खड़ी रही थी ? या सिर्फ इसलिए कि तुम्हारी आकांक्षाएँ बहुत ऊँची थीं और तुम नारी को उसमें बाधक मानते थे विवाह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध

कर दिया गया था ? छि, यह भी कोई ठोस कारण है न बोलने का ? अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए उस समय मैं क्या जवाब दूंगा ? क्या आधार बताऊँगा उस सारे व्यवहार का, सिवा एक भावुक आवेश के ? मुझे लगा मेरा सारा व्यवहार ग़लत ही नहीं मूर्खतापूर्ण भी था। आत्म ग्लानि से मेरा मन भर आया।

"बस, और तो कोई खास बात नहीं है। पूछते थे कि कब लौटाएँगे ? भाभी कुछ कमजोर-सी हो गई है, सो कहते थे कि ज़रा दवा वगैरा की जरूरत पड़े तो ध्यान रखिए।' अमर ने कहा, और चलने को तयार हो गया।

क्या तबियत खराब रही थी ? एकदम मैंने पूछा और साथ ही अपनी कमजोरी पर झेंप भी आई।

हाँ थोड़ा रही हो। दार्शनिकों की तरह कहता हुआ अमर बाल को या ही उछालता और लपकता हुआ गायब हो गया।

ध्यान रखने को कहलवाया है ! हुँह यहाँ बाबूजी कह रहे थे कि ठीक समय पर खाना पीना मिल जाएगा। दूसरी बार बहू आयी है और सारा काम उसीसे कराने की योजनाएँ बन गई हैं। कम-से-कम दो एक बार तो आ लेने दो। हमारे घर का रवैया भी अजब है ! तब क्या उसने मेरी तारीफ की होगी सचमुच ? नहीं नहीं अमर समझा नहीं होगा।

या घर चलते समय वही झिझक लग रही थी लेकिन लगा कि पिछले दिनों छायी उदासी की काई छट गई है और नीचे का निर्मल लहराता जल निकल आया है। किसी तरह इस बात पर विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि उसने घर जाकर मेरे बारे में कुछ भी नहीं कहा। नहीं जी कुछ-न कुछ तो कहा ही होगा। कहीं ऐसा भी हो सकता है ! लेकिन अगर कहा होता तो अमर से बात ताने में डालकर किसी-न किसी तरह कह जरूर दी जाती। और लोगों के बारे में भी तो कहा ही गया। उस समय मुझे अपनी प्रचण्ड मूर्खता पर क्रोध आता रहा कि मैंने जी भरकर उसका चेहरा

भी नहीं देखा। अब उसके सामने पड़ूंगा कैसे, यही सोच-सोचकर प्राण सूखे जा रहे थे। यहां न बोलने का बंधन पालन में क्या तुक थी? उस समय मन में आ रहा था कि अपने प्रति किये गए बड़े-से-बड़े अपराध को या तो हँसकर टाल दूं या ध्यान ही न दे। अपने पर आश्चर्य भी हो रहा था कि इतनी ताज़गी, ऐसा हल्कापन भर भीतर कहाँ भरा था?

तब भी निहायत गम्भीर चेहरा लिये, अपने को अधिक-से-अधिक स्वाभाविक बनाए मैं घर आया मानो अमर मुझसे नहीं मिला और न मुझे प्रभा के आने की बात ही पता है। वही मुन्ना भकुआ-सा-मुंह और सूजे होंठ। मुझे देखकर दूर से ही मुन्नी चिल्लायी, 'अमर भैया, भाभी आ गईं।'

"आ गईं तो मैं क्या करूँ?" जाने कैसे मेरे मुंह से निकला और उसी पल वह डॉक्टर को दिखाने वाला संकेत भी दिमाग़ में कौंध गया। मन अकारण ही झुंझला आया। अपनी कोठरी की ओर इस तरह चलता रहा जैसे कालेज में बहुत परिश्रम करके आया हूँ और अब अपनी पुस्तकें रखने की जल्दी में हूँ। उस समय अपने आपको किस तरह नियंत्रित कर रहा था, मैं ही जानता हूँ।

खुले किवाड़ों में सामने ही अपनी कोठरी में मुझे उसका संदूक दिखायी दिया। मन पुलक उठा। उत्सुकता हुई कि देखूं, कमरे में और क्या-क्या नयी चीज़ आ गई हैं। यह जानकर संतोष भी हुआ कि प्रभा को रहने को कोई और जगह ही नहीं है, रहना तो मेरी ही कोठरी में है। विवाह के दिनों में जो कमरा हमें मिला था वह फिर से भाई साहब के कब्ज़े में आ चुका था। अब तो उसे जाना ही पड़ेगा—देर से या जल्दी। मैं भी अब उतनी सस्ती नहीं दिखाऊँगा। कमरे में एक खूंटी पर चादर टँगी थी जिसे ओढ़कर वह आयी होगी। एक ओर दीवार के सहारे प्लास्टिक की चप्पलें। संदूक की बग़ल में ही बाँस की एक डाल्ची। उसमें सफ़र का सामान था। इधर-उधर देखकर मैंने चुपके से तौलिया हटाया। गोल-गोल मोड़कर एक 'माया' रखी हुई थी। रतन बुक स्टॉल से खरीदी

होगी। एक पन्ना पलटा, बड़े साफ और मोती जसे अक्षरों मे लिखा था—'प्रभा'। मन म उठा, पास म मैं भी अपना नाम लिख दू। फिर झट सारी चीजें चुपचाप रख दी। अगर देख लिया तो क्या समझेंगी ?

दिन ढल चुका था। मैं चुपचाप बाहर आ गया—भाभी और मुन्नी की निगाहो से जान बूझकर बचता हुआ-सा। किसी के सामने पड़ने को मन नही था। सभी मजाक करेंगे। कहाँ जाऊँ ? लान म जाकर पड़े रहने को भी इच्छा नही थी। मन्दिर जाना उस घटना के बाद बन्द ही कर दिया था। दिवाकर के यहाँ जाने की इच्छा हुई, लेकिन टाल दिया। पता नही कितनी देर लग ! यो ही सडको पर भटकता रहा। छोटे छोटे ठेले लगाए पजाबी शरणार्थिया न साबुन साग की पर्रियाँ लगानी शुरू कर दी थीं। लडके मूँगफली और चना बचन लगे थ कुछ फुटपाथो पर काठ की दुकानो पर कपड़ बनन लग थ। एक बात माननी पड़ेगी कितने साहस और अध्यवसाय के साथ इन लोगो न अपने को जमाना शुरू कर दिया है ! इतने भयानक कष्टो के बाद ऐसी प्रलय से गुजर चुकने के बाद हम लोग तो केवल भीख ही माँगते पड़ रहत। क्या-क्या इन्होने नही सहा, क्या क्या नही देखा ? अपने छूटे हुए वभव की बिछी हुई धरती को याद करते हैं मर हुओ को रोते हैं और फिर नये सिरे से उद्यम म लग जात हैं। औरतें दिन रात नलो के नीच बठी कपडे कूटती रहती हैं। बहुत दिन बाद याद आया कि मैं सघ के 'बोधिवृक्ष' मे भी नही गया। उधर ही चलू। लेकिन इतन दिन न आने का क्या कारण दूगा ? झेंप भी लगेगी। आज नही फिर किसी दिन जाऊँगा।

पिछला सारा विषाद और सारी चिन्ता उदासी कहाँ चली गई, मुझे खुद आश्चय था। कल जब इस समय इसी पुल स गुजर रहा था तो लगता मे नसें फटी जा रही थी। यह प्रभा सच ही बहुत गहरी और समझदार लडकी है। कोई और लडकी होती तो घर जाकर मेरी वह बुराई करती कि मुँह दिखाने की हिम्मत न पड़ती। बताया होगा कि पढने म व्यस्त हैं परीक्षा पास आ रही है। यही तो फक है। एक पढ़ी लिखी लडकी और

बम्बई में। हूँह, हमारे यहाँ भी क्या उस दिन जरा-सा नमक ज्यादा होने से बावेला मचा ! अरे आदमी है, जरा ज्यादा नमक पड़ ही गया तो ऐसी क्या मुसीबत आ गई ? और अब क्या उम्र जिन्दगी भर माफ़ ही नहीं किया जा सकता ? भाई नयी-नयी बहू आयी थी, घबरा गई होगी। नयी जगह नये आदमियों का बीच, और अम्मा और भाभी-जैसे भयानक आलोचक ! बेचारी बौखला गई होगी। मुझसे ही कोई कह दे कि बलाम में खड़े होकर एक पेज पढ़ दो तो एक लाइन पढ़कर नहीं सुनायी जाएगी खड़ा-खड़ा हकलाता रहूँगा और मारा शरीर पसीना-पसीना हो जाएगा।

असल में मैं शुरू से ही बहुत जल्दबाज रहा हूँ। जरा कोई बात देखी कि झट अपने विचार बना डाले। यह मेरी बहुत ही बड़ी कमजोरी है। मुझे इसमें पीछा छुड़ाना ही होगा। इस सारी घटना में तो सारा दोष मेरा ही है उनका कोई कसूर नहीं। इस समय मैं पुल की दीवार के सहारे खड़ा-खड़ा नीचे दूर तक चली जाती रेल की पटरियों को देख-देख कर अथाह आश्चर्य करता रहा कि वे कौनसी और कैसी दुश्चिन्ताएँ रही हैं कि जिनके कारण मन्दिर के उस कोने में बैठकर मैं सिसक सिसककर रोया हूँ ? और क्या वे बातें वास्तव में इस लायक थीं कि उन पर बैठ-कर यों घण्टों सिर खपाया जाए और यों रोया जाए ? उस समय मैं उनके उपमापूर्ण व्यवहार, पत्र न डालने की गुस्ताखी सबको भूल गया।

काफ़ी देर बाद जब आया तो भाभी ने न जाने कहाँ से निकलकर कहा "लालाजी, खाना-वाना नहीं खाना ? बहू भूखी बैठी है। यहाँ तो राह देखते-देखते पलकें सूज गईं कि अब आएँ अब आएँ और लालाजी के मुखड़े से दर्शन ही नहीं हो रहे। आज तो तुम मुखड़े के गये अब आये हो। मैं जानू कालेज के बाद भी नहीं आये ? परिहास उनकी वाणी से फूटा पड़ रहा था।

इधर मैंने बेकार की बातों की तरफ़ ध्यान देना छोड़ दिया था और सिर्फ़ जरूरी बातों का ही जवाब देता था। अक्सर ही भाभी के मजाकों को बुझे-से स्वर में जवाब देकर समाप्त कर डालता। किसी से बातें करने

का मन ही नहीं होता था। चाहता था उसी व्यवहार को इस समय भी बनाए रखूं ताकि कोई मरे इस आकस्मिक परिवर्तन को भाँप न ले। बड़े संयोजित स्वर में कहा 'हाँ आ ही भाभी कुछ काम था।

प्रभा के आने का भी पता नहीं ?' भाभी बोली।

मैंने या उसके चेहरे की तरफ देखा मानो उनकी बात को नहीं समझा। फिर सहसा जल्दी मचाता सा बोला 'भाभी मुझे कुछ नहीं पता। तुम मुझे पहले खाना दे दो, भूख लगी है। फिर बैठकर पढ़ना है।'

पीछे खाना मिलेगा, पहले मिठाई खिलाओ।' कहीं दूर गहराई से मुन्नी की आवाज़ सुनायी दी।

जवाब में भाभी हँस पड़ी 'अरे इन्हीं ने खिलायी मिठाई! ससुराल की मिठाई खाने को तो बड़ी जल्दी लपकेंगे।' वह हँसते समय सुन्दर लगती हैं।

"अरे तुम छोड़ो मिठाई विठाई भाभी मुझे तो रूखी रोटी दे दो, यही बहुत है। मुबारक हो मिठाई तुम्हें और ससुराल वालों को,' मैंने व्यस्तता के भाव से कहा खा पीकर जल्दी से पढ़ना बैठूंगा। बोर्ड के इम्तहान हैं।

इस समय भाभी प्रसन्न दिखायी दीं।

खा पीकर लालटेन सामने रखकर मैं पढ़ने बैठ गया। ठण्ड पड़नी शुरू हो गई थी लेकिन अभी बहुत तेज़ नहीं थी। पढ़ने में नींद जल्दी आ जाती है, अधिक परिश्रम नहीं हो पाता इसलिए मैं ज़मीन पर ही बिस्तर बिछाता और चारपाई एक ओर खड़ी रहती। उस पर मेरे गन्दे से रजाई गद्दे लदे रहते। मैं रोज़ इस बात की कसम खाता था कि बारह-एक बजे तक पढ़कर सात चार पाँच पर सुबह उठ जाया करूँ लेकिन यह प्रोग्राम कभी चल नहीं पाया। घर भर में मैं ही सबसे ऊँची क्लास में पढ़ता था इसलिए मुझे एक अलग लालटेन लेने का अधिकार था। बाकी दोनों भाई एक ही लालटेन में पढ़ते थे हालाँकि इस पर भी आये-

दिन ऊपर उठना रहता था, कि बाक़ी एक लालटेन से सारे घर का काम कैसे चले। खास तौर पर जिस दिन मैं लालटेन जलती छोड़कर सो जाता और भया देख लेत, उस दिन तो मिट्टी के तेल को लेकर जो हंगामा मचता उसका वर्णन न ही करना अच्छा है।

लालटेन के सामने पुस्तक में आँखें गड़ाए, सिर झुकाए मैं बैठा रहा। मथ्यू आर्नल्ड की 'सोहराब और रुस्तम' किताब थी। लेकिन पढ़ने का प्रयत्न करके भी पढ़ा नहीं जा रहा था। हारकर वह प्रयत्न भी छोड़ दिया। चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा। कभी-कभी ध्यान आ जाता तो पन्ना पलट लेता। देखना मैं यह चाहता था कि वह आखिर क्या करती है। जानता था जब घर का सारा काम खत्म हो जाएगा, वहाँ की सारी बातें हो लेंगी, यहाँ की सारी बातें जब मुन्नी और भाभी से सुन ली जाएँगी। तो वह आएगी। मैं उसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था। आखिर कितनी बातें और करनी हैं?

परे की आवाज़ से लगा बाई आ रही है। अभी तक नीचे बातें करने की जो भनभनाहट सुनायी दे रही थी वह भी बन्द हो गई। मैंने देखा कि इधर अम्मा बिलकुल चुप थीं। वे स्पष्ट उपेक्षा दिखा रही थीं। उन्हें जाड़ा ज्यादा लगता था सो रजाई चुपचाप ओढ़े हाथ में माला की थैलिया लटकाए, मन-ही मन उसकी गुरिया गिन रही होंगी मैंने वहीं बैठे-बैठे अनुमान लगाया। एक मन हुआ कि चलू ज़रा बाहर से नीचे झाँककर देखू कि देर क्या है। लेकिन एक तो अगर भया अपने कमरे में हुए तो देख लेंगे, दूसरे ऊपर से अम्मा का कमरा या बैठक की जगह नहीं दिखायी देती थी। यों मैं डरता डरता सा अनावश्यक रूप से बाहर छत के एक ओर मुंडेर के सहारे बनी क्यारी तक हो आया था। फिर कल्पना करने लगा—मुन्नी अपनी चारपाई पर पड़ी होगी, नाक तक रजाई खींचे। भाभी अम्मा के पाँव दबा रही होंगी और शायद मुन्ना की चारपाई से लगी, झुकी सिमटी-सी प्रभा बैठी-बैठी सुन रही होगी। मना रही होगी कि जल्दी से इन लोगों की बातें समाप्त हों तो दिन भर की हारी-थकी

जाकर आराम करे।

लगा दरवाज़े पर आकर कोई चुपचाप खड़ा है। छाया से जाना वही थी। या तो मुझे पढ़ता हुआ देख रही थी, या भीतर आने में झिझक रही थी। कुछ देर बाद भीत से ढग से आकर उसने इतने आहिस्ते-से सन्दूक खोला कि ज़रा भी आवाज़ न हो। सरसराहट से अनुमान लगाया कि कपड़े निकाले होंगे। कुछ देर या ही बैठी सोचती रही, फिर घुटनों पर हाथ रखकर उठी और बाहर चली गई। थकी है। शायद कपड़े बदलने बाहर गयी है। मेरी सारी इन्द्रियों की चेतना कानों में आ समायी थी। चूड़ियों की हल्की झनक, वस्त्रों की सरसराहट स्वस्थ युवा नारी शरीर की अजब सी सुगन्ध का झोंका जैसे कमरे में आया और चला गया। मन विभोर हो आया और तने तारों पर बड़ी टंकार की तरह नसें लरज उठीं। अपने भीतर व्याप्त होने वाले इस विचित्र उल्लास की उष्णता को मैं समझ नहीं पा रहा था। लेकिन यह उष्णता जैसे रग रग में फैलकर मेरे रोए रोए में समा गई थी। पिछली सारी बातें दिमाग़ से उड़ गईं और भविष्य के न जाने कितने सुखपूर्ण दाम्पत्य जीवन के सुनहले चित्र झलमलाकर थिरकने लगे। सैकड़ों सिनेमाओं और कहानियों में देखे-पढ़े हृदय प्रेम की क्रीड़ाएँ दिमाग़ में आईं—कैसे हम लोग खेलेंगे एक-दूसरे को तंग करेंगे, गुदगुदाएँगे, नाराज़ होकर मनाया करेंगे। प्रभा शैतानी से मेरी किताब लेकर भाग जाया करेगी कि मैं अब पढ़ना बन्द करके उससे बातें करूँ, लेकिन मैं गुस्सा दिखाकर उसके पीछे भागा करूँगा। वह सारा हास्य विनोद, बिजली की तरह थिरकती किलकारियाँ और बादल की तरह बरसता उल्लास मैं स्पष्ट अपनी आँखों के सामने देखता रहा।

क्रम-क्रम से उठकर चलते हुए उसके पैरों के पीछे पीछे मेरी दबी सी दृष्टि दरवाज़े तक गयी। पाँवों में महावर लगा था। गोरी एड़ियों पर चाँदी के तोड़िये झूल रहे थे जो कदम रखने पर साड़ी की किनारियों से ढक जाते थे और उठाने पर झलक उठते थे। एक कदम बढ़कर उसने

देहली पार की तो मुझे लगा जैसे भीतर से गले तक एक आवाज उठी चली आ रही है—"प्रभा, सुना !" बड़ी कोमल, बड़ी मधुर, उस पुकारने की उस दुनिवार इच्छा को मैं कैसे रोके रख पाया आज भी नहीं जानता। बड़ा मुश्किल से मैंने अपने आपको समझाया कि वह कपड़े बदलने गयी है और अभी आती होगी। किताब कागज पढ़ाई सब मेरे सामने से चले गए। भावनाओं की आंधी में डूबा बस मैं ही वहां रह गया था जो हर पल अपने पर से अधिकार खोता चला जा रहा था। लगा, जिस धरती पर मैं बैठा हूँ वह एक ओर झुकी चली जा रही है।

तभी छत के दूसरे सिरे से, शायद भैया के कमरे से, भाभी का हल्का-सा स्वर सुनायी दिया 'नहीं प्रभा, वहीं जाकर सोओ। चारपाई न हो तो मैं डाले आती हूँ। यहां अभी तुम्हारे जेठजी आते होंगे।

न जाने उसने क्या 'गुन-गुन' जवाब दिया, जिसके उत्तर में फिर भाभी का ऊँचा स्वर आया, "आखिर तुम वहां जाना क्यों नहीं चाहतीं ? उस स्वर में जाने क्या था, मुझे उनकी डॉक्टर वाली बात फिर ध्यान हो आई क्योंकि इसके बाद ही उन्होंने धीरे-से कोई मजाक की बात कही। प्रभा की ओर से झनझनाहट तेज हुई, लगा मजाक उसे अच्छा नहीं लगा। थोड़ी देर सन्नाटा रहा। फिर भाभी ने समझाने के स्वर में कहा, देखो प्रभा, मान जाओ ऐसा नहीं करते। तुम नयी बहू हो। शुरू से ही ऐसा करोगी तो फिर आगे कैसे चलेगा ? तुम्हें तो अभी सारी जिन्दगी बितानी है। यह तो सब होता ही रहता है।' उसके उत्तर में फिर प्रभा का काफी तेज, तीखा दृढ़ और उद्धत स्वर सुनायी दिया, जबरदस्ती क्यों वहां जाकर सो जाऊँ ? मुझसे तो नहीं होगा जिठानी जी, कि कोई दुत्कारता रहे और पूंछ हिलाता रहे, ठोकर मारता रहे और तलुए चाटता रहो। उनके बोर्ड के इम्तहान हैं, मैं क्या तप करूँ ? बुद्धू हो गया तो बाद में सब मेरा ही नाम लेंगे। हमारा वहां जाना तो उन्हें जरा दिखायी दिया और तुम कहती हो कि वहीं चली जाओ।

प्रत्येक शब्द में जहर बुझे तीर जैसा दम्भ और अहंकार घनघनाता

था। बन्दूक की गोली की तरह कोई चीज़ मस्तिष्क की नसों को चीरती चली गई। ऊंची मीनार से जैसे किसी ने निर्मम ठोकर मारकर धकेल दिया हो। मैं एकदम तनकर बैठ गया। दोनों भवें आपस में खिंचकर मिल गईं। चोट की गहराई को समझकर जैसे क्रुद्ध हुंकार उठी, 'हुं!' सांस का झोंका नाक से निकला और दोनों नथुने फड़क कर लाल हो उठे। तो यह बात है! मैं दृष्टि अधिक-से अधिक तीखी करके पृष्ठ के निर्जीव अक्षरों को घूरता रहा। बलवान किन्तु बन्दी शेर की तरह यही एक वाक्य कभी हृदय के इस कोने में, कभी उस कोने में प्रचण्ड वेग से टकरा-टकराकर बार-बार प्रतिध्वनित होता रहा अच्छा तो यह बात है!

आफ़! कितना बाल-बाल बचा हूं! कैसा गज़ब हो जाता अभी! पुकारने में कसर ही क्या रह गई थी? सारे शब्द ज़बान पर आ ही तो गए थे। पूरे का पूरा वाक्य मैंने सोच लिया था। कितने बड़े भ्रम और कैसी ज़बरदस्त भावुकता में बह गया था मैं! अभी पुकार ही उठता तो ज़िन्दगी भर को निगाह नीची हो जाती।

उफ़ कितना दम्भ! एक एक शब्द में जैसे तेज़ाब भरा है। यह शायद दूसरी बार इतना साफ़ उसका स्वर सुना है। कैसा उजड्ड लहज़ा है! इस कटार-जैसी तीखी वाणी के सामने ही मैं झुकने जा रहा था? इसी के? कैसे अन्तिम मौके पर रक्षा की है ईश्वर ने! सारी ज़िन्दगी रोता रहता। समझना है मुझे इस दम्भ को ही समझना है! ज़रा-सा पढ़ क्या लीं अपने को खास खुदा ही समझने लगीं। और क्या खाक पढ़ी हैं! भाभा ने ठीक कहा था—बड़ा घमण्ड है अपने पढ़ने का, अपने रूप का! भाई कोई लाख कहे स्त्री जैसा स्त्री को समझ सकती है पुरुष थोड़े ही समझ सकेगा! बिलकुल ठीक बताया था उन्होंने—मुझे दबाकर रखना होगा।

तब मुझे अपनी बाँहों में ऐसी फड़कन महसूस हुई कि अभी सीधे वहां जाऊं और लात घूंसों से ऐसी मरम्मत करूं कि सारी शेखी झड

जाए और तीन पांच भूल जाए। कभी-कभी भाई साहब खीचकर भाभी को तमाचा मार देते हैं। उसे देखकर घण्टो मेरा मन खराब रहता है। लेकिन इस क्षण लगा कि बिलकुल ठीक करते हैं। हम लाख आदर्शवादी रहें, तुलसीदास ने जो कुछ स्त्रियों के बारे में लिखा है वह हजारों साल के अनुभवों का निचोड़ है। नारी ? नारी ने बड़ा बड़ों को उँगलियों पर नचाया है। लेकिन यह वह बन्दर है जो डण्डे के आगे नाचता है।

मैं भी अभी अभी किसी बेवकूफी की बात सोच रहा था ! भविष्य के दाम्पत्य-सुख की बात, क्रीड़ा और किलकारियों की बात वह भी इस औरत के साथ ? नहीं नहीं, आज मैं सारे देवताओं और स्वयं भगवान् को साक्षी करके प्रण करता हूँ कि इस स्त्री के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, कभी समझौता नहीं होगा। हो नहीं सकता। जो अपने को दुनिया में सबसे अक्लमन्द समझता हो उससे निभ ही कैसे सकती है ? कभी नहीं कभी नहीं !

वास्तव में मेरे जैसा बेवकूफ मिलना भी बहुत मुश्किल है। जरा अमर ने कह दिया (कौन जाने झूठ या सच) और लग जमीन आसमान के कुलाबे मिलाने ! वैसे भी वह व्यंग्य को समझता कहाँ है ! ओहो, संसार कितना भयानक है ! कितना फिसलन भरा है कि जरा असावधान हुए और गये ! इस तेज धार में फिर पाँव जमाना असम्भव है तभी तो हमारे यहाँ इसे माया और भ्रम कहा गया है

तभी फिर हल्की पदचाप झनक और सरसराहट से लगा कि कोई आ रहा है मेरा सोचना रुक गया। होगा कौन ? वही रानीजी होंगी या हो सकता है बहस करके समझाने की कोशिश करने के लिए जीना में भाभी ही उठी चली आ रही हों। अगर भाभी हुईं, तो तीन घण्टे का अच्छा-खासा शास्त्रार्थ छिड़ जाएगा। कई बार दृढ़ स्वर में दुहराया आज ब्रह्मा विष्णु, महेश, संसार की कोई शक्ति क्यों न आए हमारा समझौता नहीं होगा नहीं होगा, नहीं होगा। मैं जानता हूँ वह झुकेगी नहीं। उसका अहंकार उसे झुकने नहीं देगा और यहाँ भी एसा मिट्टी के

नहीं बन। लोहे का पाला इस्पात से ही पड़ा है देखें कौन टूटता है!

तब तक वह द्वार पर आ गई—भाभी नहीं, बहो। बिना किसी झिझक के उसने दहली पार की और बिना इधर उधर देखे सीधी अपने सामान की ओर बढ़ी। मैं अधिक-से अधिक अनजान बना हुआ तना बैठा रहा। सन्दूक खुला फिर से डोलची खुली उनमें से जाने क्या-क्या निकाला रखा गया उन्हें बंद किया गया और यह सब मैं कनखियों से देखता रहा, या आवाजों से अनुमान लगाता रहा। कोठरी के दूसरे सिरे पर खड़ी हुई खाट के पास जमीन पर कुछ बिछाया गया और एक पुरानी-सी धोती को गोल गोल करके सिर के नीचे रखकर वह मेरी ओर पीठ करके लेट गई।

लेट जाओ! मेरा क्या आना-जाना है! उपेक्षा से सिर झटककर मैं फिर सोहराब और रुस्तम खण्ड-काव्य में मन लगाने की कोशिश करने लगा। आखिर यह अपने आपको समझती क्या है—स्वर्ग की अप्सरा या सरस्वती का अवतार क्या? कुछ दिमाग ही ठिकाने नहीं लगता! बच्चाजी को मालूम तो पड़ गया होगा कि किससे मुकाबला पड़ा है! मोम नहीं है कि यों ही जरा-सी गरमी से पिघल जाएगा। बताओ कोई हमें बता दे दुनिया में ऐसा उदाहरण, जहाँ सुहागरात के ही दिन इतनी दृढ़ता और संयम किसी ने रखा हो। सारा दम्भ तो उसी दिन झड़ गया होगा। सोचकर आयी होगी कि दबाकर रखूंगी, पति पालतू कुत्ते की तरह दुम हिलाएगा। जब देखा नहीं हुआ तो सोचा होगा दो एक दिन में खुद दौड़ा-दौड़ा आएगा। और मैं? मैं कहता हूँ कि जिन्दगियाँ यों ही बिता दूंगा। जरा-सा पढ़ क्या ली अपने को तीसमारखाँ ही समझने लगी। कसी पड़ी हैं सनकर पड़ी रहो रात भर पड़ी रहो जिन्दगी भर पड़ी रहो। यहाँ यह भी नहीं पूछेंगे कि क्या पड़ी हो! मर जाओगी तो उठाकर फिकवा देंगे। बाप का घमण्ड तो यहाँ सहते नहीं हैं और तुम! तुम हो किस खेत की मूली?

और सच बात तो यह है कि यहाँ जरूरत किसे थी तुम्हारी? वो

तो कहो कि घर वालों ने फँसा दिया, नहीं तो इतने सबकी नौबत ही नहीं आती। अपने घर ही खुश रहतीं। हमने समझा था, चलो समझदार होंगी। समझदार होंगी? वहां समझ जिन्दगी में आती नहीं, होती क्या चिड़िया है। कुत्ता समझता है कि गाड़ी उसी के बल चलती है। कहाँ दलदल में फँसा दिया हमें तो बाबूजी ने वरना अपने खेलते थे और मस्त रहते थे। खैर अब दो-चार हाथ यह भी सही।

और रात गहरी होती चली गई। आस-पास दूर की सांय-सांय करते गली-बाजारों में कभी-कभी चौकीदार का लम्बी लयपूर्ण आवाज लहराती पीर की तरह एक सिरे से दूसरे सिरे तक दूर चली जाती जिससे रोओं की तरह लरजती प्रतिध्वनियाँ इधर-उधर फहराकर डूबती-सी लगतीं। कभी कहीं दूर पर विचित्र विचित्र स्वर में रेल के इंजन भाँ भाँ करके चीख उठते और निद्वन्द्व भयानक दैत्य की तरह उठकर ऊपर खड़ा होती हुई उन आवाजों के नीचे कुत्तों का भोंकना ऐसा बचकाना लगता जैसे ऊँचे चिकने लोहे के लट्ठों के आसपास चूहे उछल-कूद रहे हों। कभी इक्के-ताँगे अपनी भारी खड़खड़ घोड़े के गले में बँधी घण्टियों से वातावरण को गुंजाते चले जाते और फिर गहरे सन्नाटे में लिपटा सब-कुछ करवट बदलकर सो जाता। बिना किसी भी ओर ध्यान दिये मैं अपने सामने प्रभा की काल्पनिक मूर्ति बनाकर जोशीले ढंग से उससे जाने क्या-क्या सवाल-जवाब करता रहा। भाषण देने का उस समय दौरा आ गया था। अपनी पिछली सही हुई एक-एक बात को मैं क्रोध से दुहराता, दुगने आवेग से उसका उत्तर देता उसकी व्यर्थता या अपनी बेवकूफी पर गालियाँ देता और उसे छोड़कर अगली बात उठाता। रह-रहकर उद्वेग और निष्क्रिय क्रोध से दाँत पीस-पीसकर कहता—'प्रभा जी अभी समझी नहीं हो कि आपके भाग्य ने आपको किसके सामने लाकर खड़ा कर दिया है! जब समझ लोगी तो जानोगी कि मैं आदमी कैसा हूँ!' फिर सोहराब और रुस्तम' की पंक्तियों को ऐसे आत्मविश्वास से दुहराता मानो वे इसी अवसर के लिए लिखी गई

थी। ये वे पंक्तियाँ था जहाँ रुस्तम को ललकारकर सुहराब कहता है कि 'हजारो युद्ध क्षेत्रो से मेरा वास्ता पड चुका है लेकिन आज तक कभी वह मौका नही आया कि मुझ युद्ध-क्षेत्र छोडना पडा हो या मेरा दुश्मन जिंदा बच निकला हो।' प्रभाजी, याद रखें 'नवर द फील्ड वाज लास्ट नार द फो सेन्ड'

हाँ मेरा पहले दिन का व्यवहार बिलकुल ठीक था। उसमे कोई भी बात अनुचित नही थी। ऐसे व्यक्ति के साथ यही होना चाहिए था। आज से तो इसका मान मदन मेरा पहला लक्ष्य होगा।

और रात की पहाडी घाटियो से अन्धकार का काला झरना चुपचाप फिसलता रहा, लहर लहर की तरह क्षण-पर-क्षण बीतते रहे। रात गुजरती रही। काफी देर से एक-सी जलते रहने के कारण लालटेन की बत्ती एक सिरे की ओर से कुछ अधिक जल चुकी थी, इसलिए दूसरे सिरे से लौ काफी ऊची उठने लगी थी। मैं चुपचाप बैठा सोचता रहा, सोने की याद ही किसे थी उस समय! कभी सामने सिकुडी पडी प्रभा को घृणा से देख लेता और फिर अपने आप मे खो जाता। मुह बनाकर विद्रूप से दुहराता— हम वहाँ नही जाएँगे। फिर अब क्यो आयी? ऐसी ही थी तो वही कही डूब मरती

बत्ती का सन्तुलन बिगड गया था सो धुआँ तेज होता रहा। लालटेन के सिर मे धुएँ की गाँठें जमती रही और शीशे की साफ चिमनी पर कालिमा की परत पर परत चढ़ती रही।

सात

मुझे अगले रोज अपने आप ही ऐसी प्रसन्नता अनुभव हो रही थी मानो न जाने कब कब के पुण्य प्रताप से किसी भारी दुर्घटना से बाल-बाल

बच निकला हूँ या मुझसे कोई भारी अपराध होते-होते रह गया है। रह रहकर अपने को धन्य मानता कि जरा-से भावावेश में कितनी भारी गलती से संयोगवश बच गया। कुछ देवी कृपा ही हो गई वरना रह ही क्या गया था! अब यही सही, इन श्रीमतीजी को ही देखना है जब-जब प्रभा की बात को याद करता अपने आप दाँत भिंच जाते और हर बार इस तरह विस्मय से दुहराता मानो पहली ही बार यह सत्य मेरे सामने प्रगट हो रहा है 'इतना दर्प? खाना देते समय भाभी से बोर्ड के इम्तहान का नाम क्या ले दिया उसी पर ताना? अच्छी बात है! कल की सारी बातें आज इस तरह लग रही थीं जैसे सपने में मरते-मरते बचा हूँ और अभी तक आशंका से दिल धक धक कर रहा है।

खाना खाते समय भाभी से बोला "भाभी, तुम मुझे पास होने देना चाहती हो या नहीं?'

भाभी ने फूली हुई रोटी चिमटे से बाहर निकाली और उसे जोर से चकले पर पटककर भाप निकलते देखती रहीं। मेरी बात से चौंककर मुझे देखा क्या, मैंने क्या किया लाला?'

बस जब तुम करो तभी कुछ होता है? आखिर तुम लोगों ने सोचा क्या है?'

'कुछ ठीक से बताओ तो जवाब भी दूँ। पहेलियाँ मत बुझाओ।' भाभी ने परात के गुंधे हुए आटे से एक लोई तोड़ते हुए सिर झुकाकर कहा। वह शायद समझ गई कि मैं किसके बारे में कह रहा हूँ।

अरे कहूँ क्या, जैसे तुम जानती ही नहीं! मैंने पहले ही कहा था कि मुझे इस चक्कर में मत फँसाओ, मत फँसाओ। लेकिन वहाँ तो धुन लगी थी। अब फेल हो जाऊँ तो या रोना कि आजकल के लड़के ऐसे ही हैं। जरा पढ़ लिख लें, इसके लिए तो अलग कोठरी साफ की, अब उसमें भी इस-उसको सारी दुनिया को ठूँस दोगी तो वहाँ कोई पढ़ेगा कैसे? तीन महीने की ही तो बात है, सो तुमसे रुका नहीं गया। मैंने तल्खी से कहा। ध्यान था कि कहीं-न-कहीं इधर उधर वह होगी। उस समय तो

खयाल नही किया लेकिन बाद म यही सोच-सोचकर सतोष पाता रहा कि मैन रात की बात का अच्छा जवाब दिया।

'इसन की बात तो यह है लालाजी भाभी ने बडे बूढा के ढग स कहा, 'हमारे बस की बात हो तो हमारे लिए क्या तुमसे ज्यादा कोई दूसरा हो जाएगा ? जिसम तुम्हें सुख न मिले हम वो काम करते ही क्यों ? पर अब मेरी हालत तो तुम देख ही रह हो। जितने दिन निकल रहे हैं यही हैं फिर स्कूल-वानज के लिए जाने को तुम्हें ही देर होगी। अब कम-स-कम मुन्नी बीबी के साथ यह काम तो सँभल जाएगा। और तो कुछ उम्मीद महारानीजी स है नही यही ठीक स कर दें तो परसाद बाँटूगा। मुझ तो दीखे उसम भी बीस बातें उठेंगी। फिर थोडी देर चुपचाप रोटी बलती रही 'देखें कसा करक खिलाती हैं।'

'जो तुमन बताया, यह तो सभी का काम है न फिर मैं ही इसम क्यो पिसू ? इसम मरी ही पत्नाई का तो सबस ज्यादा नुकसान होगा' भौंहें चढाकर म बोला।

अम्माजी भी कोई ज्यादा खुश थोडे ही हैं। वहाँ जसी-जसी बातें जाकर इसन लगाई हैं सब अमरलालाजी ने आकर बताइ। रुपये के भूखे हैं यो हैं वा हैं। बोला, अब तो यह तुम्हारा घर है इसके बारे में ये सारी बातें उडाओगी तो बदनामी किसकी होगी ? और रुपये के भूखे तो सभी हैं कौन नही है ? तुम्हारे बाप नही हैं ? तुम तो उनकी अकेली लाडली हो सो भी तो ठीक से लिया दिया नहीं गया। आग लगे ऐस रुपये मे। अरे हाँ कोई छाती प रखके तो ले नहीं जावे है। भया, जाना तो सभी को खाली हाथ है। शादी-ब्याह म ही आदमी दिल खोल के खच नही करे तो किस काम का वो रुपया मरा ? यही तो दो-चार मौके होयें।' इन दो चार मौको की बात कहकर ही भाभी सहसा चुप हो गइ। मैं समझ गया चर्चा थी कि अगर उनके लडका हुआ तो घर से छूछक में क्या आएगा। इसलिए भाभी इस बात स कतराती थीं। वे व्यस्त होकर रोटी बेलती रही लोई बनाती रही और मैं खाने म लगा रहा। स्त्रियो

की इन बातों में मुझे शुरू से ही कोई दिलचस्पी नहीं रही। रुककर कहा, "भाभी यह सब तो ठीक है, लेकिन यह बताओ कि मैं क्या करूँ ?'

तो लालाजी तुम्हीं बताओ, दूसरी कौनसी जगह तुम्हें दिखायी दे रही है ? वही गिनी चुनी दो कुठरियाँ हैं।"

'तो मेरी तरफ़ से भाड़ में जाओ, चूल्हे में निकलो बाबा, मेरा पीछा छोड़ो। मुझे पढ़ने दो।' मैं झुंझला उठा।

'ना लालाजी ऐसी बातें करते हो !" भाभी ने सहानुभूति से कहा, "दूसरी बार बहू आयी है और तुम ऐसी बातें कर रहे हो ?'

'कोई पहली बार आये या दूसरी बार। जब मुझे उससे कुछ लेना-देना ही नहीं है तो मैं क्या सिर-दर्द लूँ ?'

'हाय लालाजी, इतना जोर से मत बोलो, कहीं मुन्नी बीबी कहने लगेंगी कि मैं तुम्हारे कान भर रही हूँ। भाभी चुप रहीं। फिर नरमी से अपनापन भरे स्वर में बोलीं "तुम उससे इतने नाराज़ क्यों हो ?'

"बताऊँ ?' मैं बिना हिचक बोला पहली बात तो यह कि मुझे शादी अभी करनी नहीं थी। ज़बरदस्ती मेरे गले में यह पत्थर लटका दिया गया। और फिर मुझे उसकी सूरत से नफ़रत है। अब यह भी कोई ज़बरदस्ती है कि दूसरों के कहने से मैं उसे पसन्द भी करूँ ? तुमसे जो बन पड़ा वह तुमने कर लिया। आगे मेरी सारी बातों का तुमने ठेका तो लिया नहीं है।"

"पता नहीं तुम्हें क्या पसन्द नहीं है। मुन्नी बीबी और अम्माजी या भले ही नाराज़ हों, लेकिन कहती यही हैं कि घर में ऐसा सुन्दर बहू हो नहीं आयी।

'नहीं आयी होगी। मुझे तो ऐसी कोई खास बात नहीं लगी' मैंने सोचते हुए अनमने भाव से कहा।

"बाप तो कहता था कि मैंने पढ़ाई में बीस हज़ार रुपये खर्च कर दिए, बाजा सिखाया, गाना सिखाया अच्छी-से अच्छी सिलाई-कढ़ाई सिखाई। रुपया नक़द नहीं दे सका तो क्या हुआ ? अब देखें यहाँ कौनसे दफ़्तर

उलटती हैं।' फिर परिहास से कहा "न हो तो एक ड्यूटी लगा दो। सुबह जग ही उठो तो हरमुनियम पर गाया करें—जागो मोहन प्यारे।" और अपनी ही बात पर वे देर तक खुद ही हँसती रहीं।

गिलास का बासी सारा पानी एक ही घूट मे पीते हुए मैंने कहा, "मजाक मत करो, तुम्हारे हाथ जोडें हम थोडा सा पढ लेन दो।"

'अब लालाजी, अम्माजी से कहूँगी। मुझे तो कोई और जगह दिखायी नही दे रही।

"अम्माजी स कहो या भयाजी से मुझे शान्ति चाहिए "

किताबें लेकर कॉलेज चलते हुए एक बात मन म उठी। सब लोग प्रभा को सुदर बताते हैं एक बार सूरत तो अच्छी तरह देख ही लेनी चाहिए। पर तभी जसे किसी ने कहा नही कभी नहा।' मुझे ऐसी किसी कमजोरी को दिल में जगह नही देनी चाहिए। एक बार जरा-सा मन ढीला पडा नही कि जाने कहाँ ले जाकर पटक। सारा दिन यही भाव मन में छाया रहा कि चलो अच्छा ही हुआ। व्यथ की मुसीबत से पीछा छूटा, नही तो सारे समय जान को बेकार एक आफत और लगी रहती। अब निश्चित होकर अपनी पढ़ाई कर सकूगा। यही तो मेरे आत्म निर्माण के दिन हैं। दुनिया में कौन किसके लिए मरा है? सब अपना अपना रास्ता देखत हैं। फिर मुझ तो हर पल यही याद रखना होगा कि मेरा रास्ता साधारण लोगो का रास्ता नही है। मेरा रास्ता कुछ बनने और कुछ करने का रास्ता है। सब कुछ भूलकर खूब पढ़ूगा खूब मेहनत करूँगा। मेरी तरफ से चाहे सारी दुनिया भाड म जाए।

आज दिन भर तबीयत बहुत ही खुश रही, लेकिन भीतर-ही भीतर कुछ कुनकुलाता रहा—यह उपेक्षा! उपेक्षा तो मैंने आज तक किसी की भी नहीं सही।

रात वह मेरी कोठरी म नही सोयी। पता नही मुन्नी के पास या भाभी के, या कहाँ रही। मैन देखा भी नही। मुन्नी की तटस्थता और अम्मा

की चुप्पी वास्तव में मुझे आश्चर्य में डाल रही है। तब भी मुझे ऐसा महसूस होता है जैसे मुन्नी की सहानुभूति प्रभा की ही ओर है। मुन्नी के साथ ही सोयी होगी। मगर तरफ़ से कहीं सोये। देर तक मैं उसे कोई-न कोई 'सबक' सिखाने के रास्ते सोचता रहा। मैं उसकी स्पष्ट उपेक्षा और अपमान तक कर डालने के सुझाव को छोड़ने को ज़रा भी तैयार नहीं था। सोचकर लगा कि उसके प्रति लापरवाही और उदासीनता का रवैया रखना ग़लत होगा। उसे क्या पता चलेगा कि किस ग़लती की सज़ा मिल रही है? मुझे तो अब इसके दम्भ को ही देखना है, और लगा, जैसे मैं ताल ठोंककर मैदान में आ गया।

मैंने नहा धोकर भाभी से कहा "भाभी, अब तुम क्या व्यर्थ में पिसती हो? यह समय आराम करने का है। आख़िर मुन्नी है घर में और लोग हैं या सिर्फ तुम ही अकेली रह गई हो? और सबका खाने का हक़ है तो काम करने के लिए बाहर से आदमी तो नहीं बुलाए जाएँगे।'

मैंने देखा था, रात के जूठे बरतनों के ढेर के पास बैठी-बैठी एक-एक बरतन माँज रही थी। धूप थी इस तरह जैसे बरतन गरम हो। मन-ही-मन क्रूर सन्तोष से हँसा—इकलौती बेटी! उसने इन बरतनों को छुआ ही क्यों होगा? अब आया मज़ा!

और इसके बाद सारे घर का दाना बरू का खाना उसे ही बनाने को दे दिया गया। भाभी तो जैसे इसकी राह देख ही रही थीं। मुन्नी ने इधर-उधर का काम दो-एक दिन करवाया, फिर कटने लगी। असल में अकेले बैठकर रोना और सोचना ही उसे अच्छा लगता था। यों ज़बानी हमदर्दी तो हमेशा ही प्रभा के साथ रखती थी। रोटी या खाने की कोई शिकायत करता तो वह प्रभा का पक्ष लेकर कहती, 'दिन भर तो रोटी बनाने में चला जाता है। आख़िर आदमी के जान भी है या नहीं? ऊपर से ये नाज़-नख़रे निकालने वाले!' मेरी तो एकाध-बार उससे तू-तू मैं-मैं भी हो गई। मैंने तो कह दिया 'ऐसा ही है तो तू भी साफ़-साफ़ सारे

काम क्या नहा करवाती ?"

भाभी, लल्ला होगा तो सारे कपडे ले लूगी। फिर तुम इधर इधर टालो, हाँ। पहले से बात तय है। मै उधर से गुजरा तो मुन्नी कह रही थी। फिर मुझ देखकर बोली हमने भाभी से शत बदी है।' मुझे देखकर भाभी लाल हो गइ। उनका सारा चेहरा पीला पड गया था, लेकिन एक अजब गम्भीर सौन्य आ गया था। भाभी मुझे इतनी अच्छी कभी नही लगी।

व हाथ से परे धकेलकर शरमाने का नाटय करती 'हटो बीबीजी, तुम्हें हर वक्त ऐसी ही बातें रहती हैं। मरदो के सामने ये सब बातें नही करते। अब तो समझो।

अजब वातावरण था घर का! भगिन ने धोती-ब्लाउज पहले ही अपनी तरफ स लेने की घोषणा कर दी थी। जो भी आता इसी बारे म बातें करता। या सभी चाहते थ कि लडका ही हो और शायद इसीलिए सारे समय लडके की बातें करते। लेकिन भाभी या अम्मा से इस बारे म बात करो तो मानो इस मधुर कल्पना को कही नजर न लग जाए, इस लिए जान-बूझकर झुठलाती। कहा करती, "यह तो भगवान् के हाथ की बात है। अगर लडकी हुई तो क्या कोई रोक लेगा ?" मानो लडका होने की बात कहकर अपनी ही इस आशका से अपने को अभ्यस्त करना चाहती हो कि उस समय बहुत कष्ट न हो, सोलह आने वसे विश्वास उन्हें लडका ही होने का था। घर म पहला पोता होगा, इससे खुश तो अम्मा और बाबूजी सभी थ लेकिन उसके खर्चे की जब कल्पना करते तो यही कहते 'भगवान् जाने क्या होगा! क्योंकि उस हालत म दुनिया-भर के खर्चे होगे एक बडी-सी दावत देनी पडेगी। सो लडका-लडकी के विश्वास अविश्वास के बीच ये दिन गुजर रहे थे। ढीले-ढाले कपडे पहने भाभी कम-से-कम चलती फिरतीं और जाने क्या सोच-साचकर अपने ही आप मुस्कराया करती।

और आखिर एक रात को बारह बजे खूब भाग-दौड के बाद भाई साहब एक पुत्री के पिता बन गए। अम्मा ने माथे पर हाथ मारा, 'लो, घर मे पहली भवानी ही आयी।" लगा जसे उस प्रत्याशित प्रसन्नता को पाला मार गया हो, लेकिन सभी खुश रहने की कोशिश कर रहे हो। दाई का जाने क्या मिलने की उम्मीद था कि उसका मुह उतर गया। नस गम्भीरता मे बच्चे को नहलाती धुलाती रही। नस को बुलाना पडा था, क्योकि दाई को केस गम्भीर होता नजर आया। सारे कमरे से कार्बोलिक की गध निकल रही थी। उस रात सारे घर मे खूब भाग-दौड रही—कभी पानी गरम कर, कभी यह ला, कभी वह ले जा। हम सब लोग जागे। पता नहीं भाभी को कसा लगा, लेकिन बाबूजी ने तो निश्चय ही प्रसन्नता की दबी साम छोटी तात्कालिक खचा बचा। अब कोई कहेगा तो वह देंगे, लडकी होने पर काई मिठाई-दावत माँगता होगा ! ऊपर से कहा, ला पहली डिग्री आ गई घर म।'

मुन्नी ने चिढाया अब तो मुह मीठा कर दो, सबस बडे चाचा बने हो। पता नही, चाचा बनन की खुशी मुझे हुई या नही, लेकिन यही सोच-सोचकर बडा आनन्द आता रहा कि चलो अब घर मे खूब काम बढा। करने वाला प्रभा के सिवा और है ही कौन ! अब एक आदमी भाभी की सेवा सुश्रूषा करने को अलग चाहिए, अम्मा तो अपनी आयु और बीमारी के कारण किसी लायक हैं ही नहीं। माली म हाथ डालकर माला [illegible] हुए मुन्नी से सारे घर की खोज-खबर रखना उनका काम है। या फिर नाइन को आदा देती रहती हैं। भाभी का ऊपर का काम करन के लिए पांच-सात दिन नाइन रहेगी। पहल तो रात का मारा खाना बनाकर भाभी ही उनके पाँव दबाया करती थी और तब सारे घर की रिपोट ली जाती, रामायण खुलती। लेकिन अम्मा और बाबूजी तो लडकी के हाथ का बना खाना खा नहीं सकते सो वह काम तो प्रभा को करना ही है।

प्रभा सुबह न जाने कब उठकर भाभी के लिए हरीरा इत्यादि बनाना शुरू कर देती। सुबह छ बजे तक प्राय उनके सारे काम पूरे हो जाते। फिर

रात के बरतन इत्यादि साफ होते चौका धुलता और नहा धोकर जल्दी ही रसोई म घुस जाती कि कही कॉलेज जाने वालो को देर न हो जाए, या भया बिना खाए न चले जाएँ। बारह बजे तक खाना बन पाता, फिर जल्दी से चौका-बरतन का काम निपटा डालती। एकाध घण्टे दाल या गहूँ बीनना या अमर और कुवर के कपडो को भाभी के पास बठकर सीना, रफू करना होता। नामकरण के दिन कम-से-कम तीस चालीस आदमियो का तो खाना होगा ही सत्यनारायण की कथा होगी। इसके लिए मसाले दालें तयार होती। साँझ को तीन से ही फिर चूल्हे स धुआँ उठने लगता और पल्ले से आँखें पोछती वह झुक झुककर लकडियो म फूक मारती रहती। सारा चेहरा लाल रहता। रात के आठ-नौ तक यही क्रम चलता। फिर भाभी के आवश्यक काय होत। अवसर जब मैं दिवाकर के यहाँ से लौटकर देर से आता, उस समय वह अम्मा के पायताने बठकर उनके पाँव दबाती भी दीखती। शायद इसी सबम रात के साढ़े ग्यारह या बारह बज जाते।

सबसे ज्यादा आश्चय मुझे होता था यह देखकर कि वह सब-कुछ ऐसी आसानी और चुपचाप करती चली जाती है मानो मशीन हो और उसे यह सब करने में कोई कष्ट न होता हो। हर नये काम को ऐसी कुशलविवता से ग्रहण करती चली जाती कि लगता ही नही था कि करने मे कहीं भी अनिच्छा का लेश या थकान है। और मैं इसी पर खीझ उठता। उसके व्यवहार म कही अनिच्छा या थकान दीखे तो मैं अपन को उसके कष्ट से आनन्दित कर सकू मन मे कहूँ कि 'कहो बच्चाजी अब कसा लग रहा है!

हाँ शुरू मे जब तक सिर झुकाए रही तब तक किसी ने इस बात पर ध्यान नहा दिया। अब धीर धीर एक चीज लोगा के सामने स्पष्ट होन लगी कि प्रभा परदा नही करती। बाबूजी यों तो हमेशा ही खाँसकर भीतर आत थे। एकाध बार प्रभा को मुँह उघार देखा तो समझ, शायद उसे उनके आने का पता नही लगा। मगर जसे ही उनकी समझ म आया कि

प्रभा केवल घूम जाती है, परदा नहीं करती, तो उन्होंने जाने किस बात पर अम्मा से कहा था 'फिर बेटी और बहू में फर्क ही क्या रह गया ? बेटी भी मुंह खोले बाल बखेरे घूमती है और बहू को भी चिन्ता नहीं है कि पल्ला किधर जा रहा है ?" और इस पर गुरु-गुरू में खूब हंगामा मचा। भाभी ने तान कसे, सो तो कस ही, अम्मा ने भी माला के दाने गिनना छोड़कर झुंझला झुंझलाकर कहा, "बहू तुम्हारे यहाँ मरदों का कायदा नहीं होता तो न सही, लेकिन इस घर की रीत तो रखो। अरे, तुम हमसे न करो तो मत करो लेकिन बड़ों से तो कुछ हया-शरम होनी चाहिए। ऐसा भी क्या अंधेर न हमने देखा न सुना। सारी बिरादरी में चर्चा है। जो देख है सो हमारे करम में थूक। अब दरवाजे पर दुनिया जहान के लोग आएंगे, क्या कहेंगे जाकर ? भइ, तुम्हारे यहाँ नंगे नाचें, तो हम क्या है ?' भैया ने एकाध-बार मुझे भी डाँटा, 'क्यों रे समर तू बहू को रोकता नहीं है ? देख अम्मा-बाबूजी सभी इसका बुरा मानते हैं। कम से-कम जब तक ये लोग हैं इनकी मान-मर्यादा तो रखनी ही चाहिए। यों हम भी नहीं कहते कि परदा करना कोई बहुत अच्छी चीज है, मगर घर में चलता आया है। और तेरी बहू तो समझ में नहीं आता किस चीज की बनी है कि सुनती ही नहीं। अम्मा इतना डाँटती-फटकारती हैं लेकिन ध्यान ही नहीं देती कि कौन भौंक रहा है।' यह बात सच भी थी। उसने कहा कुछ भी नहीं लेकिन कभी इतना डाँटने-कहने के बावजूद परदा नहीं किया। वह जैसे इस बात को सुनती ही नहीं थी। अम्मा इसी बात से और भी झुंझलाती कि उनके कहने पर कुछ तो प्रतिक्रिया दिखाए, लेकिन वह इस विषय पर जैसे एकदम पत्थर की हो जाती। और अम्मा थीं कि हर बार कहतीं 'बहू, ऐसी भी बहयाई किस काम की ? माथे पर पल्ला ले लेने में तुम्हारा क्या जाता है ? आज तक इस घर में घूंघट ठोड़ी के ऊपर आया ही नहीं।"

सद्धान्तिक रूप से मैं परदे के खिलाफ हूँ। इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते इस सबका कारण जानता हूँ कि मुसलमानों के आने के

समय से ही इस परदे का चार बना है। लेकिन जब उसे व्यवहार में देखा तो धक्का लगा। प्रभा अम्मा बाबूजी सबके सामने मुंह खोले चली आ रही है यह दृश्य अपने आप में बड़ा अजब और नया-नया था। आखिर सास ससुर और बड़ों के प्रति आदर प्रकट करने का और क्या तरीका हो? माना कि तुम सिर झुकाकर चलती हो, लेकिन केवल आँखें झुकाने और सिर नीचा कर लेने से ही तो आदर नहीं होता। मगर मैं उससे कहूँ भी तो कैसे कहूँ? दो एक बार मुन्नी से जोर से कहा भी 'मुन्नी, तेरी यह भाभी बड़ी बदतमीज़ है। किसी ने आदर शिष्टाचार नहीं सिखाया?" लेकिन उसने इस कान सुनकर उस कान निकाल दिया। घर में काफी हो हल्ला चुकने के बाद इस ओर से लोगों को समझौते का भाव धारण करना पड़ा। बस अब तो तभी ध्यान आता है जब कोई नया आदमी आया हो। उस समय अम्मा कोशिश करती कि प्रभा इधर-उधर ही रहे क्योंकि उसके सामने कुछ कह भी नहीं सकती।

पहले कुछ दिनों तो सभी प्रभा के इतना काम एक साथ सँभाल लेने पर चकित थे लेकिन अब उसके काम में भी मीन मेख निकलनी शुरू हो गई थी। मुन्नी भी अपनेपन से कह देती भाभी इतना भी मत लगाओ। बाद में फिर कमी पड़ेगी। इस नये प्राणी के आने से घर का आर्थिक ढाँचा और भी अधिक चरमराने लगा था। सिर पर हाथ धरते हुए बाबूजी अक्सर अम्मा की चारपाई के पास टहलते, धीरज की माँ बड़ा खर्च होने लगा है। बेचारा धीरज भी क्या करे? करते-करते तो मरा जाता है। उसका कसूर भी क्या? कुनबा छोटा है? अब तो जैसे तैसे समर इण्टर पास करके कहीं लग लगा जाए तो बेचारे को साँस आए। उसे देखकर मेरा तो कलेजा मुँह को आता है। चिन्ता और काम के मारे सूख-सूखकर पिंजर रह गया है। न बोलता है न कहीं यार-दोस्तों में आता-जाता है। और आखिर शरीर भी कहाँ तक साथ दे? खेलने-खाने के दिन तो सब सूखे चले जा रहे हैं। क्या जमाना आ गया है! सोचा था कभी? इस कमबख्त मुन्नी की अलग

आफ़त है छाती पर। अब इनको जाना तो है ही। बिरादरी के बड़े लोगों से कुछ कह-कहाकर कराया तो है, थोड़ी उम्मीद भी लगती है लेकिन लोगों के मुँह तो ऐसे फूले हैं कि सीधे-सीधे कोई बात ही नहीं करता। हर आदमी बदले में कुछ पहले चाहता है।' प्रभा को देखकर खुद ही दूसरी ओर मुड़ जाते और भरे गले से कहते 'बहू ज़रा हाथ बाँधकर काम किया कर बेटा! इसी घर में बोरियों में रुपया भरा पड़ा रहता था। चार चार कनस्तर घी उठता था, लेकिन अब क्या रह गया है"

और इस चिल्ल-पों के बावजूद घर का सारा काम निर्बाध रूप से चलता रहा। मैं कॉलेज या थोड़ी देर के लिए कहीं भी बाहर जाता तो आकर देखता कि मेरी कोठरी एकदम साफ़ कर दी गई है, सारी बिखरी चीज़ें करीने से लगी हैं और लालटेन चमचमा रही है। यह सब देखकर कहीं भीतर हल्का-सा दर्द होता। प्यार में उसे पराई की थकान समझ लेता।

कभी-कभी मैं खुद अपने ऊपर झुंझला उठता। क्या यह दिन रात प्रभा प्रभा! कैसे खाती है, कहाँ रहती है कैसे काम करती है, कहीं ज़रा-सा भी आराम तो नहीं करती! अच्छे-खासे दाल-साग में मौक़े-बे-मौक़े नमक-मिर्च ज़्यादा-कम बताता रहता हूँ, ज़रूरत-बेज़रूरत अम्मा सुनो, या भाभी से उसे सुना-सुनाकर तानेबाज़ी की बातें कहता हूँ, व्यंग्य कटाक्ष करता हूँ, मतलब, किसी-न-किसी रूप में अपना ध्यान उसी ओर लगाए रहता हूँ। मानो कोई और काम ही मेरे लिए दुनिया में नहीं बचा। अरे भाई, मुझे पढ़ना है। इतना मन उसमें क्यों नहीं लगाता? अगर इस बार फेल हो गए तो दुनिया भर की बदनामी मिलेगी सो तो मिलेगी ही, आगे के सारे रास्ते बन्द हो जाएँगे। जब मुझे उसकी तरफ़ ध्यान ही नहीं देना तो लगातार उसे ही लेकर उधेड़-बुन करते रहने का आखिर मतलब क्या है? जब हर समय उसके कार्यक्रम का लेखा-जोखा रखना मेरा स्वभाव बन गया है। मुझे उसे इतना महत्व देने की ज़रूरत ही क्या है? घर में बहुत से कुत्ते बिल्ली पड़े हैं समझ लूँ कि एक वह भी है। मैं

अनेक बार निश्चय करता कि उसके बारे में कम से कम सोचूगा, लेकिन किसी-न किसी चीज के पीछे-पीछे खयाल उसी के पास जा पहुँचता। जसे ही देखता कि गन्दी बनियान अपने आप घुल गई थी और उस बाहर की रस्सी पर सूखते सन्ध्या को देख गया था लौटकर देखता हूँ कि तह की हुई करीने से रखी है—बस पढ़ना लिखना अलग और अब प्रभा की बात सोच रहे हैं।

अब एक और परिवतन दिखायी दे रहा था। पहले जब भी कोई नया और मुश्किल काम प्रभा के ऊपर आकर पडता तो यह सोचकर मुझे बडा हार्दिक सन्तोष होता कि चलो उसे कष्ट मिलेगा। मैं उत्सुकता से राह जोहता कि देखें इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। अन्तमन मे कही यह भी रहता कि देखा जाए इन अत्याचारो स परेशान होकर वह किस समय और कहाँ रोती है। उस उस समय पकडकर शर्मिन्दा करने की ताक म भी रहता। जब रात को या सुबह ठण्ड के मारे मेरे सारे शरीर म रोगटे खडे हो जाते तो खयाल आता इस समय प्रभाजी को कसा लग रहा होगा, बठी-बठी बरतन साफ कर रही होगी या चौका धो रही होगी। लेकिन इधर जब बिना प्रतिवाद या प्रतिक्रिया दिखाए वह सभी कामो को स्वाभाविकता स स्वीकार करती चली गई तो परिणाम के प्रति मरी सारी उत्सुकता धीरे धीरे मरने लगी। और उस पहली तृप्ति के स्थान पर एक विचित्र बेचनी और विक्षोभ मन के भीतर मँडराने लगे। जसे एक हथियार चुक जाने पर प्रश्न उठे कि अब क्या हो, अब आगे क्या किया जाए। आखिर यो हार तो नही ही माननी!

खाना खाते समय कभी-कभी भाई साहब भी कहते, 'अरे बहू कभी मिनट-दो मिनट उसके पास भी जाकर बठ जाया करो। अकेली का मन भी कस लगता होगा! कभी किसी चीज की जरूरत ही पड जाए।' यह ठीक था कि प्रभा परदा नही करती थी लेकिन वह भाई साहब या बाबूजी स बोलती बिलकुल नही थी, चुपचाप सिर झुकाए काम करती रहती। दोपहर को वह नित्य भाभी के पास बठती थी, इसलिए भाई साहब को

बताने का उसके हाथ पकड़कर रह जाते।

महमा सिर उठाकर देखती, मानो कुछ कहना चाहती हो पर फिर सिर झुका लेती। नामकरण-संस्कार का दिन था। संध्या को आया तो देखा कि घर में खूब हल्ला-गुल्ला मचा हुआ है। अम्मा बुरी तरह चिल्ला-चिल्लाकर कह रही हैं, "जब तक कुछ कह नहीं तो सिर पर ही चढ़ी चली आती है। दुनिया का सारा काम तुम्हारे ही मन से तो होगा? हम तो कुछ हुए ही नहीं! हम तो सब इतने बड़े मूरख हैं। बस ज्ञान तो एक तू ही घुट्टी में पीकर आयी है। सगुन-साइत के दिन क्या करके धरा है? बोलो, हम पता भी नहीं, और वहाँ इतना सब हो भी लिया?"

सब सहमे से एक ओर खड़े थे। कोठरी में अपनी चारपाई पर पड़ी भाभी खूब फूट-फूटकर रो रही थी, 'आग लग ऐसी पढ़ाई में। पढ़ाई होगी अपने लिए। पढ़ाई होगा कि दूसरे की जान लेने को होगी? हाय राम, पता नहीं अब क्या होने वाला है?' मुन्नी एक ओर खड़ी चुपचाप देख रही थी। इतना तो समझ गया कि कोई गम्भीर बात हो गई है। ढरी-सहमी-सी एक ओर खड़ी प्रभा को देखते ही कहा जा सकता था कि अपराध इसी ने किया है। कुछ दृढ़ बनने का प्रयत्न करके उसने भर्राए गले से कहा, "अम्माजी मुझे पता होता तो मैं कभी भी नहीं करती। मैंने समझा कि कोई साधारण मिट्टी का ढेला है।

"सादा मिट्टी का ढेला तो है ही" अम्मा बिफरकर बोलीं 'और हमारी पुरखा हम जवाब दिये चली जा रही है। तूने समझा काहे को? तेरे तो हिये-माथे की फूट गई थी ना? अन्धी थी! दिखाया पाड़े ही दिया होगा कि उसमें कसावा बँधा था या नहीं? बात-पर-बात कहे चली आ रही है जो एक भी बात बिना जवाब दिये छोड़ी हो! अरबी मोल लिआयी है तेरे माँ-बाप ने, बड़ों से जबान लड़ाने की। एक तो तवा सा मुँह लेके डोलती फिरे कोई आए कोई जाए, किसी की चिन्ता ही नहीं, और ऊपर-उसी जबान चलाव। मरी बड़ी होती तो इतने जवाब

पर तो जबान खींचकर जिन्दा गाड़ देती।" अम्मा की तेजी बेहद बढ़ गई। यहाँ तक कि जवाब देने की बात कहने के साथ ही उन्होंने अपने को अपमानित भी महसूस कर लिया और फौरन ही रोने लगीं।

मेरी समझ में मामला कुछ आया, कुछ नहीं। फिर भी मुन्नी से तेज स्वर में पूछा मुन्नी क्या बात है? मेरे चढ़े तेवर देखकर मुन्नी ने कोई जवाब नहीं दिया। कुंवर ने बताया, "सुबह पण्डितजी ने जिन गणेशजी की पूजा की थी न भाभी ने उनसे जूठे बरतन मांज लिए।" साथ ही भाभी का रोना और भी बढ़ गया। बात उन्हें नये सिरे से याद आ गई।

मेरा कलेजा धक से रह गया। अम्मा की सिसकियाँ अभी सुनायी दे रही थीं। भाभी कह रही थी, "कुछ हो गया तो इसका क्या जाएगा? यह तो अपने हाथ झाड़कर अलग हो जाएगी। हे भगवान्, तू दुखन वाला है। सबको समझना। दुनिया कुढ़-कुढ़कर मरी जाती है। हाय राम!"

साँस खींची जोर से दाँत भींचे और मैं दनदनाता हुआ सीधा एकदम उसके सामने जा पहुँचा—अपलक निगाहों से घूरता हुआ, जैसे बिल्ली चूहे को झपट रही हो। दाहिना हाथ ढीला किया, एक बार तोला और फिर तड़ाक! सारी शक्ति से पड़े तमाचे की पाँचों उँगलियाँ प्रभा के बाएँ गाल पर उभर आईं। वह एक ओर झोंका खाकर गिरते गिरते सँभली और या ही 'धम्' से बैठ गई। मैंने कहा, 'हरामजादी, यहाँ रहना हो तो ठीक से रहो। नहीं तो जहाँ जगह दीखे अभी चली जाओ। बड़ी नास्तिक की बच्ची बनी है!

और मैं फुटबाल का गोल कर आने वाले खिलाड़ी के अन्दाज से गरदन टेढ़ी करके उसे घूरता घूरता ही फिर अपनी जगह आकर खड़ा हो गया। सब एकदम स्तब्ध रह गए। अम्मा का सारा क्रोध और आँसू एक साथ ही उड़ गए। भाभी चुप हो गईं।

लेकिन चाँटा मारते ही एक ऐसी आत्म घाती ग्लानि का प्रचण्ड झटका मुझे अपने भीतर लगा कि मैं वहाँ खड़ा नहीं रह सका। उलटे पाँव वहाँ से लौट आया। चाँटा मारने के बाद मुझे नहीं पता किसने

क्या कहा वह राई या नहीं, वहीं पड़ी रही या किसी ने उसे उठाकर भीतर डाल दिया। हां इतना याद है कि चाटा सारी शक्ति से और भरपूर पड़ा था और मेरी पांचों उंगलियां झनझना उठी थीं।

कोठरी की दहलीज पार करते ही जैसे मेरे भीतर कोई लगातार रटने लगा 'यह मैंने क्या किया? यह मैंने क्या किया? मुझे क्या हो गया था? जिन्दगी में पहली बार एक स्त्री पर हाथ उठाया था और लग रहा था जैसे मेरा हाथ निस्पन्द होकर गला जा रहा है। भाभी पर हाथ उठाने को लेकर भाई साहब की जितनी कटु आलोचना मैंने समय-समय पर की थी, सब जैसे एक-एक करके मेरे दिमाग में आने लगी। मैं किस आवेश में अन्धा हो गया था? सात-आठ महीने में पहली बार बोला और वह भी गाली से। पहली बार की बात और वह भी तनाव में मैं बड़ी देर तक तो समझ ही नहीं पाया कि यह हो क्या गया आखिर

तब सहसा किसी ने जहर-बुझी घृणा से भीतर कहा नीच कादर, कमीने! यही तेरा आदर्शवाद है? यही तेरे महान् बनने के सपने हैं? घर में पत्ता है और दुनिया भर के विचार बघारता है?" और बिना अधिक सोचे न जाने कब की संचित रुलाई ऐसे जोर से फूट पड़ने को मचलने लगी कि मैं बेबस हो गया। यह क्या आंधी थी जिसमें मैं घिर गया था? और फिर बेबस फफक-फफककर रो पड़ा। चाहता था रोते-रोते गलकर मेरा सारा अस्तित्व आंसुओं में ही बह जाए। ऐसी ग्लानि अपने जीवन में महसूस हो रही थी कि अपने दोनों गालों पर जोर से अभ्यासवश तमाचे-ही-तमाचे मारूं कि उंगलियां ही-उंगलियां उधड़ जाएं।

आठ

मुन्नी ने पूछा 'क्या भया तुम्हार इम्तहान कब से है ?

'इम्तहान ?' मैंने गरदन खुजलायी। मुझे याद ही नहीं आया कि इम्तहान हैं कब से ? हालांकि इधर मैं इम्तहानों की तारीख और महत्व को रोज याद कर लेता था। मुन्नी ने जो कहा है उसका अर्थ क्या है मेरी समझ में यह भी नहीं आया। यही नहीं, पहली बार तो मैं यह भी नहीं पहचान सका कि सामने जो मुझसे बोल रहा है वह है कौन ? फिर इम्तहानों की बात या खयाल आया तो मैं उन्हीं के बारे में सोचता रहा। मुन्नी की उपस्थिति और उसके द्वारा पूछी बात को एकदम भूल ही गया।

मैं धीरे धीरे पागल तो नहीं होता जा रहा ? जैसे ही यह बात मन में उठी मैंने जोर देकर कई बार दुहराया 'नहीं नहीं। मैं कोई असंगत व्यवहार नहीं करता सिर्फ सोचने में एक क्रमबद्धता है। रहन-सहन का पूरा खयाल रखता हूँ। जितना ही मैं अपने को समझाता कि मैं पागल नहीं हो रहा उतना ही भीतर यह विश्वास जड़ जमाता जाता कि मैं निश्चय ही पागल होता जा रहा हूँ। अगर मान लो, यह बात सच भी है तो इसका प्रारम्भ कब से हुआ ?

समस्त शक्ति से पड़ता चाँटा झन्नाकर दूसरी ओर दीवार से टकराया हुआ सिर, फिर लड़खड़ाकर गिरती हुई देह—अकारण ही रह रहकर बिजली की कौंध की तरह जब यह दृश्य आँखों में चमक उठता तो हृदय बादलों की तरह फट जाता। हर समय पश्चाताप और ग्लानि के गढ़े हुए पंजे दिल में कसकते रहते कि मुझे यह नहीं करना चाहिए था। मुझसे उस पर हाथ उठा ही कैसे ? मैं कैसे वह जघन्यपन की हरकत कर सका ? यह सारी घटना सचमुच हुई थी ? सिर्फ मेरी कल्पना या सपना तो नहीं है ?

मगर उस भी तो यह सब नहा करना चाहिए था । मिट्टी के ढेल और गणशजी म उसे अ नर नहीं दिखायी दिया ? अगर किसी के घर इस तरह के विश्वास हैं भी, तो उनका अपमान करने का अधिकार उसे किसने दिया ? पढ़न लिखने का यही सब अथ है ? पढे तो हम भी हैं। और हजार बातों की एक बात यह कि अपनी सस्कृति और पूज्य-देवी की अवना हम किसी भी कीमत पर नहीं सह सकते । अच्छा हुआ एक सबक मिल गया । इस तरह मैं उसके अपराध को बढा-चढाकर अपने का यह समझाने की कोशिश करता कि मेरा व्यवहार उचित था। मान लो, कल को कुछ हो-हवा जाए तो उसका जिम्मेदार कौन होगा ? या 'सत्यार्थ प्रकाश' जसी पुस्तकें पढ़न से इन सब दुनिया भर के देवी-देवताओं म विश्वास उठ गया था लेकिन दूसरों के विश्वास का मुझे खयाल बराबर था । किसी को पूजा न जाए तो अपमान भी क्यों किया जाए ? सब-कुछ कहता अपने को समझाता लेकिन भीतर से कोई बोलता रहता कि हाथ उठाना ठीक नहीं हुआ ।

उस घटना के दूसरे दिन तो मेरी बाहर निकलने की हिम्मत नहीं हुई । सोकर उठा तो ऐसा लगा जैसे मैं न जाने कब का बीमार पड़ा हूँ । मेरा पोर-पोर मे न्द हो रहा था । लोगों से आँख कैसे मिलाऊँगा ? इतना बड़ा अपराध कर चुकने के बाद बाहर रोशनी म कैसे निकलूगा ? अगर कहीं वह सामने ही पड़ गई और उसके गाल का निशान मुझे दीख गया तो ? कैसे सहूँगा मैं उस दृश्य को ? और मैं इसी पश्चात्ताप म चोर की तरह बाहर निकल गया, दिन भर यों ही निर्दय और निर्हृदय भटकता रहा। पार्क म पेड के नीचे बैठ-बैठ अपने आप से पूछा—यह दिन भर अपने आप म ही डूबे रहना बात-बेबात चिड़चिड़ाना दूसरों को कष्ट पहुँचाकर आनन्द लेना व्यर्थ ही अपने पर नियन्त्रण खोकर मार-पीट कर बैठना लड़ना और रोना—यह सब मुझे आखिर हो क्या रहा है ? अपने को चाहे जैसे समझाता रहूँ लेकिन कोई मेरी इन बाहरी हरकतों को देखे तो

क्या यही अन्दाजा नहीं लगाएगा कि मैं पागल हो रहा हूँ ? अच्छी शादी हुई ! यह मुझ हो क्या गया है ?

बहुत दिनों बाद आज फिर मन्दिर की तरफ (भीतर नहीं) जाकर अपनी उसी जगह दिन भर बठा रहा उफ, मुझसे कितना जघन्य काम हो गया है ! हे भगवान् मैं क्या करूँ ?

रह रहकर अपने ऊपर झुंझलाहट आती कि यह क्या सिर-दद मोल ले लिया मैंने ? हर समय प्रभा' या प्रभा के प्रति किये गए अपने व्यवहार की जुगाली करना । इन सारी बातों म कितना नुकसान कर रहा हूँ मैं अपना ! दुनिया म बस यही एक काम रह गया है ? क्लास में गये तो गुमसुम बैठे रहे, फिर चुपचाप मुह लटकाये चले आए—चौबीस घटे केवल वही बातें ! सोत जागत बस एक ही चरखा आठ-दस महीन से खुलकर बातें करना हँसना मुस्कराना सब भूल गया मैं तो ।

उस दिन फिर मैंने सकल्प किया—जो हुआ सो हो गया । अब मैं घर-बाहर सबको भूलकर सिफ अपने इम्तहानो की ही बात सोचूगा और किसी भी तरफ ध्यान नही दूगा । जो हो गया उसे लेकर अब रात दिन अपना दिमाग खराब करना गलत है । मुझ दुनिया म किसी से कोई मतलब नही कोइ मरा सगा नही । किसी के प्रति मरी कोई गलती नही, जिम्मदारी नही । सब अपने-अपने भाग्य लेकर आते हैं अपना अपना रास्ता चुनते हैं । ह प्रभो तुम साक्षा रहना मरी आज तक की गलतियो को माफ करना । अब मैं केवल अपन तक ही रहूँगा केवल पढ़ूगा ।

और उस दिन के बाद से सचमुच मुझ अपन भीतर एक अजब परिवतन लगने लगा । पहले घर और बाहर की जो बातें मुझ दिन भर परेशान रखतीं, या जिस मरी मानसिक शान्ति घण्टों के लिए भग हो जाया करती, उन बातो को मैं देखता और फिर अपने पढने अपने इम्तहानों की बात सोचने लगता । बस पढ़ाई का यह भूत था जिस मैं बल पूवक अपने सामने रखता और दिन रात इससे ही लडता रहता । घर म

रहने से बेकार दिमाग बँटेगा इसलिए अक्सर बाहर ही रहता। यहां तो कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। चलते-फिरते किसी दूकानदार के पास से लेकर अखबार देख लेता, और दिन का अधिकांश भाग दिवाकर के साथ काटता। गप्पें लड़ाने का मौका कम ही आता। वही कभी कोई बात शुरू कर देता तो बातों का सिलसिला चल निकलता। वह अपने किन्हीं गिरीश भाई साहब की बातें निहायत ही श्रद्धा एवं गद्गद भाव से बताया करता। हर बार कहता कि वे आएँगे तो जरूर मिलाएगा। मुझे कोई खास उत्सुकता नहीं थी। आएँगे तो मिल लूंगा। सभी का आश्चर्य था कि मुझे यह पन्ने रहने का कौनसा नशा हो गया है।

उस दिन की घटना पर किसी ने कोई बात नहीं की। बाबूजी, भाई साहब, सभी ने सुना और भाभी तो लगभग प्रसन्न हुई। छोटे भाई इस तरह मुझसे कतराते थे मानो मैं बिना किसी कारण उन पर झपट पड़ूंगा। उस समय भीतर दबी आशंका उभरकर ऊपर आ जाती, सच-मुच क्या मुझे देखने से कुछ भयानक लगता है? हुँह, होगा भी। सिर झटककर मैं फिर अपने काम में लग जाता। या भी घर में सब अपने-अपने में व्यस्त रहते थे। भाभी से अब सामना ही कम होता। जब भी मैं घर आता, वे कहीं एकान्त में बैठी अपनी बच्ची से उलझी होतीं। कभी दूध पिला रही होतीं या कभी तेल लगाकर गरम पानी से नहला रही होतीं। प्रसव के बाद से घर का काम तो उन्होंने बिलकुल ही छोड़ दिया था। मुन्नी अपनी इच्छा की मालकिन थी। या तो भाभी की बच्ची को खिलाती रहती या गुम-सुम पड़ी रहती। घर का सब सारा काम अम्मा के ऊपर ही आ गया था। लेकिन मुझे इनमें से न तो ध्यान देने लायक कोई बात लगती, न कुछ अनोखा ही मालूम होता। वह कब खाती है कब आराम करती है इस बात को सोचना मैं जाने कब भूल चुका था। कभी-कभी उसका कोई पत्र आता तो हम लोगों में से कोई-न-कोई उसे जरूर खोल लेता। पढ़ने के बाद ही सबको दिया जाता। वह पत्र लिखकर चाहे किसी को डालने को दे उसे पढ़ा जरूर जाता। निश्चय

को पानी से गीला करके खोला जाता। कहीं घर के बारे में कोई उलटी सीधी बात तो नहीं आ जा रही ? वसे शायद उसने पत्र लिखने बन्द ही कर दिए थे।

सुना एक दिन अम्मा कह रही थी, 'क्या री बहू, तू चिटठी विटठी नहीं डालती ? इनके पास तेरे बाप की चिटठी आयी है। पूछा है कि तू बीमार तो नहीं है।"

क्या लिखूं अम्माजी ? आप देख ही रही हैं, सब ठीक है। चटनी पीसना छोड़कर प्रभा बोली।

अरी सो तो हम देख ही रहे हैं। पर फिर भी बिटिया, कभी-कभी डाल दिया कर दो हरफ। माँ-बाप का मन है। लिखा है कि पाँच छः खत डाले हैं तूने एक का भी जवाब नहीं दिया।" जाने कितने दिनों बाद प्रभा ने माँ का नरम स्वर सुना।

मैं राशन लाने के लिए थला खाली कर रहा था देखा कि उसकी आँखें छलछला आइ। थोड़ी देर चुप रही फिर कुछ घूटती-सी धीरे से बोली लिखूगी अम्माजी !'

मैं बिना किसी की ओर देखे वहाँ से चला आया। पता नहीं, इस बारे में और क्या बातें हुइ। बार बार बात उभरकर मन में आयी लेकिन मैंने अपने को जोर-जोर से पढ़ाई में लगा लिया।

असल में मुझे ऐसा लगने लगा था कि मेरी संवेदनशीलता और महसूस करने की शक्ति धीरे धीरे या तो समाप्त होती या सुन्न होती चली जा रही है। मुझे कोइ भी चीज इस लायक नहीं लगती थी कि उस पर सोचा जाए। उदाहरण के लिए, मेरा सारा काम अब वही करती थी। लेकिन मैं अधिक-से अधिक तटस्थ था। रात को लोटा भरकर पानी रख जाती कभी भाई साहब बाबूजी या अम्मा की इच्छा से गुड की चाय बनती तो गिलास-कटोरी में चाय चुपचाप मेरे पास आ जाती। बिना देखे कि कौन लाया है मैं उसे पी जाता। अधिकांशतः चौके में वही रहती थी इसलिए पहले-पहल खाने में बड़ी दिक्कत आई। रोटी इत्यादि

लेने के लिए मैं मुन्नी को पुकारता। अब धीरे धीरे वह खुद परोसने लगी। थाली अपनी ओर खींचकर मैं जल्दी से भगवान् का भोग लगाता और खाना शुरू कर देता। ऊपर से और रोटियां की जरूरत होती तो मैं थाली उसकी तरफ खिसका देता। जो चीज कम दिखायी देती, वही मिल जाती। पहले यह ढंग बड़ा विचित्र लगा, मन ही-मन हँसी भी आई, लेकिन अब इसमें कोई नयापन नहीं लगता। अब तो कतई झिझक नहीं होती थी। ऐसा लगता था कि यह क्रम जिन्दगी भर चलाया जा सकता है। जैसे मशीन से काम लिया नल से पानी लिया और चल दिए ठीक उसी तरह अपना काम पूरा करते ही मैं अपने में डूब जाता। सच पूछा जाए तो बोलने के सिवा सारे काम हो ही रहे थे। मैंने यह अनुभव करना एकदम भुला दिया था कि प्रभा भी कोई चलता फिरता संवेदनशील प्राणी है और उसका मुझसे भी कोई सम्बन्ध है। अब तो मैं हर बात को इस तरह देखने लगा था मानो वह बात मुझसे दूर और अलग की हो। इस प्रकार मैं सब-कुछ भूलता चला जा रहा था।

और यह भूलने का क्रम कुछ ऐसी तेजी से चला कि मुझे खुद डर लगने लगा। कहीं यह पागलपन की भूमिका ही तो नहीं है। हर गुजरा हुआ दिन मुझे सपने जैसा धुंधला और असत्य लगता, और हर आने वाली बात के प्रति एक अनुत्सुक जड़ता छायी रहती। साथ ही यह भी महसूस होता कि मैं सिर्फ संसार और अपने आस-पास को ही नहीं अपने आप को भी भूले चला जा रहा हूँ, नहाने-खाने का ध्यान नहीं रहता। कभी-कभी सनक उठती तो सब-कुछ छोड़-छाड़कर गीता पढ़ने बैठ जाता। अपने कपड़ों और चीजों की याद नहीं रहती। पढ़ते-पढ़ते किताब वहीं रखकर भूल जाता और फिर घण्टों उसे खोजता रहता। और जब वह अखबार किताबों के ढेर में ही मिल जाती तो माथा ठोक लेता। कलम पेंसिल, चाबी और पैसे अक्सर ही खोते रहते या कहूँ उन्हें रख कर भूलता रहता। हालत यहाँ तक बढ़ती चली जा रही थी कि मुझे की पढ़ी चीज सन्ध्या को भूल जाता। जिस किताब को भी उठाता

बिलकुल नयी लगती। हमेशा खोया खोया-सा रहता। लगता ऐसा था जसे मेरे भीतर की कोई चेतना शक्ति धीरे धीरे मरती चली जा रही है या जो अन्तस्तल पानी की तरल सतह की तरह आन्दोलित हो उठता था अब बरफ की तरह जमकर ठोस निस्पन्द और निर्जीव होता चला जा रहा है। कोई भी बात उस पर पड़ती और छिटककर दूर जा गिरती, मानो कुछ हुआ ही न हो।

बस एक चीज थी और वह मैं नहीं भूला था कि मुझे इम्तहान देना है।

ठोस पत्थर पर जसे जल की धारा बहती चली जाए, उसी तरह समय, दिन और रात की लहरों में बहता चला जा रहा था, और मैं चेतना-शून्य होकर देखता था कि पत्थर ज्यों-का त्यों है।

दस बजने आये थे और अभी दाल में उफान भी नहीं आया था। प्रभा जल्दी-जल्दी आटा गूंध रही थी। मैं एक बार रसोई का चक्कर लगा आया था और अब निकलने की बात ही सोच रहा था कि मुन्नी भागी हुई आयी 'छोटी भाभी, छोटी भाभी तुमने बड़ी भाभी को दूध नहीं पहुँचाया, वे नाराज होकर रो रही हैं।

प्रभा ने आटे में ही अपने को व्यस्त रखे हुए मुलायम स्वर में कहा बीबीजी दूध तो किया हुआ रखा है, लेकिन तुम देख लो अभी दाल में उफान आता होगा। सब खाने वाले आते होंगे, एक एक रोटी को बिठाना अच्छा नहीं लगता। दो चार पहले से निकाल लूं तो सँभाल लूंगी।' फिर खुशामद के स्वर में बोली 'बीबीजी तुम दे आओ न जरा। उधर चूल्हे की बगल में रखा है कटोरी से ढका हुआ।

मुन्नी ने उधर जाकर देखा तो उसका मुँह एकदम खुला रह गया 'हाय भाभी यह तो फट गया! अब?

'फट गया?' उसका चेहरा एकदम फक हो गया। हाथ का काम छोड़कर उधर लपकी, "मैंने तो ठीक रखा था, पता नहीं

तभी उधर सुना, अमर अम्मा से शिकायत कर रहा था, 'अब अम्मा तुम्ही देख लो, दस बज रहे हैं। अभी तक खाना ही नहीं बना। कब खाना खाएँ कब पढने जाएँ ?"

'तुम्ह चाह देर हो या सवर वो तो धीर धीर ही करगी," अम्मा ने ताने स कहा। व इन बातो के लिए पूजा बीच से तोड देती और अपनी बात कहकर फिर पूजा वही से शुरू कर देती। बोली, 'एक दिन का काम हो तो देर भी समझ म आव बोलो जो काम तुम्हें रोज करना है उसे भी तुम सँभाल नही सको '

अमर वहीं स कहता हुआ चौके मे आया, 'भाभी का तो आटा गुध रहा है, अभी तो दाल ही हो रही होगी।' फिर उसने रसोई के बीच वाली कमर-बराबर ऊँची दीवार स झाँककर देखा कि दाल चढी भी है या नही। धुएँ से उसकी आँखा म पानी भर आया था। मुन्नी फले हुए दूध के पास खडी थी और डरी-सहमी-सा प्रभा आटे के हाथो से ही उसे धरती से समेट रही थी। वही से अमर चिल्लाया 'यहाँ तो खूब दूध फलाया जा रहा है!

अम्मा सारा पूजा-पाठ भूल गई। बाच्छ म आग लग गई। "फला दिया दूध! चलो अच्छा हुआ! उनकी गाँठ से क्या जाता है? उनका तो बाप भूरी भस बँधवा गया है न सो रोज कभी दूध फल रहा है कभी उफान आ रहा है। उबल उबलकर सारी दाल फली जा रही है, कोई देखन वाला ही नही है। अधी हो गई हैं। पूहड चाल, सब घर हान। चलेंगी तो कभी यह तोड, कभी वह फाड। समझ म ही नही आता कि हाथ-परा म दम है भी या नही। यूथन ऊपर उठाके काम करेंगी। मस्ता रही हैं। खुद टूम के ढाई सेर भर लिया। अब बोलो बहू बेचारी भूखी मरेगी या नहीं? लच्छन एक नही है जो एक नाम सेन को भी हो। आग लग ऐसा पढाई म। दसवाँ पढा हैं य दसवाँ क्या घूर-जसी हालत कर रखा है रसोई की! चकला इधर पडा है, बेलन वहाँ लुढक रहा है। खान बठा तो उबकाई आव। हे भगवान् अच्छी

हमारे भरोसे मढी है। हम तो यहाँ जाने कस रो धोके अपने दिन निकाल रहे हैं और वहाँ आसमान से बरसता दिखायी देव है "

आगे और क्या हुआ इसकी जरा भी चिंता किये बिना मैं किताबें उठाकर पढ़ने चला आया। पहला समय होता तो न जाने क्या करता, या कहता। पर अब लगा ये सारी बात ध्यान देने लायक नहीं हैं। प्रभा ने जो कुछ किया, या प्रभा जो कुछ करती है, वह अच्छा है या बुरा—यह सब समझने की जरूरत ही महसूस नहीं होती थी। मानो जो कुछ भी हो रहा है उसमें कुछ भी असाधारण नहीं है। अब तो बिलकुल ऐसा लगने लगा था जैसे न तो प्रभा से मेरा कोई सम्बन्ध है और न घर वाले ही मेरे अपने हैं।

बीच में दो एक पीरियड खाली देखकर समय निकालकर आया तो देखा कि भरे ही कमरे में थाली ढकी रखी है। जल्दी-जल्दी पेट में डाला और फिर भागा। कुछ भी खास नहीं लगा। हाँ, घर की हवा से इतना जरूर लग गया कि बाद में उस बात पर खूब महाभारत हुआ होगा। हुँह हम क्या है! हुआ होगा

फरवरी शुरू हो गई थी और कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा था। मार्च के शुरू में ही इम्तहान थे इसलिए आजकल तयारियों के लिए छुट्टियाँ हो गई थीं। मैं अक्सर दिवाकर के यहाँ पढ़ने चला जाता। घर में कोई ऐसी जगह ही नहीं थी जहाँ बिना किसी विघ्न-बाधा के दोपहर या शाम को भी पढ़ते रहा जा सके। कोई न कोई हंगामा होता रहता या कोई-न-कोई काम निकल आता। जरा-सा दौड़कर चाची से आटा ले आओ भया! मुन्नी कहती। भाभी ही पूछतीं 'बाबूजी से कहकर कोई अच्छी-सी छुट्टी नहीं ला दोगे लालाजी! इसके अलावा साथ पढ़ने में बहुत सी बातें अच्छी तरह समझ में आती थीं। हम लोग कभी-कभी किसी प्रोफेसर के पास पूछने भी चले जाते थे। अकेले तो मेरी हिम्मत नहीं थी। उसके पास घर से बिलकुल अलग अपना एक कमरा था, इसलिए कभी-कभी रात

को भी उसके ही यहाँ रह जाता। सच पूछा जाए तो मुझे उसके यहाँ पढ़ने-सोने में घर से ज्यादा शान्ति मिलती थी। अपने घर तो जब भी जाओ या तो कोई काण्ड होकर चुका होता और उसके कारण सबके चेहरे मनहूस होते या फिर काण्ड हो रहा होता। कभी बड़ी-बड़ी अम्मा रो रही हैं कभी भाभी बड़बड़ा रही हैं। हाँ, एक चीज थी जो कभी-कभी दिल पर घूसा-जैसा मार जाती थी। प्रभा का चेहरा मैंने सदैव ही अपरिवर्तनीय और ऐसा भावहीन देखा मानो किसी ने पत्थर का बना दिया हो। हमेशा गम्भीर और कुछ हद तक मनहूस! उसकी आँखों के आस-पास काले गड्ढे बने रहते और जाड़े के मारे होंठ पपड़ाए रहते। एड़ियों में मैल भरी बिवाइयाँ झाँका करतीं।

सुबह दिवाकर के यहाँ से लौटा तो अम्मा उस प्यार से समझाकर डाँट रही थीं 'जाने सिर कब का धुला हुआ है। इसे कभी कभी तो धो लिया कर कलमुँही! बना रखा है कजरौटा। आ इधर ला मैं दियासलाई लगा दूँ इसमें। रोज रोज की झंझट ही जाए। पता नहीं कितनी जुएँ पड़ गई होंगी। खाने में जाती होंगी।'

अम्मा के स्वर में न क्रोध था न ताना। शायद इसी से उसने हिम्मत करके कहा 'अम्माजी अब तुम्हीं बताओ, किस बरतन धोऊँ!'

यह बताना बड़ा मुश्किल था कि अम्मा किस बात से भड़क उठेंगी। उनके स्वर में तेजी आ गई आ हो अब तो ये जताने लगी कि मैं इतना काम करूँ क्यों? वाह री! अच्छी बहू है तू तो काम के तान देने लगी। अरे तुझे अपना काम करने की फुरसत नहीं मिलती? खाने को तो मिल जाता है ना? जरा गिना तो दे मुझे कौनसा काम कर तू? दोनों बखत रोटी का ही काम एक काम कह लो। सो इसमें चाहो तो सारा दिन लगा दो। मुझे भी तो पता कौनसा घर है जहाँ बहुएँ काम नहीं करतीं? भला तेरे बाप के यहाँ दस नौकर लगे हैं क्या हमारे यहाँ तो सब बहुएँ ही करेंगी काम।'

मैं नल के पास कोयले से दाँत साफ कर रहा था। रोती हुई बच्ची को दोनों हाथों में झुलाते हुए भाभी ने मेरी ओर इशारा करके कहा देख लो जरा सा काम क्या करना पड़ा, राज हल्ला करवा रही है। बोलो हम नहीं करते थे? कहा किसी भी दिन अम्माजी ने कुछ? जरा सा करने क्या लगी अहसान जता रही है, अहसानों मेरे काम का तो अहसान जतइयो मती बहू जितना तूने किया है मैं तो सब ब्याज समेत चुका दूंगी। हाँ कहीं करने को कहे

भया यहीं से गरजे, क्या दिन रात चख चख होती रहती है? दिन निकला और शुरू हो गया। कोई और काम नहीं है क्या? नौ बज रहे हैं।

लेकिन उनकी बात को किसी ने नहीं सुना। अम्मा ने अपने आप ही कहा चख चख होती रहती है तब तो यह हाल है न हो तो एक दिन में सारे घर का पटरा बैठ जाए। यहाँ तो सभी खाते के देवता हैं। जब तक कुछ कहो नहीं, क्या मजाल पत्ता तक हिल जाए। अब कहूँगी नहीं तो धोती सिलेगी थोड़े ही चाहे सारी फट जाए। और मली कैसी चीकट कर रखी है देखो। क्यों री, यह गन्दी और फटी धोती तुझे नहीं दिखायी देती? यों कहो कि धोने के नाम दम निकलता है। कौन मेहनत करे! वहाँ तो पलंग पर बिठा दो और हाथ में पकड़ा दो किताब '

आँखों पर पानी के छींटे मारते हुए ही मैंने देखा धोती इतनी जगह से छनना हो रही थी कि न तो उसके मिलने की ही गुंजायश थी और न धुलने की। फटी हुई जगहों से जाड़े के स्वागत में खड़े हुए बड़े बड़े रोंगटे दिखायी देते थे। हुँह होगा हम क्या है का भाव उठा और मैं मुँह हाथ धोकर अंगोछे से मुँह और गरदन रगड़ता हुआ चला आया। मन में जरा-सी भी उत्सुकता नहीं हुई कि देखें इस झगड़े का अन्त कैसे हुआ? या बात ने आगे जाकर क्या रुख लिया? लगा सोचने और महसूस करने की शक्ति कभी मेरे भीतर थी ही नहीं।

दोपहर के बाद आया तो बाबूजी नाराज हो रहे थे, अरे हमसे परूछा

नहीं करती तो मत करो। छाती पर पत्थर रखके उसे भी सह लेंगे। लेकिन बेशर्मी की ऐसी हद तो मत करो। ऊपर जाकर सिर धोते समय तुम्हें दीखा नहीं कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे? जाड़ों में धूप सेंकने के बहाने सभी तो ऊपर छतों पर चले जाते हैं। इधर-उधर ताक-झाँक करने में उनके बाप का क्या जाता है! यह मुन्नी भी इतनी बड़ी हो गई इसे नहा सूझा? बैठी-बैठी सिर पर पानी डाल रही थी"

मुन्नी ने मुँह बनाकर कहा 'बाबूजी तुम भी अनोखी बातें करते हो। अब ऐसी तो ठंड है। तुमने तो राम राम करके उलटा-सीधा पानी डाला दो लोटे और नहाने का नाम करके चल दिए। पर हम लोगों का सिर कोई ऐसे धुलता है? दो घण्टे लगते हैं। तब तक नीचे ऐसे जाड़े में कोई कैसे भीगे? हाथ में पानी लो, तो काटने दौड़ता है। ऊपर छत पर धूप थी, अगर चली ही गई तो क्या ऐसी आफत आ गई?

"तो जाड़े तो पड़ने ही रहे। मुन्नी का रवैया देखकर बाबूजी कुछ ठण्डे हो गए। अम्मा बोलीं 'मेरे पास तो हैं नहीं तीन रुपये मन का लकड़ी कि भर पानी गरम करने को। एक हो तो किया भी जाए पूरी फौज का तो दो मन लकड़ी पानी के लिए ही चाहिए।'

अम्मा की बोलने की शक्ति इन दिनों आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई थी। नानी हमेशा बच्चों की ही टाँग खिंचती थीं।

और मेरा सारा शरीर इस तरह सुन्न रहता जैसे किसी ने अफीम का इंजेक्शन लगा दिया हो। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता जैसे मुझे किसी सख्त खोल के भीतर इतना गहरा बंद कर दिया गया है कि वहाँ न तो कोई स्वर पहुँच पाता है न कोई चीज मुझे छू पाती है। पर भीतर कोई बोलता, महसूस करता है या नहीं यह भी मैं नहीं जान पाता। या तो वहाँ संवेदनाएँ घुटकर रह जाती हैं या संवेदना जैसा कोई चीज ही नहीं रह गई है। बाहर और भीतर सब असंपृक्त लगता। लगता ऊपर की तहें तो मजबूत हो ही गई हैं लेकिन भीतर भी प्रतिक्षण कुछ जमकर सख्त होता चला जा रहा है। क्या धीरे धीरे मेरा अन्तर्बाह्य सभी-कुछ

जमकर पत्थर रह जाएगा ?

नहीं, यह सब नहीं सोचना । परीक्षाओं के पाँच सात दिन रह गए हैं ।

नौ

आखिरी पेपर करके हाल से निकला तो तबीयत बड़ी हलकी और खुश थी । परचे अच्छे हो गए थे । एक बहुत बड़ा बोझ सिर से उतरा । पहले तो एक काम था जिसमें जी जान से लगे थे लेकिन अब क्या करेंगे इस समस्या पर सोचने से पहले ही दिवाकर बोला, चलो आज खूब घूमकर सिनेमा देखा जाए । क्यों हो गए सिनेमा ही नहीं देखा । अगर वह आगे खुद ही न कह देता तो मरे जिए बड़े धर्म-संकट का विषय हो जाता आज हम दिखाएँगे और अगर माताजी राजी हो गईं तो किरण को भी ले चलेंगे । बेचारी का न जाने कब से सिनेमा देखने को नहीं मिला । सोचता होगा अच्छी बुरी में आ फँसी ।

जब हम लोग अलग हुए तो उसने फिर एक बार याद दिलाया कि मैं ठीक समय पर शाम को आ जाऊँ । ऐसा न हो कि अपनी दाल निकालने में ही उलझा रहूँ । लेकिन उस बेचारे को क्या पता था कि घर पर कौनसी घटना मेरी राह देख रही है ।

एक युग के बाद आज अचानक मुन्नी के पतिदेव तशरीफ लाये हुए थे । मुझे न जाने क्यों इस आदमी की सूरत से नफरत थी । सारे घर में एक तरह की हलचल मची थी समझ में आश्चर्य था । उन्हें टिकाया गया था बाहर वाले बैठक में । इसी में अक्सर बाबूजी और भाई साहब बैठते थे । और तो कुछ पता नहीं चला, हाँ बाद में उन्होंने यह बता दिया था कि मुन्नी को लेने आये हुए हैं । जिसने दो ढाई साल में कोई सूचना या पत्र

नहीं दिया, कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि मुन्नी मर गई या ज़िन्दा है बाबूजी के वासिया पत्र का जो चबा गया, और जिसे बिरादरी का प्रभाव भी नहीं हिला सका उस अचानक या आये देखकर सब के-सब हक्के-बक्के रह गए थे। वह मुन्नी को लेने आया है इस सुनकर मैं तो स्तम्भित ही रह गया। घर में सब लोग बड़े सहमे-सहमे और आपस में बातचीत करने का उलझे घूम रहे थे। प्रभा और मुन्नी चुपचाप चौके में लगी थीं। भाभीजी और अम्मा धीरे-धीरे घुसुर-पुसुर कुछ बातें कर रही थीं तरह-तरह के अनुमान लगा रही थीं और रह रहकर कुवर को बाहर भेज देती थीं जा चुपके से सुनके तो आ तेरे बाबूजी और उनमें क्या-क्या बातें हो रही हैं।' भाभी खुद भी सधे पंजों से अपने को भरसक आड़ में रखती हुई दरवाजे की आड़ में आतीं और कान लगाकर सुनतीं फिर तुरन्त आकर अम्मा को सार समाचार देतीं—कुछ सुन लेतीं, बाकी घटाना-बढ़ाना अनुमान से कर लेतीं। सभी इस अप्रत्याशित हृदय-परिवर्तन का कारण जानना चाहते थे। बैठक में काफी गम्भीरतापूर्वक बातें चल रही थीं।

रात का खाना इत्यादि खिला चुकने के बाद बाबूजी ने आकर अम्मा को सूचना दी कल मुन्नी जाएगी सुबह दस बजे की गाड़ी से। सारे घर में सन्नाटा छा गया।

आखिर मामला क्या है, जानने को हम सब पास घिर आए। अम्मा ने इतनी देर मामला जानने की प्रतीक्षा में जो कष्ट सहा था इससे वे झल्ला रही थीं। झुंझलाकर बोलीं बैठो तो सही कुछ बताओगे भी कि चले आए कल मुन्नी जाएगी! ऐसी क्या आफ़त आ गई अब निपूते पर? दो-साल कौनसा मक्खी छोड़ गई थी?' अम्मा का गला भिंचा हुआ था कि कहीं स्वर बैठक तक न पहुँच जाए।

बाबूजी अम्मा की खाट की पाटी पर पैरों की तरफ़ ही बैठ गए। ऊपर पर छोटा-सी लालटेन रखी थी। हम सब उसके आस-पास गोला बनाए जाड़े के कारण उकड़ू बैठे थे—घुटनों पर ठोड़ियाँ टिकाए सभी

को बाबूजी की बात जानने की उत्सुकता थी। मुन्नी एक ओर दीवार से लगी पहले से बैठी थी। जबरदस्ती बच्ची को सुलाकर लम्बा सा घूघट निकाले भाभी भी आ गई। प्रभा नहीं दिखायी दी। हम लोगों के बीच में वही एक हलकी रोशनी थी जो मेरे भाई साहब अमर और कुवर के घेरा बनाकर बैठ जाने के कारण बड़ी धुंधली और दब सी गई थी। बुंवर डरते हुए लालटेन के सिर पर हाथ रखकर गरमाहट लेने का प्रयत्न कर रहा था ताकि ऐसे गम्भीर अवसर पर कोई हाथ न भटका दे। लेकिन उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं था।

सजीदगी से बाबूजी ने बताया, भई वह मुन्नी को लेने आया है। बहुत माफी-वाफी मांग रहा है अफसोस जाहिर कर रहा है कि गलती हो गई अब कभी ऐसा नहीं होगा। अगर ऐसी बात सुनो तो कान पकड़ लेना। जो बिरादरी का दण्ड होगा भरेगा। जब रुक्मिणी मां ही आया तो मैं क्या करता!

'तो आखिर कुछ बात भी कि यों ही रुक्मिणी-मां हो आया? अब अचानक कौनसी अक्कल-दाढ फूट आई उस कम्बख्त के? उस चुड़ैल को क्या हुआ? अपने जमाई के लिए अम्मा जिस भाषा का प्रयोग कर रही थी वह नयी थी।

'उस कुटना के कारण ही तो अक्कल आई है। पांच छ महीने हो गए सब कपड़-जेवर समेटकर चम्पत हो गई। पुलिस वुलिस में रिपोर्ट भी की। मगर हाथ आती वह कहीं फिर? अब जाकर सारा दिमाग ठिकाने लग गया।

हम सब चौंके हूँह तो यह बात है! अब गरज पड़ी है तो लाट साहब आये हैं कुवर ने भल्लाकर कहा, 'बाबूजी तुम भी मत भेजना मुन्नी जीजी को!'

पर इसी गम्भीर वातावरण में उसकी बात किसी भी महत्व की नहीं मानी गई। भाई साहब ने बताया अब तो कहता है कि उसने मुझे बरबाद कर दिया। पहले अपना कर लिया था अपना भला-बुरा कुछ भी

सूझना बन्द हो गया था। पता नहीं उसके बहकावे में आकर कहाँ चरन चली गई अकल !

'गयी थी तेरी अम्मा के पीहर !' अम्मा ने क्रोध में मुँह झटका। फिर गहरी साँस लेकर बोलीं "अब ऐसे आदमी का ठीक क्या है ? कल किसी दूसरी के बहकावे में आ जाएगा। मैं तो अपनी लौंडिया को नहीं भेजती। पहले अधमरी कर दिया था। अबके तो मार के ही छोड़ेगा।"

'भाई वह क़सम खा रहा है, विश्वास दिलाता है।' बाबूजी ने समझाने के ढंग पर कहा, "बातों से भी लगता है कि अब समझ आ गई है। धीरज की माँ हो गई ग़लती एक बार। अब क्या कोई ज़िन्दगी भर यही करता रहेगा ! इस उम्र में आदमी का होश नहीं रहता। हमने उससे सारी बातें साफ़ साफ़ कर ली हैं।'

अम्मा नहीं मानी। उसी तरह लापरवाही से बोलीं तुम्हारी बातों की क्या है ? जिसने जमा समझा दिया बस ही मान गए।'

'बस, यही बात मुझे तुम्हारी बुरी लगती है। मुझे गुस्सा आ जाता है। तुम समझती तो खाक नहीं हो, और बस अपनी अपनी गाए जाती हो। कभी दूसरे की भी सुना करो।' परेशानी और हारे स्वर में बाबूजी ने कहा। इस वक्त उसकी गरज ही सहा आया तो खुद है। एक दफ़ा ठोकर खाकर उसकी आँखें खुल गई हैं। बातों में भी पता चलता है कि उसे काफ़ी पछतावा है और अब तंग-वंग नहीं करेगा। ऐसी हालत में तुम्हीं बताओ, भेज देने में हर्ज क्या है ? अच्छा और नहीं तो क्या उसे यों ही ज़िन्दगी भर बिठाकर रखोगी ? उसे पढ़ा लिखा दें या कोई हुनर सिखा दें इतना अपने पास है नहीं। लड़कों की ही देखभाल नहीं हो पाती। फिर सबकी अपनी अपनी ज़िम्मेदारी है। हम लोग भी आख़िर कब तक रखेंगे ? और अगर न हो तो लाओ मुन्नी की दूसरी जगह शादी किये देते हैं।'

अम्मा छूटते ही बोलीं "आग लग तुम्हारे मुँह में ! शरम भी नहीं आ रही बाल-बच्चों के बीच में बैठके ये सब कहते ? चले हैं दूसरी शादी

कर देते हैं। सो सारी बिरादरी और सारा शहर हमारे जनम में थूकत फिरें क्या ? पहले ही कौनसी नेकनामी फली है ! अच्छी तुम्हारी आय समाजिया के साथ रह रहकर अक्ल सठिया गई है।

'तो फिर तुम्ही बताओ, क्या करूं ? अक्ल की बात कहता हूँ सो तुम्हारी समझ म आती नही। कुछ कहो तो तुम हो जाती हो नाराज। तुम्ही बताओ क्या किया जाए। मेरी समझ म तो इससे अच्छा मौका मिलेगा नही। खुद घर आया है। तुम यह भी तो सोचो मुन्नी का यहाँ होगा क्या ? अपने वही रहेगी घर गिरस्ती सँभालेगी। बाद म जब साँप निकल जाए तो लकीर पीटते रहना। वो काला हिसाब है, आँगन आये नाग न पूजे बाँबी पूजन जाए।

अम्मा ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि अचानक मुन्नी के फूट फूटकर रोने से सब चौंक गए। अभी तक वह भी दीवार से पीठ टिकाए घुटने ऊपर किये उकड़ू बैठी थी। जाडे के कारण या मुँह छिपाए रखने के कारण उसने अपनी दोनो बाँहो से घुटने घेर रखे थ। अब उसका सिर रुलाई के झटको से हिलने लगा। मैं उसके सबसे पास था। मैंने माथे से हाथ लगाकर उसका सिर ऊपर उठाते हुए दुखी स्वर म पूछा 'क्या बात है मुन्नी ? क्या बात है ? बता न, क्यो रो रही है मा ?

उसने ताक़त लगाकर सिर छुडा लिया और यो ही और भी जोर जोर से रोने लगी।

कुछ बात भी तो बता मुँह से मुन्नी ! हम पता ए से चलेगा कि क्या रो रही है ?' भाई साहब ने हमदर्दी से पूछा।

बिना जवाब दिये वह रोती रही। कुछ देर बाद बडी मुश्किल से उसने रोने रोने ही सिसकियो म कहा बाबूजी, तुम मुझे अपने हाथ से जहर देकर मार डालो मेरा गला घोट दो मुझे वहाँ मत भेजो मुझे वहाँ मत भेजो बाबूजी ! मैं वहाँ मर जाऊँगी। मैं तुम्हारे हाथ जोडती हूँ पाँव पडती हूँ मुझे वहाँ मत जाने दो। और एकदम झपटकर

वह खाट से नीचे लटके बाबूजी के पैरों से लिपट गई बिलख बिलखकर रोने लगी।

हम सब लोगों की आँखों में आँसू भर आए। अम्मा अपने गिरते हुए आँसुओं को पल्ले में पोंछती और मुँह खोलकर सिसकती-सी साँसें लेती रही।

अरे अरे यह क्या करती है? बाबूजी ने झुककर काफ़ी बल लगाकर उसे ऊपर गोद में खींच लिया। वह उनकी गोद में औंधी लिपट गई और कटती हुई गाय की तरह रोती रही। अपनी रुलाई की चीत्कारों को वह बाबूजी की कमीज़ अधिक-से-अधिक मुँह में ठूँसकर दबाने की कोशिश करती रही, लेकिन लगता था जैसे रुलाई उसकी पसलियाँ तोड़कर बाहर फूट पड़ना चाहती हो। उसके कंधे काँपे और सारा शरीर रुदन के झटकों से बुरी तरह थर्राकर काँप रहे थे। उसके हिलते हुए काले-काले बालों वाले सिर पर झुककर ठोढ़ी रखे बाबूजी भी निःशब्द रोते रहे। मोटे-मोटे आँसू उनके गालों से ढुलककर मुन्नी के बालों में खो जाते। अपने हृदय की बेचैनी को वे जल्दी-जल्दी उसकी पीठ पर सान्त्वना का हाथ फेरकर दबाने की कोशिश करते। हम लोगों की आँखों में भी आँसू चुपचाप गालों पर फिसलते रहे। कभी कभी वह खारा-खारा तीखा तेज़ाब होठों के कोनों से मुँह में आ जाता। उठते हुए आवेगों को दबाने और नाक से बहते हुए पानी को रोकने के लिए बार-बार नाक से साँस खींचते। कुंवर से जब नहीं रहा गया तो वह उठकर अम्मा से चिपटकर रोने लगा, अम्मा, मुन्नी जीजी को नहीं जाने देंगे उन्हें मत भेजो।'

इस इतनी दुखी लड़की के प्रति हम लोगों ने कितनी उपेक्षाएँ और कभी-कभी दुर्व्यवहार किया है इसे सोच-सोचकर और भी कष्ट हो रहा था। मैंने निश्चय किया कि मुन्नी को मैं रखूँगा चाहे मुझे कुछ भी क्यों न करना पड़े। एक लड़की के लिए खाने-कपड़े का इन्तज़ाम हम लोग नहीं कर सकते? और आठ-दस मिनट बाद जब उद्वेग कुछ कम हुआ तो सहसा ही मुन्नी ने फिर कहा 'बाबूजी मैं किसी का चौका-बरतन

कर लूंगी पीस कूट लूंगी मुझे वहां मत भेजो उनके साथ।"

बाबूजी अब अपने पर नियन्त्रण पा चुके थे। समझाते हुए बोले, पगली हुई है बेटी! हम लोग क्या कोई गैर हैं? तू आधी रात को यहां आ जइयो, कोई ऐसी-वैसी बात दीखे तो। यह तेरा घर पहले है हमारा बाद को। पर तू इस बार तो मान जा, अब कोई बात नहीं होगी।"

'नहीं, बाबूजी नहीं।' जैसे किसी भयंकर दृश्य की कल्पना में देखकर वह फफक उठी, 'मुझे उस कुएँ में मत धकेलो, बाबूजी "

इस बार बाबूजी ने बड़े कराहते से स्वर में घायल होकर कहा "तेरी भलाई के लिए ही तो कर रहे हैं बिटिया! यहां अपना घर है, तू नहीं संभालेगी तो फिर बिगड़ेगा। तेरी भलाई इसी में है, बेटी! यहां बिरादरी में बदनामी फैलती है सब लोग उँगली उठाते हैं। किस किस का मुँह रोकेंगे?'

'जिस दिन मेरे बारे में ऐसी वैसी बात सुनो, मुझे अपने हाथ से जहर देकर मार देना, बाबूजी!' वह रोती रही। लगता था प्रयत्न करने पर भी उसकी रुलाई थम नहीं रही है।

बाबूजी फिर रोने लगे। इस बार लगा कि वे काफी देर तक अपने को संभाल नहीं पाएँगे और कुछ देर बाद ही फूट फूटकर रोने लगेंगे। भावातिरेक से उनका नीचे का होठ बुरी तरह काँप रहा था। फिर मुन्नी को एक ओर खाट पर हटाकर वे जल्दी से उठकर बाहर चले गए।

उसके बाद काफी देर हम लोग लगभग एक घण्टा, या ही बैठ रहे—चुपचाप और गुमसुम। फिर जब ठण्ड लगने और नींद आने लगी तो एक एक उठकर जाने लगा। बस मुन्नी ही अम्मा की चारपाई पर पड़ी सिसकती-सुबकती रही।

और सुबह मुन्नी को विदा कर दिया गया। वह चीख-चीखकर रोती रही, बिलख बिलखकर रोती रही, लिपट लिपटकर रोती रही। उस समय उसने कहा कुछ नहीं बस रोती ही रही, मानो हिस्टीरिया

का दौरा आ गया हो। प्रभा से लिपटकर तो इस तरह रोयी जसे दोना जन्म-जन्मान्तरों को विदा ले रही हैं। एक-दूसरे को छोडना ही नहीं चाहती थी। गाडी को दर हो रही थी इसलिए बडी मुश्किल से उन्हें छुडाया गया। बाबूजी उस समय किसी काम से चले गए थे।

मुन्नी मेरे ही बाद की थी इसलिए घर भर में मैं ही उसे सबसे अधिक प्यार करता था। मरे गले में बाँहें डालकर तो वह बुरी तरह डकरा डकराकर रोयी। कण्ठ फँस गया था और मुझे ऐसा लग रहा था जस मेरे शरीर का एक-एक रेशा अलग-अलग बिखर जाएगा, मेरी पसलियाँ एक विस्फोट से फट जाएँगी और कलेजा मुँह की राह बाहर निकल पडेगा। उसने जसे-तसे सिफ इतना ही कहा "भया, भाभी से बोलना, उन्होंने कुछ भी नही किया '

और इसके बाद वह चली गई। उसे होश नहीं था बस, रोए चली जा रही थी। जब तक गाडी दीखी मैं उसे देखता रहा। फिर अपनी कोठरी में आकर किवाड बन्द करके बठ गया। आँसू लगातार गालो से बहकर आते हुए गोद में गिरत रहे और मैं समाधिस्थ की तरह बठा रहा। मन म कुछ गूज रहा था, जिसे मैं समझ नहीं पाता था।

घर मे मुदनी छायी थी। कोई मुँह लटकाए इधर बठा था, कोई उधर सिसक रहा था मानो किसी को फूककर आये हों। घर की हर दीवार हाय-हाय करके खाने दौडती थी।

दस

खाना-वाना खाकर दिवाकर के यहाँ से निकला तो ग्यारह बज गए थे। घर पर कहकर भी नहीं आया था। जाकर वह डाँट पडेगी कि तबीयत ठिकान आ जाएगी—कम-से-कम कहीं जाओ, तो पूछ-

ताककर तो जाओ।' अब आधी रात में किवाड़ खुलवाना भी एक समस्या होगी। जो भी खोलने आएगा वह अपने कष्ट और मेरी जिम्मेदारियों पर भाषण देना अपना परम कर्तव्य समझेगा। एक एक कदम चलते दिल धसक रहा था। सड़क और गलियाँ सुनसान पड़े थे। मकानों के ऊँचे नीचे होने की वजह से सड़क पर चाँदनी कटी फटी फली थी। कोहरा मिलकर अजब धुंधला-सा छाया था।

जाने क्यों, मन में बड़ी बेचैनी छायी थी और भीतर कुछ कसक उठता था। हुआ था कि मुन्नी के कारण उस दिन तो सिनेमा जा नहीं पाए थे। दो-तीन दिन बाद वह प्रोग्राम बना। रात को दस बजे सिनेमा खत्म हुआ। बहुत अच्छा तो नहीं लगा लेकिन नायक-नायिका के प्यार के कुछ दृश्य सचमुच मन पर छाए रहे और कसक होती रही कि काश, ये मेरे भी जीवन में उतर पाते। बहुत दिन बाद सिनेमा देखा था। लौटे तो पैदल ही घर की ओर चले। मैं और दिवाकर पास पास थे, किरण कुछ दूर हटकर चल रही थी। और भी अनजाने स्त्री-पुरुष सिनेमा के किसी न किसी पक्ष के बारे में बातें करते चले जा रहे थे। किरण मुझसे या मेरे सामने प्रायः नहीं ही बोलती थी। सिनेमा आने के समय जो संकोच मन में आया था, वह अब फिर नये सिरे से जाग उठा। मेरे कपड़े उन लोगों से काफी नीचे स्तर के थे। मुड़ी-तुड़ी ऊँची-सी कमीज पेण्ट, भद्दे फटे पुराने-से सण्डल। विचित्र बात यह थी कि अपनी गाँठदार चोटी पर मुझे इतनी झेंप कभी नहीं आई जितनी उस समय। उसे तो मैंने बड़े ही बेमालूम ढंग से खोलकर शेष बालों में मिला लिया। हाथ फेर-फारकर देख लेता कहीं वह अलग उठ तो नहीं आई है। मन में एक बार आया कि मान लो इसे कटा ही डाला जाए तो? फिर साथ ही धिक्कार उठा—छि, मेरे मन में भी क्या क्या बातें उठती हैं आजकल!

तभी पास आकर दिवाकर बोला 'कहो जी महाराज कैसे कट रहे हैं आजकल दिन? क्या कर रहे हो आजकल?

मुझे भाई साहब की बात याद आ गई। सुबह ही तो बैठक में उन्होंने

कहा था, 'क्या, अब क्या इरादा है ? इम्तहान से तो छुट्टी मिल गई न।'

'मेरा इरादा क्या, जो भी आप कहें। मैं समझ गया कि उनका मतलब कोई नौकरी कर लेने से है।

"अब कहीं कुछ कोशिश-वोशिश करो। अपने उस दोस्त से कहो।"

'रिजल्ट तो निकल जाने दीजिए। अब कहीं एप्लाई भी करूँ तो क्या लिखूँ ?'

रिजल्ट के तो दो-ढाई महीने हैं। तब तक भी तो कुछ करना ही। या यों ही वक्त बरबाद होगा ? चिन्ता भरे स्वर में भाई साहब बोले 'घर की हालत तो तुम देख ही रहे हो। मेरे नब्बे सौ रुपयों में हींग भी नहीं लगती। कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। अमर-कुँवर को अगर हम दोनों अच्छी तरह पढ़ा लें तो उन्हें भी अच्छी सर्विस मिल जाएगी।

'हाँ, हाँ, कुछ तो देखना ही," मैंने टालने को कहा।

"अपने उस दोस्त से कहो न, कहीं-न कहीं तलाश कर ही देगा। उसके तो बीस जान-पहचान वाले होंगे। उन्होंने फिर दिवाकर की ओर इशारा किया।

'पूछूँगा। अचानक भीतर से आती हुई बाबूजी के चीखने की ऊँची-ऊँची आवाजों से मेरा ध्यान उधर खिंच गया। विषय बदलने को बोला, 'बाबूजी क्या नाराज हो रहे हैं भीतर ?' हालाँकि बात मेरे लिए कतई महत्व की नहीं थी। किसी-न किसी पर नाराज हो ही रहे होंगे। जो जिसका काम है वह कर रहा है इसमें इतनी फिक्र की क्या बात है ? पर अब इस बात को टालना जो था।

"आओ देखें, किसी पर नाराज होकर चिल्ला रहे हैं शायद। भाई साहब और हम भीतर आ गए। उन्होंने फिर याद दिलाया, 'पर उससे पूछना जरूर। जिक्र तो कर ही देना।"

अब दिवाकर के पूछने से मुझे भाई साहब की बात याद हो आई। मैंने कहा "कुछ नहीं। तुम बतलाओ क्या करें।

"अरे यार, करना कराना क्या, चोटी पटकारो और मस्त रहो। आराम बड़ी चीज़ है, मुंह ढक के सोइए !" लापरवाही से कहकर उसे सहसा कुछ याद आ गया। बोला, "लेकिन तुम्हारे दिमाग़ में आराम कहाँ ! तुम तो आराम के जानी दुश्मन हो न ! तुमने तो अभी से या तो बड़े ईयर की किताबें घोटनी शुरू कर दी होंगी या भारतीय दर्शन पढ़ रहे होगे।'

मैंने उदास होकर जवाब दिया, "नहीं दिवाकर, मैं शायद आगे नहीं पढ़ पाऊं।'

'नहीं पढ़ पाऊँ ? क्या मतलब ?' फिर हँस पड़ा, 'सुना किरणजी हमारे समर साहब सिनेमा का डायलाग बोल रहे हैं।

किरण मुस्करायी। अभी तक केवल तटस्थ की तरह चल रही थी।

'हाँ," मैं अनमना हो आया, 'खैर अभी तो बहुत दिन हैं। अच्छा, अपनी बताओ, तुम क्या कर रहे हो आजकल ?"

हम ? अरे हमें क्या करने को रखा है ? बस किरण जी हैं और हम हैं। बीच में नाराज़ हो गई थीं कि पढ़ाई ही हमारे लिए सब-कुछ है और ये तो जैसे कुछ हैं ही नहीं। सो अब हमने अपने को इन पर ही छोड़ दिया है।' और वह ज़ोर-ज़ोर से हँस पड़ा। किन्तु यह देखकर कि मज़ाक़ कुछ अधिक चुटीला हो गया है, और अपने बीच की बातें यों बता देने से किरण की भवें सिकुड़ उठी हैं वह एकदम बोला 'सो अब इन्हें माताजी से निपटना है। क्यों किरणजी, माताजी तो खूब ही नाराज़ मिलेंगी। तब तो गुस्से में कह दिया कि जाओ तुम सिनेमा अब जो आँखों में धुआँ लगा होगा तो वो-वो गालियाँ दी होंगी कि सुनकर तबीअत ठिकाने लग जाए।'

'हुंह' इस बार किरण ने उपेक्षा से कहा 'कहाँ तक दिन रात मरें ! छः महीने में एक बार सिनेमा आये हैं, अगर अब भी वो गालियाँ दें तो कोई क्या करे ?'

'उनके सामने कहना यह बात !" दिवाकर ने चिढ़ाया।

मुझे बात बहुत बुरी लगी। कैसा है यह दिवाकर, जो अपनी माँ के बारे में बहू से या सुन रहा है! और यह किरण माँ-जैसी सास की ऐसी अवना कर रही है मेरे सामने भी? प्रभा कहती तो सारी प्रण-प्रतिज्ञाएँ भूलकर उसकी इतनी-सी बात पर ही खींचकर तमाचा देता। और सोचने के साथ ही वह तमाचे वाला दृश्य फिर कौंध गया। किरण की असभ्यता कतई अच्छी नहीं लगी।

"सुना भई, समर' अचानक मुझसे दिवाकर बोला, 'ये कई बार मुझसे कह चुकी हैं कि तुम अपनी वाइफ को हमारे यहाँ क्यों नहीं लाते। अच्छा किरणजी, एक दिन इनकी दावत रखो, तब लाएँगे ये भाभीजी को।'

मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। किरण मेरी ओर उत्सुकता से देख रही थी कि मैं दिवाकर की बात का जवाब क्या देता हूँ। जल्दी से कुछ हकलाकर बोला, "वह वह तो अपने घर है। इस बार आएगी तो जरूर मिलाऊँगा।'

बात खत्म हो गई। लेकिन हृदय का जो भाग, मेरे अनजाने ही, बर्फ की ठण्डी सतहों के नीचे भी गरम बचा रह गया था, वहाँ से एक ठण्डी साँस उठी—काश मैं भी अपनी पत्नी को इसी तरह लेकर सिनेमा जाता! और मुझे याद आया सिनेमा में दोनों के पास-पास सिर सटाए आपस में पिक्चर के बारे में बातें कर रहे थे। साथ ही सिनेमा के कई दृश्य भी भीतर फुरहरी पैदा करके चले गए। फिर भी इस पत्नी' शब्द के अर्थ में किसी भी तरह से प्रभा आती है या इस प्रकार उठने वाली आकांक्षाओं में कहीं उसका भी निवास है, यह मैं मानने को तैयार नहीं था। प्रभा को तो निश्चय ही मैं इस क्षेत्र से बाहर का प्राणी समझ चुका था। माना, जो भी मेरी पत्नी होगी वह कहीं और किसी दूसरे के वश में है। वह प्रभा है ही नहीं।

दिवाकर की जिद के कारण खाना वहीं खाया। लौटा तो मेरे साथ फिर वही पुराना पाँच घण्टे पहले वाला समर भी आया था। जिस घुटन

और ऊब को छोड़कर भाग गया था वह ताजा हो आई। मानो अभी तक किसी स्वप्नलोक में भटकता रहा था और अब वास्तविक धरातल पर लौट आया हू। पता नहीं फिर उस काण्ड ने क्या रूप लिया!

हम और भाई साहब जब भीतर गये तो देखा कि सिर झुकाए ही सामने प्रभा अपराधिनी की मुद्रा में खड़ी है और बाबूजी दुर्वासा का रूप धारण किये हाथ ऊँचे उठा उठाकर गरज रहे हैं। अम्मा भी उसमें कभी-कभी अपना सहयोग दे देती हैं। हाथी की सूंड सा घूंघट निकाले भाभी किवाड़ के पीछे छिपी खड़ी हैं।

'और कोई जगह दाल बीनने की रह ही नहीं गई?' बाबूजी ने हम्हें देखा तो सारे किस्से को नये सिरे से दुहरा दिया, 'दाल छत पर ही बिनगी! ऐसे ही उस दिन छत पर ही बाल्टी ले जाकर सिर धोया जाएगा! उस दिन तो चुप हो गया मुन्नी ने सिफारिश कर दी। बस अब तो खाना-सोना सभी छत पर होने लगा क्या? हमेशा गूंगी की तरह मनहूस सी घूमती रहेगी आँखें चुराती रहेगी। कुछ दिमाग ही समझ में नहीं आते साहबजादी के! वहाँ छत पर तेरा क्या रखा है हम भी तो बता! मैं आज साफ-साफ कहे देता हूँ, मुझे ये बातें जरा भी पसन्द नहीं हैं। कान खोलकर सुन ले। जाड़े के दिन हैं बीस आदमी छत पर धूप खाने का बहाना करके ताक झांक करते हैं। बहू के कायदे से रहो'

'सबसे बचकर अकेली अगर छत पर नहीं बैठी रह, तो पड़ोसिया से लड़ना कैसे लड़ें?' अम्मा ने हम देखकर और भी जोर से कांटा मारा और भाग भागकर छत पर जाता क्यों है?'

प्रभा जब से सिर झुकाए बिना कुछ बोले सुन रही थी, इस बात से एकदम भन्नाकर उसका सिर उठ गया। उसने एक बार तीखी निगाहों से अम्मा की ओर देखा और धीरे-से फिर सिर झुका लिया। शायद आँखों से दो-चार आँसू गिरे।

'हाँ हाँ ठीक तो है। पाण्डेजी की लड़की की तरह भाग न जाए

किसी के साथ ! खूब नाराज हो चुकने के बाद सिर झुकाकर बाबूजी सोचते-से बठक म जात-जात बाले।

'कौन पाण्डेजी ? अम्मा न चौंककर पूछा 'यही अपने मुहल्ले के ? कौनसी लडकी भाग गइ उनकी ? बडी वाली ? कर भी ता कसी हथिनी-सी रखी थी ! उन्होंने फिर अपन दोना हाथ माथे पर मारे, 'हाय राम क्या जमाना आ गया है ? धरम करम तो उठ ही गया।" बाबूजी के जात ही उन्होंने भया स पूछा "क्यों रे धीरज, किसके साथ भाग गई ?'

अर और किसके साथ भागी होगी ? वही हागा मास्टर जो पढान आता था,' भाई साहब बोले। "अब बाहर जाकर पता लगाऊँगा।'

"हाय, कसा पाप आ गया है ! देखत-देखत सब कर लेवें हैं किसी को कानो-कान पता नही चलन दें। कहा जाएगी ये धरती प्रभो !' अम्मा न मुख पर अत्यन्त कातर भाव लाकर कहा।

भाई साहब भी मुडकर बाहर की ओर चलन लग। घूघट उठाते हुए भाभी बाहर निकल आइ और अम्मा के पास आकर बोली, 'ये पढी-लिखी लडकियाँ जो न कर लें सो ही थोडा है अम्माजी !"

अचानक अम्मा को मूल विषय याद आ गया। बोली, 'अरे, हमारी तरफ से दुनिया भाड म जाए लेकिन ये भाग भागकर ऊपर क्या जाती है ? इसका वहाँ कौन बठा है ? फिर मेरी ओर देखा।"खबरदार जो आज स उधर पर रखा, मुझसे बुरा कोई नही हागा।

भाभी न अपनी बच्ची अम्मा की गोद म प्यार से दते हुए कहा 'लो अम्माजी तुम क्यों अपना खून जलाओ ?'

मैं भी मुडकर चल दिया कि पीछे से अम्मा की वाणी सुनी "खून नहीं जलाऊँ तो क्या करूँ ? इन्ही लक्खनों के मारे खसम देखता तक नही और बहरानी को चढी है जवाना। लडका बिचारा सूख-सूखकर लकडी हुआ जा रहा है। कुछ उसका रोग ही समझ मे नही आता। अच्छी आफत गले पडी है। मरती भी तो नही है कि पाप कट। गरम दूध मरा न निगलने का न उगलने का। जिन्दगी खराब हुई जा रही है लल्ले की।

मरे तो मैं तो कल लड़के की दूसरी शादी कर दूं ' और अम्मा का स्वर गीला हो आया।

मैं बाहर चौक में आकर सीढ़ियां चढ़ता हुआ कोठरी की तरफ जाने लगा। यहां तो एक न एक झगड़े रोज़ लगे ही रहते हैं। कहां-कहां तक ध्यान दिया जाए! लेकिन तब भी चलते समय जो कुछ मुन्नी ने कहा था वह अब भी गूंजे जा रहा था। शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आता था, लेकिन बेचैनी भीतर महसूस होती थी।

और फिर मैं सिनेमा चला गया। डरते-डरते-से एक बार किवाड़ खटखटा चुकने के बाद भी यही बेचैनी फिर भीतर से उमड़ने लगी। इसी से छूटने के लिए तो मैं निकलकर दिवाकर के यहां चला गया था। अब तक भूले रहा। अब सारा दृश्य आंखों के आगे साकार हो गया।

खैरियत यही हुई कि किवाड़ खोलने वाला अमर था वरना मैं तो हर डांट के लिए तयार था। उसने कहा, 'क्या तुम चले कहां गए थे? सारे घर वाले नाराज़ थे। सभी को फिकर हो गई थी कि जाने कहां चले गए?" मैंने धीरे से पूछा, "अब तो सब सो गए?' उसने हां कहा और मैं चुपचाप सीढ़ियां चढ़कर अपनी कोठरी में जा पहुंचा। डर था कि मेरा खाना ढका रखा होगा। देखा, खाना नहीं था। सन्तोष की सांस ली। कपड़े उतारने लगा।

माघ का महीना समाप्ति पर था और ठण्ड बहुत कम हो गई थी। हम लोग किवाड़ खोलकर भीतर ही सोया करते थे। समय साढ़े ग्यारह या पौने बारह का रहा होगा। बाहर एकादशी की चांदनी भरपूर खिली थी कोहरे के मल से धुंधली और अधिक गाढ़ी हो गई लगती थी। मुझे प्यास लगी थी। चारों तरफ देखा पानी कहीं भी नहीं था। आज यह बात क्या है न खाना न पानी? अम्मा तो अपना काम कभी भूलती नहीं है। हो सकता है, याद न रहा हो। एक बार इच्छा हुई टालो लेकिन

फिर आवश्यकता न माँग की। ऊपर पानी छत के दूसरे सिरे पर दीवार में निकले हुए पत्थर पर जरा-सी आड़ में रखा रहता था। वहाँ तक जाने का आलस्य था।

उठकर बाहर आया। ओस काफ़ी पड़ रही थी। पानी की ओर जाते हुए अचानक मैं बुरी तरह चौंक गया, सामने दीवार से लगा कोई बैठा था—सफ़ेद-सफ़ेद। दिल धक् से रह गया। हे भगवान्, कौन है यह? भूत प्रेत से लेकर चोर-डाकुओं तक सबकी कल्पना दिमाग़ में घूम गई। हिम्मत करके ज़रा ग़ौर से देखा। दो क़दम और आगे बढ़ा। प्रभा थी। जहाँ उसे पहचान लेने का संतोष हुआ, वहीं अथाह आश्चर्य भी हुआ। यहाँ रात के बारह बजे इस भयंकर ओस और अकेले में बैठी यह क्या कर रही है। जब यह विश्वास हो गया कि प्रभा ही है तो मैं स्थिर पगों से बढ़ता हुआ पानी की ओर चला गया। रास्ते भर यह सवाल दिमाग़ में टकराता रहा कि आख़िर यह यहाँ इस समय क्या बैठी है? क्षण भर को सोचा शायद यहाँ बैठ-बैठे सो तो नहीं गई। लेकिन जब पास से गुज़रते हुए लौटा तो सिसकियों से लगा कि रो रही है।

पानी पीकर उस ध्यान से देखता हुआ चुपचाप लौट तो आया, लेकिन बिस्तर पर लेटे-लेटे करवटें बदलता रहा। रह रहकर कोई पूछता, आख़िर, रात के बारह बजे, या अकेले में बैठी यह रो क्यों रही है? रोने को कोई और जगह नहीं मिली? अरे, लेटे-लेटे ही रो लेती। बाहर और वो भी आधी रात में? मगर आश्चर्य यह है कि बड़ी-बड़ी बातें हुई हैं न तो किसी ने बताया कि वह रोयी थी और न मैंने ही रोते देखा। हमेशा चुप और मनहूस उम जरूर पड़ा है। मगर आज क्या हो गया?

लेकिन मुझे इस मसले में सिर खपाने की क्या ज़रूरत? जैसे ही यह विचार दिमाग़ में आया कि भीतर की गहराई से कोई धिक्कार उठा—छि., नीचता की भी कोई सीमा होती है! और फिर न जाने क्या-क्या उलटी-सीधी बातें दिमाग़ में आती रहीं। सिनेमा में बारूद से पहाड़

उडाने का हुक्म देता था। वह मन में अब अनजाने ही एकदम साफ हो कर उभर आया। ऐसा लगा जैसे भीतर कहीं बम गिर गया है और आस पास के सारे मकान ढह गए हैं। घायल भीत घबराए स्त्री-पुरुष चीख चीखकर भीषण कोलाहल मचाते इधर उधर भाग चले जा रहे हैं—और यह शोर इतना घना और ऊँचा है कि किसी की एक भी बात साफ सुनायी नहीं देती सुनायी दे रहा है केवल एक कोलाहल एक समवेत कोलाहल एक अंध कोलाहल, जो फटने वाले बम की तरह दिमाग में चक्कर खाए चला जा रहा है। बड़ी देर में इस कोलाहल में दो-एक आवाजें मुझे लगा जैसे मैं साफ सुन रहा हूँ। जैसे किसी शहतीर के नीचे दबी मुन्नी चिल्ला चिल्लाकर कह रही है—'भैया भाभी से बोलो। दूसरी आवाज अपनी थी जो किसी घुटी जगह से आ रही थी नहीं अभी तो यह अपने घर है। जब आएगी तो जरूर मिलाऊँगा। और इस कोलाहल के पार कहीं ऊँचाई पर लटके भारी गुरु-गम्भीर घण्टे की तरह यह आवाज मन में लगातार बिना रुके गूंज रही है कि बाहर आस में रात के बारह बजे एकान्त में बैठा कोई रो रहा है। हर बार लगता जैसे यह आवाज बम फटने पर धूल के फव्वारे की तरह उछलती है और प्रश्न वाचक चिह्न के रूप में बदल जाती है। लेकिन इस धमक से सारे मस्तिष्क के नाजुक तन्तुओं पर एक भारी घन-सा पड़ता है और रग रग झनझना उठती है। और इस सबको भूलकर एकाध बार मैंने सो जाने का प्रयत्न भी किया लेकिन लगा जैसे मेरी छाती पर भारी मकड़े की तरह कोई अपने पंजे गड़ाए जमा बैठा है और जब तक मैं उसे हटाकर दूर न फेंक दूँ, सो नहीं सकता हरगिज नहीं सो सकता। मैं न जाने कब तक इस द्वन्द्व और उद्वेलन की तूफानी लहरों पर झूलता रहा—कभी तन्द्रिल अवस्था में और कभी खूब सचेत जागते हुए।

और जब नहीं रह गया तो फिर धीरे से उठा। उठने के साथ ही मेरा आत्म-सम्मान भूत की तरह मेरे सामने रास्ता रोककर खड़ा हो गया। एक बार ठिठका लेकिन मंत्र-बद्ध की तरह मैंने उसे अपने रास्ते से

क्रूरतापूर्वक एक तरफ हटाया और बाहर निकल आया। बड़ी झिझक लग रही थी, सीधे उसके पास जाने में हिम्मत नहीं पड़ी। फिर सीधा पानी की तरफ चला गया। चाँदनी अब भी वैसी ही चटकीली थी। ओस अब भी वैसी ही पड़ रही थी। और प्रभा अभी भी वैसे ही बैठी रो रही थी। धड़कते हृदय को जैसे जोर से किसी ने भींच दिया। घण्टा भर तो हो ही गया होगा अभी भी बैठी बैठी रो ही रही है। बिना प्यास के भी थोड़ा-सा पानी पिया फिर धीरे धीरे लौटा। प्रभा के सामने आकर थोड़ी देर ठिठका। आशा कर रहा था कि वह चौंकेगी या मुझे देखकर सँभलेगी लेकिन जैसे वहाँ कोई खड़ा ही न हो इस तरह बेखबर बनी वह वैसे ही बैठी रही रोती रही—चुप न हिली न डुली। अब मेरा समझ में ही न आया कि क्या करूँ। खाँसकर अपने आने की सूचना दूँ? और जब कुछ नहीं सूझा तो मैं धीरे धीरे लौट आया। लेकिन कदमों ने उठने से मानो इन्कार कर दिया हो। मानो, घुटनों घुटना दलदल में पाँव फँस गए हों और बड़ी कठिनाई से एक-एक पाँव निकालकर मैं चल रहा हूँ। या जैसे कोई पीछे खींचे चला जा रहा है। आखिर मैं फिर मुड़ा और अब बिलकुल उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह वैसे ही बैठी रही मानो किसी ने पत्थर की बना दी हो। थोड़ी देर यों ही देखता रहा फिर बड़ी मुश्किल से फँसे गले से फटी आवाज निकली 'आधी रात को यहाँ बाहर बैठकर क्या कर रही हैं?"

उसने सिर उठाकर ऊपर इस बार मेरी ओर देखा मानो जिन्दगी में मुझे पहली बार देखा हो और फिर एकदम धोती के आँचल में मुँह छिपा लिया। चाँदनी में उसकी आँखों के आँसू बिजली की तरह चमककर छिप गए। रुलाई का वेग दुगुना हो गया। मैं कुछ देर और खड़ा रहा। अब मुझे अपनी उपस्थिति वहाँ बिलकुल व्यर्थ अनावश्यक और अपमानजनक लगने लगी। फिर कदम इस बार मंथे स्वर में कहा 'मुझे रो लीजिए न, आस में तबीयत खराब हो जाएगी। अब रात काफी हो गई है। बात तो मैं किसी न किसी प्रकार कह गया, लेकिन

उस क्षण मुझे लगा कि सोचने और कहने मे कितना अन्तर है ! इतनी-सी बात कहने म ही न जाने क्यो मेरा गला भर्रा आया। भीतर कुछ पिघलने लगा और छाती म गोला सा आकर अटक गया। मैंने घूट भरा।

आपको क्या है ? आप जाकर सोइए न, 'इस बार पल्ला हटा कर उसने सिर उठाया और जसे तडपकर कहा, 'एक साल से कभी आपको चिंता नही हुई कि मरती है या जीती ? अब ऐसी क्या खास जरूरत आ पडी ? आप जाकर सोइए न।' उसने सीधे मेरी आँखो म देखकर कहा आँखो म आँसू खौल रहे थे।

और वह निगाह जसे मेरे अणु अणु को भेदती चली गई। जसे मेरी शक्ति के सार सागर को उस तीखी अगस्ती निगाह ने एकबारगी ही पी लिया। ऊपर से नीचे तक मेर शरीर की शक्ति मानो किसी ने मंत्र के जोर स खीचकर बाहर निकाल ली। निशक्त और टूटा हुआ मैं बच्चों के बीमार की तरह धम स उसके सामन वही धरती पर बठ गया। अपन काँपते और बेजान हाथो को निहायत डरते डरते उसके कधे पर रखकर भर्राए और खण्डित स्वर म कहा, 'प्रभा, तुम मुझस बहुत नाराज हो ?" साथ ही मुझ आश्चय हो रहा था कि यह कौन मेर भीतर से बोल रहा है।

इससे पहले कि मैं आगे कुछ कहूँ उसन एकदम दोनो हाथ बढ़ाकर मेर कधे पकड लिए और सारी ताकत स, न जाने किस उन्मत्त आवेग म उन्हें झँझोडती हुई बोली मुझे बताओ मैंन तुम्हारा क्या बिगाडा है ? क्या कसूर किया है मैंन तुम्हारा ? मैं तुम्हार लायक नही हूँ, मैं तुम्हें पसन्द नही हू तो अपन हाथो से मरा गला घोट दो मैं चूँ नही करूँगी तुम शौक स दूसरी शादी कर लो, लेकिन मुझे लेकिन मुझे बताओ तो सही ' और दुनिवार रुलाई के भीषण उफान म उसके शरीर का रोआँ रोआँ मानो पिघलकर फूट पडना चाहने लगा। अपने को भूलकर वह मेरे कधे पर झुक गई, मुझमे लिपट गई। रुलाई जसे उसके

मुँह से निकल नहीं रही थी, और कोहा पड़ने पर पीड़ा की तड़पती मरोड़ की तरह उनका सारा शरीर सिसकियों के झटकों में पत्ते की तरह थर्रा उठता था। हिचकी उठती और वह ऊपर से नीचे तक ऐंठन से थर-थरा जाती। मुझे खुद भी होश नहीं था कि मैं कब उनसे भी प्रबल वेग से रोने लगा। इतने दिनों का दबा लावा अब फटे ज्वालामुखी की तरह फूट-फूटकर बाहर आ रहा था। उस निस्पंद और संवेदनाहीन पत्थर के नीचे से मानो कोई ग्लेशियर उछल पड़ा था और बरफ-जैसे जमे पड़े हृदय की एक-एक चट्टान गल-गलकर आँसुओं के फव्वारों के रूप में निकली पड़ रही थी। एक-दूसरे से बुरी तरह लिपटे हम दोनों रो रहे थे—बदहोश बेसुध।

जब भी इस बात का ध्यान आता कि एक निरीह बेबसूर किशोरी को लाड़-प्यार से पाली गई इकलौती लड़की को लाकर मैंने क्या-क्या अत्याचार नहीं किये, कौन-कौनसे कहर उस पर नहीं तोड़े, उसे कितनी कितनी यातनाएँ नहीं दीं और उसका यहाँ था ही कौन जिससे अपना दुखड़ा रोती, तो हजारों बरछे-जैसे एक साथ ही छाती में आ लगते और रुलाई दुगुनी-चौगुनी होकर उमड़ने लगती। उस बेचारी के पास धीरे धीरे घुलने के सिवा चारा ही क्या था! उस क्षण तो ऐसा लगा जैसे आँसू जितनी तड़प किसीमें भी ऐसा शक्ति नहीं है कि हृदय के इस पश्चात्ताप और मन की इस बेचैनी को इस छटपटाहट और मर्मान्तक पीड़ा को बाहर निकालकर ला सके। बस एक जोश उठ रहा था कि खूब गला फाड़-फाड़कर पागलों की तरह दोनों हाथ ऊपर उठाए सारे शहर की सड़कों पर भागता फिरूँ और तब तक भागता रहूँ जब तक कि बेहोश होकर गिर न जाऊँ। शायद तभी जी कुछ हलका होगा।

कभी एक पल को भी मैंने यह महसूस करने की कोशिश की कि उसके भी जान है? इसे भी कोई चीज दुख या सुख पहुँचाती है? इसकी भी कुछ अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ हैं?—कभी नहीं! कभी नहीं। कभी एक बार भी मेरे मन में नहीं आया कि वह आखिर यहाँ किसके आधार

और किसके खूते पर नौकरी की तरह रात दिन खटती है ? वह हमारी खरीदी हुई गुलाम तो नहीं है। उस दिन जिस हाथ से मैंने उसके गाल पर चाँटा मारा था उसी को आवेश में अपनी कँपकँपाती उँगलियों से सहलाते हुए मुझे लगा जैसे आज भी वहाँ पाँचों उँगलियाँ उभरी हैं—और आज भी वह जगह दहक रही है। सचमुच उस बेहोश पागलपन में भी मैंने चाँदनी की ओर उसकी कनपटी घुमाकर देखने की कोशिश की कि क्या सचमुच वहाँ उँगलियों के निशान अब भी बने हैं ? मन होता था कि अभी छुरे से खुरचकर आत्म हत्या कर डालूँ। अपने किये का प्रायश्चित्त क्या किसी भी रूप में नहीं हो सकता ? ऐसा क्या कुछ भी नहीं है जो पिछले किये हुए को पोंछ दे ? लेकिन अपनी दोनों बाँहों से उसने मेरी गरदन जकड़ रखी थी और मेरी दोनों भुजाएँ उसे बाँधे थीं।

न जाने कब तक हम दोनों इसी तरह रोते रहे। मुँह से बात निकालने की फुरसत ही नहीं मिलती थी। जरा सी देर रुक जाते और फिर नये आवेश से रोने लगते। मुझे ऐसा लगा जैसे काफी समय तक उसे अपना होश ही नहीं रहा। जब मैं उसके अचेतप्राय शरीर को अपनी बाँहों में भरकर कोठरी में लाया तो ऐसा लगा मानो किसी जलते मकान के बीच से, कड़ियों और दीवारों के ढेर के नीचे से निकालकर उसे ला रहा हूँ और जगह-जगह से मेरा शरीर झुलस गया है कपड़े जल गए हैं।

चाँदनी छिप गई थी और आसमान साँवला हो गया था।

सारी रात हम एक पल को नहीं सो सके, एक शब्द भी आपस में नहीं बोल पाए, एक क्षण भी एक-दूसरे को नहीं देख पाए मानो पूरे साल का गुबार आज ही निकल जाना चाहता था। जरा सा अलग होकर देखते और फिर दुगुने वेग से चिपक जाते।

काँव-काँव ! कहीं कौवे बोलने लगे

सुबह किसी के जागने से पहले ही वह उठकर बाहर चली गई। जाते हुए दूसरी ओर मुँह करके सिर्फ इतना कहा, हमें एक पोस्ट कार्ड दे दीजिए।

बहुत दिनों से माँ को लिखना चाह रही थी—पर लिख नहीं पाई।" और धोती के पल्ले से आखें पोंछती वह चली गई। उस समय फिर मेरी इच्छा हुई कि दीवार से अपना सिर दे मारूँ।

हाय, रोशनी में हम एक-दूसरे का मुँह कैसे देखेंगे?

बाहर किरणों की धारियाँ आड़ी तिरछी बुनाई की तरह छा गई थीं

उत्तरार्ध : सुवह

प्रदन-पीडित दस दिशाएँ

एक

जब सारा आसमान समेटी रहता हो बस, पूरब में इस छोर से उस छोर तक छाया बगनी प्रकाश धीरे धीरे सुनहली पड़ता जाता हो, और फिर बीच दिशा से कुहरे के भारी भारी परद इधर-उधर सरकाकर एक ज्योतिमय मुख बाहर झाँकने लगता हो हवा म हल्की-हल्की शीतलता बढ जाती हो—पास वाले पेड के पत्ते हिलन लगत हों और धीरे-धीरे नगर जागने लगता हो तो अपनी छत की मुँडेर के सहारे एक पाँव मुँडेर पर टिकाए उस क्षण को देखना और मन की अनक सतहों पर महसूस करना कसा आह्लादकारी अनुभव है, यह मैंन पहली बार जाना। पहली बार देखा कि सूरज किस तरह धीरे धीरे उठता है। कभी लगता, गोला तेजी से लट्टू की तरह चक्कर खाता हुआ उठ रहा है और कभी लगता बहुत ही धीरे-धीर लहरों पर झूमती गेंद की तरह। एक एक चीज को देखता और मन म कोई कहता, अरे, मैं तो जानता ही नहीं था कि सूरज निकलने मे पहले किरणें इस तरह उठती हैं जसे फव्वारे की धारियाँ उठ रही हो और सामने वाले ऊँचे तिमंजिले मकान के एरियल का बाँस सबसे पहले किरणो का स्पर्श पाता है।' हर क्षण लगता जसे मुझ नया ज्ञान हो रहा है और इच्छा होती कि कोई पास में खडा होता और ये इतनी सारी नयी बातें उस बताता चलता, उसे धीरे-धीरे सूर्योदय दिखाता।

लेकिन लगा जस जिन्दगी म खुद मैं ही पहली बार सूर्योदय देख रहा हूँ। उन दिनों तो जाने किन अँधेरी कोठरियों म कद था। दखता ही नहीं था कि मेरे आस-पास हो क्या रहा है। अब रोशनी मे आया हूँ तो

लगता है कि इतने दिनो अँधेरे म बन्द रहने की झेंप आँखें नही मिलाने दे रही। सचमुच रोशनी म प्रभा से कैसे बातें कर पाऊँगा, सीधा उसके चेहरे की ओर कैसे देख पाऊँगा ? उन आरोप करती उलाहने भरी आँखो का सामना कैसे कर पाऊगा ! सबसे बातें करते हुए मुझे कितना सकोच होगा ? शायद अब तो घर वाले, बाबूजी इत्यादि खुश हो जाएँगे। अब भाभी इशारे से डाक्टर का निशान को नही कहेगी हाँ, जिस बात के इशारे से मेरे तन बदन म आग लग जाती थी उसे याद करके अब खुद-बखुद मुस्करा उठा।

थोडी देर पहले प्रभा उठकर गयी थी, न मैंने उसकी ओर देखा था और न वह सीधे मेरी ओर देख पाई थी। और फिर मैं चुपचाप उठकर यहाँ चला आया। देर तक खडा खडा देखता रहा। समझ म नही आया कि अब क्या काम करूँ ? लोग मुझे देखें, इससे पहले ही मैं चुपके से निकल जाना चाहता था। तभी ध्यान आया कि प्रभा ने पोस्टकार्ड माँगा था।

सडको पर जमादार कूडा खुरचते हुए झाडू दे रहे थे। दूध की टकियाँ साइकिलो से बाँधे दूधवाले किसी खुले दरवाजे के सामने खडे थे, और बच्चे को गोद म लिये चादर लपेटे कोई बूढ साहब दूध का बरतन आगे बढाए दूध ले रहे थे। एक जगह तो मैं सचमुच रुककर देखने लगा कि दूधवाला जब लुटिया भरकर टकी से दूध निकालता है तो किस तरह उसकी लुटिया या उँगलियो से दूध बूद बूद टपकता है। वह दृश्य मुझे बडा रोचक लगा और जब इसका खयाल आया तो खुद ही मैंने पूछा— ऐसा तो कभी नही हुआ था। लगता था जैसे रास्ते म मिलने वाला हर आदमी जानता है कि मैं सुख के कितने शक्तिशाली फव्वारे को बलपूर्वक अपने भीतर ही दबाए चल रहा हूँ। हर क्षण डर लगता कि कही यह बाँध टूट न जाए और मैं पागलो की तरह सडको पर चिल्लाता हुआ भागना शुरू न कर दूँ—'देखो मैं सुखी हूँ। मैं बहुत सुखी हूँ। समझ म नहीं आता था कि अपने इस आनन्द को व्यक्त कैसे करूँ ! प्रभा की इस

समय क्या हालत होगी इस बात की कल्पना से ही मेरा सारा अंग रोमांचित हो जाता था। एक गरान थी जो सूखी बालू पर पड़ी बूंदों की तरह सोख-सोखकर अणु-अणु में समायी जा रही थी और सारी धरती नम हो आई थी। कितनी भीषण गरमी की झुलसान वाली लू धूप के बाद में इस स्वच्छ निर्झर की शीतल-शान्ति को युगा-प्यास की तरह पी रहा था।

खूब जोर-जोर से आवाजें देने के बाद दिवाकर साहब ने जँभाइयाँ लेते हुए दरवाजे से मुँह निकाला 'क्या है? रात को ग्यारह बजे गया और फिर सुबह सात बजे ही आ धमका?' फिर भीतर यह देखकर कि कोई आ तो नहीं रहा, दुष्टता से बोला, "तेरी बीवी तो मके में है अब बीवी वालों के आराम से क्या जलना है?

बीवी को लेकर किया गया यह मजाक सचमुच भीतर से मन को गुदगुदा गया। कहना चाहा, 'किस कमबख्त की बीवी मके में है?' लेकिन ऊपर से चेहरा गंभीर बनाए रखकर पूछा, 'तो तुम्हारा मतलब क्या है? चला जाऊँ? निकलकर तो देख कितना दिन चढ़ आया है!'

'जो जिसका काम है सो करेगा ही। हम तो अभी आपकी बाँगों से सोकर उठे हैं मुँह-हाथ धोयेंगे। अरे, इम्तहान में इतना पिले हैं अब जरा सा आराम भी न करें? लॉड आदमी हैं। तेरी तरह भगवान् से यह थोड़े ही कह आए थे कि दिन निकलने से चार घण्टे पहले उठूंगा, उठते ही ठण्डे पानी में डूबूंगा फिर सारे संसार को जगाने निकल पड़ूंगा। उसने बटक के किवाड़ों को पूरा खोलकर कहा ले आइए तशरीफ।

'अच्छा तो चलें। अभी तो आप सजने-संवरने में ही दो-ढाई घंटे लेंगे।' मैं बैठक में भीतर आकर आराम से बैठ गया।

आज तो चेहरा बड़ा चमक रहा है। क्या बात है? फ़र्स्ट डिवीजन में पास होने का सपना दीख गया क्या? सुबह-सुबह देखे सपने अक्सर सच होते हैं। उसने आलस्य से फिर जँभाई ली।

'यार, इस इम्तहान की ही याद मत दिलाया कर। मेरी जान

निकल जाती है। पता नही पास भी होगे या नही। फेल हो हो गए तो सचमुच, हम मरने की भी जगह नही है।" सच बात थी, जब-जब इम्तहान या परीक्षा फल का ध्यान आता तो दिमाग से हर बात उड जाती दिल धसक उठता। न जाने क्या होगा? लेकिन एक झटके से इन सारे विचारो को दूर करके मैंने कहा 'छोड भाई, इस बार म बात मत कर। जो होगा सो देखा जाएगा। अभी स प्राण सुखाने की क्या जरूरत!" फिर आश्चर्य हुआ, यह भविष्य के प्रति लापरवाही मेरे मन में पहले तो नही थी।

थोडी देर चुप रहकर वह बोला "अभी तक कल की बात पर माताजी का मुंह फूला हुआ है। बताओ, एक दिन अगर अपनी पत्नी के साथ सिनेमा चले गए तो क्या मुसीबत हो गई? इन लोगो की बात हमारी समझ म नही आती। विश्वास करो मैंने तो एक भी घर नहीं देखा जहाँ सास अपनी बहू से खुश हो। चार लडके हो तब भी वही बात और दो हो तब भी वही। मैं चाहता हूँ कि आज यह झगडा ठडा हो जाए।'

अच्छा अभी तक चल रहा है? लेकिन लगा जसे यह वाक्य मैंने उससे नही अपने आपसे कहा। दीवार से सटकर दबी सिमटी प्रभा और दूसरी ओर अम्मा और भाभी की तस्वीर आँखो के सामने आ गई। अचानक आँखें भीग आइ। मुझे अपने रग रग स रोती हुई मुन्नी की आवाज सुनायी देती रही भया, भाभी म बोलो।' पहले इस आवाज को मैंने सुना और दूसरे कान से निकाल दिया लेकिन इस क्षण अपने भीतर से उठती हुई इस आवाज की प्रतिध्वनि से मेरे अस्तित्व का अणु अणु गूंज उठा। मन हुआ मुन्नी से लिपट जाऊँ और उसके कान म अपनी आनन्द विह्वल वाणी मे कह उठूं देख मुन्नी मैं बोला मैं तेरी भाभी म बोला।' लेकिन मुन्नी अब है कहाँ? उसे तो गड्ढे म धकेलकर उसके मुह पर पत्थर लगा दिया है। मुझे लगा जसे मुन्नी मेरे भीतर अपनी मुक्ति के लिए तडफ रही है। उसने मुझे एक गड्ढे से निकाल लिया था और खुद उसमे जा गिरी थी। क्या

ज़रा पहले वह मुझे निकाल लेती तो मैं उसे उस नरक में कभी न जाने देता।

दिवाकर की किसी बात से मैं चौंककर सिटपिटा उठा। कहीं इसने समझ तो नहीं लिया कि मैं क्या सोच रहा हूँ? यह मेरी बहुत बुरी आदत है, या बातें करते-करते सोचने लगता हूँ। दिवाकर कह रहा था "समर, कल हमारे एक चचेरे भाई आने वाले हैं। मैं चाहता हूँ कि माताजी की नाराज़ी आज ही ठीक हो जाए तो अच्छा है। पिछली बार आये थे तब तो मैं तुझे मिला नहीं पाया। बाबा ने कितना घूमा है उन्होंने भी! कोई शहर नहीं छोड़ा। लेकिन भाई, अपनी यह चोटी-वोटी कटा आना। अगर कहीं वे इसका मज़ाक बनाने लगें और तू बुरा मान बैठे! ऐसे ही हैं वे ज़रा। उन्हें यह ढोंग-वोंग कम ही पसंद है।

'यह ढोंग क्या, अपना अपना विश्वास है।' मैं बहस बढ़ाना नहीं चाहता था।

'अच्छा विश्वास है कि आप अलग जा रहे हैं और हिन्दुत्व का झण्डा अलग फहराता जा रहा है। इसकी एक उपयोगिता ज़रूर है। किसी से लड़ाई हो जाए तो लपककर सबसे पहले चोटी पकड़ो दूसरा आदमी हिलेगा-डुलेगा लेकिन कर कुछ नहीं सकता। हाँ इम्तहान के दिनों में इसे खूँटी से बाँधकर पढ़ा भी जा सकता है। और वह खुद ही हँस पड़ा।

'तुम खाने-पीने और भोग विलास में मस्त रहने वाले जीव तुम्हें क्या मालूम विश्वास और आत्मा का आनन्द क्या होता है!

"कहने को जो मन हो सो कह लो लेकिन समर बाबू, दुनिया में इसके सिवा है ही क्या? कभी-कभी हम भी तुम्हारे मन्दिर में पहुँच जाते हैं। वहाँ चीज़ें बड़ी छोटी-छोटी आती हैं। चलो हमारे यहाँ कभी आया है उसके आस-पास गाँव-जवार चाहे जैसा बना लो।

मुझे याद आया मन्दिर गये तो जैसे मुझे युगों हो गए। फिर भी गम्भीरता से कहा 'देखो दिवाकर यह अपने विश्वासों की बात है। हर

देश के वस्त्रों रहन-सहन या विचारों की एक संस्कृति होती है। हम लोग अपनी संस्कृति का अध्ययन नहीं करते। और इस तरह के लोगों के कारण ही देश की यह हालत होती जा रही है हम लोग पतित होते चले जा रहे हैं। अपनी चीजों, अपने देवी-देवताओं का तो हम यों मजाक उड़ाएँगे और हर विदेशी चीज के पीछे भागेंगे।" जब मैंने अपनी बात शुरू की थी तो ध्यान था कि काफी लम्बा और प्रभावशाली भाषण देकर इसे समझाऊँगा लेकिन बीच में ही अचानक मुझे गणेशजी को मिट्टी का ढेला मानकर बरतन माँज लेने वाली घटना का स्मरण हो आया। प्रभा ने अच्छा किया इस बात को मैं अब भी नहीं मानता लेकिन यह बात मुझे तभी से अनजान रूप में रह-रहकर काट रही थी कि मेरा व्यवहार घोर अनुचित एक हद तक अमानुषिक, था। तभी एक क्षण को लगा कि अगर आज प्रभा मेरे सारे व्यवहार की सफाई माँग ले तो अपने किस काम की क्या कहकर सफाई दे पाऊँगा? शायद मेरे पास ईमानदारी से अपने अनेक कामों की कोई सफाई नहीं है।

तब मैं दिवाकर बोला 'देशी और विदेशी की बात मैं नहीं जानता, लेकिन देशीपने का नाम लेकर कार्टून जैसी सूरत बनाए रखना भी मुझे पसन्द नहीं है। मेरी बात का बुरा मत मानना, लेकिन अगर मैं पूछूँ कि ऊँचा-ऊँची बिना क्रीज इस्त्री की पतलून, और गन्दी सिकुड़ी कमीज या अंग्रेजी ढंग के कटे बालों से लटकता लटटू-जैसी गाँठ वाली चोटी ही अगर देशीपना है तो हम इस दूर से प्रणाम करते हैं। मुझे समझाओ अगर इसी वेश में आदमी जरा ढंग से रहने लगे तो विदेशी कैसे है? यह सब नहीं रखना तो सिर पर फिरवाइए मशीन और खादी का मोटा धोती-कुरता पहनिए ताकि हवा चलने पर टाँगों से अलग होती स्वतन्त्रता दिवस के झण्डे की तरह फहराए और आप उसे सँभालते उसके पीछे पीछे भागें।'

मेरा चेहरा लाल हो आया। मुझे लेकर वह कई बार ऐसा कह चुका है और हर बार मैंने इसे व्यक्तिगत पसन्द और विश्वास कहकर टाल

दिया है। कभी-कभी कई दिन अकेला भी रहा है। अब इस मूख को कसे समझाऊँ कि मेरे पास इन कपडो के सिवा दूसरे नही हैं। मुझ प्रभा की फटी और झिलियाँ-लगी धोती का ध्यान हो आया। लेकिन जस ही प्रभा का चेहरा सामन आया मैं दिवाकर की सारी बकवास भूल गया और बोला 'अच्छा-अच्छा बाबा, अब बस भी कर। कालेज की डिबट थोडे ही है। सुबह-सुबह मेरा मूड मत खराब कर।'

लेकिन आज अचानक अपनी प्रसन्नता के मूड का कुछ अता-पता तो दो।

बात मेरे हाठा तक आ गई। दवाकर बोला "यो हा कोई खास बात नहीं है। अच्छा तू भी अब नहा धो, और मुझ भी चलने द। मुझे कई बहुत जरूरी पत्र डालने हैं। ला दो चार पास्ट-काड दे द। सहसा मेरा सारा शरीर सिहर उठा। मुझे प्रभा का पोस्टकाड माँगन का ढग याद आ गया।

'कहाँ-कहाँ डालन हैं, कुछ बता तो सही ? हमारा भी रोल-नम्बर याद रखना। किसके पास पहुँच गई हैं कापियाँ ?' वह हँसा। फिर गभीर हो गया 'यार इधर-उधर कुछ पहुँच निकालो न सुना है दुनिया भर के लडके दिग्विजय करने निकल पडे हैं, जिनसे कभी जनम जिदगी म नहीं मिले उनके पास जा धमकत हैं और रोब से काम निकलवा लेते हैं। लगता है अगर इस बार कोई उठा धराई नही करेंगे तो जिन्दा नही बचेंगे। उसके माथ पर चिन्ता की सलवटें उभर आइ।

उसका चेहरा देखकर परीक्षा म पास होने-न होने की विभीषिका फिर छाती पर झूलन लगी, मैं फिर अपने म खोकर फल हो जान के बाद की प्रतिक्रियाओ को सोचता रहा। पूछा, क्या सोचा है आगे के लिए तुमने ? पढ इधर जारन करोग या किसी और लाइन में जाओग ?

'अरे यार पास तो हो जाएँ पहले फिर कुछ सोचें भी। अगर कहीं फेल हो गए तो एक साल की पिसाई और हो जाएगा। राज मदिर म दखन करक जाना और दुनिया भर क सगुन बनाना बेकार चला जाएगा।

तुम तो फस्ट डिवीजन ला रहे हो तुम्हें चिन्ता क्या है ? मुसीबत हमारी है।

दिवाकर का मेरे बारे में यह ख्याल है, जानकर अच्छा लगा। लेकिन भीतर के उल्लास को दबाकर कहा 'भाड़ में जाए फस्ट डिवीजन, बस पास ही हो जाएँ तो जाकर हनुमानजी को सवा रुपये का परसाद चढ़ा एँगे। मुझे अपने फस्ट डिवीजन में आने का पूरा विश्वास था। बात मन में आकर रह गई कि अगर घर की तरफ से जरा सा भी साथ होता तो मैं दिखा देता फस्ट डिवीजन क्या होता है।

अच्छा यह ज्यादा बनना-बनाना छोड़ो। आगे तुम्हारा क्या करने का इरादा है ? हमारे अब्बाजान तो पीछे पड़े हैं कि आगे पढ़ने लिखने में कुछ नहीं रखा। अभी उम्र है थानदारी में चले जाओ। रौब का रौब रहेगा और ऊपर की आमदनी अलग। मगर मेरा मन नहीं करता समर, थानदारी में कहाँ मारे मारे फिरेंगे ? कहीं किसी गाँव-नगरे में फेंक दिया तो आदमी की सूरत देखने को भी तरसेंगे। किरण तो रो रोकर मर जाएगी।' गहरी साँस लेकर दिवाकर बोला, 'फिर यह ऊपर की आमदनी बाबूजी अभी अपने जमाने की बातें ही सोचते हैं।"

दिवाकर की बात मुझे छू गई। फिर भी बोला, "तुम्हारी क्या आफत ? मुसीबत तो हमारी है। समझ में ही नहीं आता कि किया क्या जाए ? पढ़ाई तो हमारी बिलकुल रुक गई समझो। अब कहीं सौ पचास रुपये की नौकरी मिल जाए तो काम चले।'

बेवकूफ हुए हो ? सुनो इस सबको तो जाने दो कुएँ में। कहना मानो, हम दोनों बड़े हियर जायन करेंगे' दिवाकर ने सान्त्वना के स्वर में कहा।

नहीं दिवाकर अपनी सामाएँ देखकर ही सोचना चाहिए। हमारे घर की हालत ऐसी नहीं है। इस बार कुछ-न कुछ तो करना ही है। आगे की बात तो अब किसी भी तरह चलती दिखायी नहीं देती। मैं तो अभी से तलाश में हूँ कि कुछ मिले तो करने लगूँ। तुम कुछ कर सकते हो तो बताओ न ! मुझे भाई साहब की बात याद आ गई।

"मैं भी तो यही कह रहा हूँ जनाब इन बातों में कुछ नहीं रखा। अगर अच्छी डिग्री होगी तो नौकरी भी अच्छी मिलेगी। नहीं तो बस किसी लाला के चालीस रुपये के मुनीम हो जाना। इण्टर पास वाला को कोई नहीं पूछता।"

इस तर्क के सामने मैं बिलकुल निरुत्तर हो गया। सच ही तो कौन देगा मुझे नौकरी? यथार्थ के इस रूप को देखकर घबरा गया। टालता हुआ बोला, 'अरे, छोड़ो भी यार पहले रिजल्ट तो आ जाने दो। और मैं उठ खड़ा हुआ। रोज़ रोज़ अपनी नौकरी के लिए इस बेचारे से भी कहाँ तक कहूँ? अगर होती तो यह क्या कसर छोड़ देता? बैठक के बाहर आता हुआ बोला, 'अच्छा अब तुम नहाओ धोओ। तभी फिर याद आ गया "और हाँ, वे पोस्टकार्ड'

"हम तो होली-दीवाली नहाते हैं भाई,' कहता हुआ वह भीतर पोस्ट कार्ड लेने चला गया। चिन्ताएँ इस पर भी कम नहीं हैं लेकिन रहता कैसा मस्त है! सिर्फ एक पोस्टकार्ड माँगने में शरम लगती थी इसलिए मैंने चार-पाँच माँगे थे। पोस्टकार्ड लेकर कहा 'इन्हें लौटा दूँगा।'

'अरे हाँ वह रसीदी काग़ज़ तो मैं लाया ही नहीं जिसमें इन्हें लौटाने की लिखा-पढ़ी होगी! और वह हँस पड़ा, 'अच्छा अब तो बता दो आज इतना खुश क्यों है?

इस बार सचमुच मैं खुलकर मुस्करा पड़ा। बाहर निकलते हुए इतना ही कहा 'प्रभा आ गई है और चला आया।

"अच्छा बेटा! पीछे से दिवाकर की आवाज़ सुनायी दी।

लेकिन जिस झेंप के कारण मैं सुबह से आँखें चुराता और मुँह छिपाता घूम रहा था सन्ध्या तक दूर हो गई और मुँह पर एक अनजान हँसी आ गई—हाँ, मैं अपनी पत्नी से बोला हूँ, इसमें किसी का क्या? अपने पर भी झुँझलाहट आने लगी—इसमें झेंपने और लजाने की ऐसी बात क्या थी?

दिवाकर के यहाँ से आया तो मन म चाशनी घुल रही थी। बरसों बाद जी हल्का हुआ था। जस साला बाद जेल से छूटकर आया हूँ। रह रह कर एक अजीब दया के साथ मन पिघल उठता था। बेचारी न क्या-क्या नहा भुगता है इस बीच ! मुन्नी को छोडकर कोई भी तो नही था जो उसम सहानुभूति रखता हो। घर भर म किसी से एक पोस्टकार्ड माँगन की हिम्मत नही कर सकी हद है ! सबस अधिक आश्चय मुझ भाभी पर होता था। उनका जब अभी से यह रवया है तो सचमुच सास होने के बाद ता पता नही, क्या जुल्म ढाएँगी ? वह कतई नही सोचती कि वह भी तो प्रभा की तरह ही बहू हैं। उनके बहकावे म आकर मैंने जा कुछ किया उससे गरदन शरम से झुक जाती है।

इधर उधर भटककर जब घर पहुँचा तो दो बज गए थे। नल पर खडे सड़ बाबूजी धार के नीचे एक दूसर में रगड रगडकर पाँव धो रहे थे। देखते ही बोले, नवाब साहब कहाँ मटरगश्ती कर आए ? न खाने की चिन्ता न पीने की ?

मुझे बुरा लगा। प्रभा ने सुना होगा तो क्या समझेगी ? फिर भी जानता था कि बात किसी-न किसी तरह घूम फिरकर मरे कुछ न करने पर ही आएगी इसीलिए बाबूजी के मिलने स डर भी गया। दबे स्वर म कहा, दिवाकर के पास गया था। नौकरी वगैरा की बात करते हुए दर हो गई।

सहसा बाबूजी के स्वर मे नमी आ गई "हाँ, कुछ करो बेटा अब ऐसे कस काम चलेगा ?

भीतर आया तो अम्मा स सामना पडा, अब पढ़ाई नही तब भी सारा दिन घूमना ? दो बज गए यह कोई खाने का वक्त है ? रात को भी पता नही क बजे आया था ?

भीगी बिल्ली बना चौके म जा पहुँचा। चुपचाप पटरा खीचकर बठ गया। प्रभा ने जब खाना ला रखा तो एकदम चिहुक गया। अनजान की तरह सिर उठाकर देखा, उसके खुले चेहरे पर एक अजब सयत

गामीय था पलक झुकी थी, होठों म इन्की मुस्कराहट का आभास हिलोरें ले रहा था। चेहरा सूखा जरूर था, लेकिन आज एक अजब सतोष की आभा से दिप रहा था जसे बरसो बाद दपण स धूल पाछ दी गई हो। मन हुआ उस दपण का बस दखता रहूँ, देखता रहूँ। मन में उससे कुछ बोलने की उत्कट इच्छा हुई लेकिन समझ में नहा आया कि क्या बोलू। उस क्षण लगा, जाने कब से मैं प्रभा की आवाज सुनन का तरस उठा हूँ शायद कभी अच्छी तरह सुनी भी नही है। बिना देखे आवाज स ही पहचानना तो शायद मर लिए असभव हा जाएगा। लेकिन उसकी आवाज पहचानता भी कसे ? मुझ तो ध्यान भी नही है कि कभी वह बोलती भी है। चुपचाप सख्त चेहरा लिये बस काम किय जाती है।

खाना रखकर जब वह जान लगी तो देखा, कितनी गन्दी धोती पहन है। एक-एक फुट पर फटी और सिली है। यह पहनन लायक धोती है ? इसे क्यों लाद हुए है यह ? दूसरी धोती नही है ? शादी पर मिली हागी धोतियाँ-साडियाँ। सब कहाँ हैं ? अब जब लौटकर आयेगी तो इस बारे में बातें करूँगा। मैंने इन दिना बचारी को छोडा सा ता छोडा ही, सारे घरवालों न खास तौर स अम्मा न भी यह साचना छाड दिया कि इसे किसी चीज की जरूरत पडता है। वे तो माँ की जगह हैं। उन्हें तो इतना पक्षपात नहीं बरतना चाहिए था। भाभी के तो लडका बया हुई बस राज करने का आदत मिल गया है। अक्सर अपनी काठरी में ही रहती हैं वहीं खाना पहुँच जाता है। मुझ पता है अम्मा की आँखा म छिपाकर चार-छ धातियाँ जरूर उन्होंने अपने पास रख रखी होगी, लेकिन व देंगा क्या और यह बात याद करके मरा रोम रोम काँप उठा कि जनवरी-फरवरी की भीषण ठण्ड भी इसी प्रकार की धातिया म निकाली गई है। क्या बीती होगी इस बचारी पर भी उन दिना ! कोई साथ देने वाला नही कोई जरूरतें कहन वाला नही किसी स बातें भी नही कर सकती और वह भीषण जाडा जब हाथ बाहर करन की हिम्मत न पडे !

फिर आँखा म आँसू आ गए। प्रभा रसोई की उस छोटी-सी दीवार

की ओट मे बठी थी। आज इतने दिनो बाद विवाह की यह घटना याद हो आई। वह इसी तरह चौके म बठी थी, इतना ही हाथ बाहर निकला स्वामी देता था और मैं थाली म ठोकर मारकर धनधनाता चला गया था। उस दिन इसी हाथ म काच पतले फीत से बँधी छोटी सी रिस्टवॉच गोरी मासल कलाई पर कसी सिल रही थी! आज देखा तो स्तब्ध रह गया। उस दिन ध्यान नही दिया था, लेकिन उस दिन का हाथ ज्यो का त्यो याद हो आया। चौका-बरतन और घर के काम धन्धे म लगे रहने के कारण खाल काली पड गई थी और सूखकर भुरभुरी हो आई थी। ऐसा लगता था जसे हड्डी पर पतली सी खाल कसकर मढ दी गई हो। निगाह खुद पाँवो पर चली गई। मल और दखभाल के अभाव मे दोनों पजे काले पड गए थ और एडिया से लम्बी लम्बी बिवाइयाँ झाँक रही थी। न जाने कितन आमोद प्रमाद, आशा आकाक्षाओ मे पली यह लडकी कसे गाजे-बाजे के साथ हमारे यहाँ लायी गई थी, और आज ?

थाली को बहुत ही धीरे-से ताकि प्रभा को बुरा न लगे, सरकाकर मैं उठ खडा हुआ। प्रभा चौंकी। ऊपर मुँह उठाकर उत्सुकता से मेरी ओर देखा। देखने का वही रात वाला ढग कौंध गया। आह, उसकी आँखें कितनी निश्छल, भोली और बडी बडी थी! लेकिन चारो ओर काले घेरे बन हुए थ। मुझ उन घेरो के साथ प्रभा का चेहरा ऐसा भयानक लगा कि मैंने झट निगाह दूसरी ओर घुमा ली। बडा झिझकता-सा स्वर सुनायी दिया "क्या ?

अकारण ही छाती म गोला-सा उमड आया और लगा, जरा सा बोलते ही मैं रो पडूगा। जसे-तसे निचला होठ चबाकर बडी मुश्किल से बताया 'स्वाकर के यहाँ खा आया हूँ, भूख नही है। और झट बाहर निकल आया।

बाहर अम्मा चुपचाप बठी, टिकटी पर कोई धार्मिक पुस्तक रखे अपन मोटे माटे धोंगे वाले चश्मों से पढ़ रही थी। अपनी कोठरी के लिए मैं जीने पर चढ़ने लगा। जीन म ऊपर छोटा सा जगला सामन ही खुलता

था। वह भाभी के कमरे का था। सहसा भाभी का स्वर सुनकर ठिठक गया। वे कह रही थीं, 'दोनों अब तो आपस में बोलने लगे।"

"कौन ?" भाई साहब का आवाज थी। ध्यान आया आज तो रविवार है।

'समर लालाजा, छोटी बहू से। मुझे लगा आवाज में कहीं हल्का व्यंग्य है।

"अच्छा!" भाई साहब भी चौंके। लगा करवट बदलकर सीधे हो गए 'तुम्हें कैसे मालूम ?'

"खाना खाने के बाद इलायची लेने कुँवर सासाजी आये थे। वही बता रहे थे।'

और बिना पूरी बात सुने मैं ऊपर भाग आया। कोठरी बन्द करके अपने बिस्तर पर औंधा लेटकर बुरी तरह रोने लगा।

सांझ को फिर अपराधी की तरह निकल गया और सारे समय निरुद्देश्य भटकता रहा। सुबह से छाया हुआ आनन्द का नशा उतर चुका था। अब तो एक मलिनता और एक धिक्कार मन को लगातार कचोट रहा था। बार-बार अन्तर्यामी के सामने गिड़गिड़ाता, मुझे दण्ड दो भगवान् मुझे दण्ड दो। मैंने एक निरीह अबला पर घोर अत्याचार किये हैं। उसे नारकीय यातनाएँ दी जाती रहीं और मैं चुपचाप देखता रहा। कहाँ चली गई थीं मेरी आँखें ? ठीक है, मैं तो लड़का था, लेकिन इन अम्मा-बाबूजी को आखिर हो क्या गया था ?

और प्रायश्चित्त की यह भावना मुझे खींचकर मन्दिर में ले गई। मैं वहाँ सूनी-सूनी आँखों बड़ी देर तक एकटक देखता रहा। हर चीज का विश्लेषण मैं इस तरह करता जैसे एक युग के बाद विदेश से लौटा हूँ और देखता हूँ कि घर पीछे कितना कुछ घट गया है। इस प्रायश्चित्त और दया की भावना तथा हर चीज को नये सिरे से देखने की प्रक्रिया के साथ-ही-साथ मन की अनेक सतहों पर रात की व्याकुल प्रतीक्षा भी चल रही थी। और आखिर जब मन कहीं नहीं लगा, तो लौट आया।

देखा, इस बीच में सबकी निगाहें मेरे प्रति बदल चुकी थीं। प्रभा रसोई में थी, अम्मा के पास बैठी भाभी कुछ घुसुर पुसुर कर रही थीं। घर में प्रवेश करते ही जाने कैसे मुझे पता लग गया कि मेरे और प्रभा के आपस में बोलने की बात अब सारे घर में जानी जा चुकी है। सब मुझे इस तरह देख रहे थे मानो अजायबघर से छूटा हुआ जानवर हूँ। मैं तब से सोच रहा था कि जब सब लोग इस बात को जान जाएँगे तो मुझे कैसी लज्जा लगेगी, सबकी निगाहों का सामना मैं कैसे कर पाऊँगा? लेकिन इन चुभती निगाहों को देखकर भीतर अजब-सी झुंझलाहट भर गई। अगर मैं प्रभा से बोलने भी लगा तो इसमें ऐसी कौनसी अनोखी बात हो गई कि सभी उसे चर्चा का विषय बना लिया जाए? यह ढोल पीटकर हल्ला मचाने की बात है? अरे पति पत्नी कब नहीं बोलते थे, आज बोलने लगे, इसमें कोई इतनी दिलचस्पी क्या ले?

चारों तरफ के वातावरण के प्रति उपेक्षा का भाव धारण किये हुए मैं इस तरह व्यवहार करने की कोशिश कर रहा था जैसे मेरे जीवन में कुछ भी नया या महत्वपूर्ण नहीं हुआ। जैसे ही खाना खाकर उठा कि अम्मा बोली 'अरे समर, जरा अपने बाबूजी को तो बुला दे। वो भी गरम-गरम खा लेंगे। फिर खाना ठण्डा हो जाएगा।'

'कहाँ गये हैं?' मैंने पूछा।

'बच्ची को घुमाने ले गए हैं। बाहर नवलकिशोर पण्डितजी की बैठक में बैठे होंगे। बच्ची भी तो भूखी होगी।'

मुझे इस बात पर भी गुस्सा आया। अम्मा इस तरह बोल रही थीं जैसे मैं मना कर दूंगा। फिर अपने गुस्सा होने के स्वभाव पर हँसी आई। मुझे यह हो क्या गया है? बाबूजी कुरसी पर दोनों पाँव ऊपर समेटे बड़े आराम से बैठे थे और हमेशा बीमार पड़े रहने वाले नवलकिशोर उनकी ओर करवट लिये सुन रहे थे। उसी मोहल्ले के दो-तीन और भी लोग बैठे-बैठे ध्यान से सुन रहे थे।

ता अपनी भारतीय सभ्यता को यह सभ्यता पा थाडे ही सकती है ! या हाथ पाव चाह जितन मार ने । आजकन तो पता नहीं चलता कि यह दुनिया किस रसातल म जाकर टिकेगी ! और भाई साहब दोष किसे दें ? सब अपन किये का फल है। जो माग हजारो साल सोच समझकर अपने ऋषि मुनिया न बनाया उसे तो आज के लडक [illegible]न हैं, ये जग लियो के बनाये गए नियम हैं । बोला, अपने पुरखा का जगली कहत हुए तुम्हें शरम भी नही आती ! और साहब, मानना पडेगा उनके दिमाग को ! एक एक नियम क्या सोचकर बनाया है कि दाँता-तले उँगली दबानी पडती है । जातियाँ बनायी, सबके कम निर्धारित किये सब अपने कायदो मे चलें तो ये सब चीख-पुकार " नवलकिशोरजी को लगा कि इस विषय पर बोलना तो उनका अधिकार है । अधीर होकर बोल पडे । 'भगवान् मनु ने मनुस्मृति मे कहा है कि " मैं सोच रहा था कि बाबूजी अपनी बात तोडें तो मैं अपनी बात कहूँ । अब झिझकते-से, कही डाँट न दें, एकदम बोला, "बाबूजी, आपको बुलाया है।

'अच्छा चल रहे हैं । भीतर जाकर बच्ची को ले आ" वे बिना ध्यान दिये बोले ।

मैं पण्डितजी के यहाँ शुरू से ही आता-जाता रहा हूँ । पडितजी की पुत्र-वधू बठी-बठी बच्ची को खिला रही थी। मैंने कहा, 'भाभी, इसे बाहर बाबूजी माँग रहे हैं । इन्हीं के पतिदेव उस दिन मार-मारकर शरणार्थी को निकाल रहे थे । मेरी आवाज सुनकर पडिताइन बाहर निकल आई। देखते ही पूछने लगी, "कौन ? समर ? अरे बचा, तून तो आना-जाना ही छोड दिया । इम्तहान हो गए ? बडा अच्छा हुआ बटा ! अरे हाँ हमने सुना, तू अपनी बहू स बोलता नहीं था, अब बोलन लगा है । अच्छा है बटा, अपनी बहू स तू नहीं बोलेगा तो और कौन बोलेगा ? ऐसी बातें तो होती ही रही हैं । इनके मार क्या बोल-चाल छोडी जाय है ? बात तो है बटा, पर ऐसी अनीति तो उठइयो मत, जसी हमारे विसनू न उठा रखी है । मदिर का सारा चढ़ावा-पुजापा अपनी बहू की छाती पर

ला घर है। तेरी कसम बेटा, जो एक पैसा भी देता हो। अच्छी अच्छी मिठाई अपने मिल की खा डाली, जूठन-जूठन उठाके हमारे आगे डाल दीनी। भैया, बुढापे म हमारी मिट्टी तो इन नासपीटो ने ऐसी खुवा कर दीनी है कि न दिन दखें न रात। रात दिन हा हा, हू हू करते रहें। कोई देखता रहो, कोई सुनता रहो, इन्हें रत्ती भर चिन्ता नहीं है। मंदिर में क्या आवें क्या जावें, हमें तो भगवान, अब तो तू हमें उठा ले। पर समर भया, ये भी तू सुन लीजा, जो दोनो बखत ये कलाकन्द चली आ रही है सो सब पंडितजी की माया है। बाद म एक पसा नही चलगा। तब दाल आटे का भाव पता चलेगा। अभी तो सब हरी हरी सूझ रही है।' और पंडितजी के मर जाने की कल्पना से या किन्ही व्यक्तिगत कारणो स उनका गला भर्रा आया। वे आँखो पर पल्ला रखकर सिसकने लगीं।

विमल की बहू ने सास की तरफ टेंगा दिखाया और मुस्कराते हुए बच्ची मुझे दे दी। जाने क्या बच्ची को लाते समय अपनी भाभी की डाक्टर को दिखाने वाली बात याद हो आई। मैं खुद ही फिर मुस्करा उठा।

दो

मैंने आश्चर्य से भौंहें फैलाकर पूछा, 'तुमने खुद देखा?'

प्रभा दूसरी ओर देखती रही। बोली, "खुद तो नहीं देखा, लेकिन मुन्नी बीबी बता रही थी। उन्होंने देखा भी था। वो कहती थीं कि आपको बताएगी। जैसे ही मैं साग चढ़ाकर जरा जल्दी हटी कि भाभी ने डरकर नमक डाल दिया।'

"हूँ" दोनों कुहनियों के सहारे उठा हुआ मैं हथेलियों पर अपना गम्भीर मुख रखे गहराई से सोचता रहा। उसी तरह पूछा, 'तुम पहले दिन हमसे क्यों नहीं बोली थी? आने के दिन ही इतना बड़ा अपमान क्यों किया?"

प्रभा एक घुटना उठाकर बैठी थी। दोनों बाँहें उस घुटने के चारों तरफ मेखलाकार डाल ली थीं और दोनों हथेलियाँ घुटने पर फैलाकर उस पर ठोड़ी रख ली थी। इसी तरह बिलकुल शान्त अविचलित भाव से मेरी प्रत्येक बात का जवाब दे रही थी। कोठरी के बाहर कल वाली चाँदनी की रिम झिम वर्षा हो रही थी और दूधिया कुहासे का एक आयताकार टुकड़ा तिरछा होकर हमारी चारपाई के पास तक आ गया था। बड़ी मुश्किल से मैंने उसे पिछली बात बताने को तैयार किया था। उतार-चढ़ावहीन स्वर में कहा, "अपमान तो नहीं किया। आपको ऐसा लगा कि मैंने अपमान किया?" फिर गहरी साँस लेकर बोली "छोड़ो भी, उन बातों को दुहराने से अब फायदा भी क्या! किस्मत में लिखा था, हो गया।'

'किस्मत विस्मत कुछ नहीं प्रभा! मुझे जानने की बड़ी उत्सुकता है। अब बताओ न, हम तो इतनी खुशामद कर रहे हैं।' मैंने अनुरोध के स्वर में कहा और धीरे-से उसका एक हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसका कोमल हाथ ऐसा बेजान और ठण्डा था कि मुझे खुदा माफ हो आया।

हाथ उसने यों ही रहने दिया। मेरी इस बात पर विद्वाना और अनुभविया की तरह धीरे-से हँसी, 'इतना जलाकर अगर जरा-सी खुशामद कर भी ली तो क्या हो गया?' फिर बिना मुझे जवाब देने की फुरसत दिये बोली "इसमें न जाने की क्या बात थी, बहुत बदन टूट रहा था। तबीयत बड़ी उदास थी। जरा-जरा-सी देर बाद घर की याद आती थी। फिर मुन्नी बीबी ने अपना किस्सा सुनाया तो मन और भी बेचैन हो गया। वही तो यहाँ बातें करने वाली थीं। फिर सयाग में उसी दिन

खिड़की के सामने वाले घर में वह कमबख्त मौलश्री की बूढ़ जल मरी। और भी दो एक बात ऐसी हो गई कि रोने के सिवा कुछ सूझ ही नहीं रहा था। बोलने को तो कतई मन ही नहीं था। फिर सुना कि आपकी इच्छा नहीं थी शादी करने की। सारे हौसले तो यों ही मर गए थे। क्या बातें करतीं आपसे ?

"देखो प्रभा, जब बताने बैठी हो तो छिपाओ मत। मैं सचमुच जानना चाहता हूँ। तुमने विश्वास दिलाया है कि साफ साफ बताओगी, फिर अभी से यह चालाकी क्या करने लगीं ? मेरा मुलायम और अनुरोध भरा स्वर अनजाने ही काँपकर थरथराने लगा था। आगे बढ़कर मैंने उसकी जाँघ पर सिर रख लिया और चित लेट गया। जाने क्या मुझे लगता था कि वह झटककर मेरा सिर हटा देगी कि अब प्रेम जताने आये हैं ! एक भावुक उष्णता से मेरे मस्तिष्क की एक-एक शिरा लरज उठी।

'उन्हें अब रहने दो न !' कोठरी के अंधकार में उसके चेहरे की सिर्फ छाया-सी ही दीख रही थी, लेकिन जैसे ही मेरे माथे पर दो जलती बूँदें टपकीं तो मैं चिहुँक पड़ा। उँगलियों से उसकी ठोड़ी अपनी ओर घुमाता हुआ स्नेह से डाँटकर बोला, यह क्या बेवकूफी है ? अब चौबीसों घण्टे रोओगी ?" और मैंने हल्के से उसके गाल पर एक चपत लगा दी। उसके होठों पर झलकती लाज भिली मुस्कान मेरी कल्पना की आँखों के आगे साकार हो आई पर साथ ही मैंने झट अपना हाथ हटा लिया। ध्यान आ गया इसी गाल पर इन्हीं हाथों का तमाचा पड़ा था और वह तिलमिला उठी थी। वह भी उस मिट्टी के ढेले के लिए, जिसे पंडित ने गणेश बना दिया था। रोशनी होती तो देखता उँगलियों के निशान अब भी हैं या नहीं। लगा, प्रभा को भी उस दिन की बात याद आ गई। झपपका कर मैंने एकदम विषय बदल दिया, 'अच्छा प्रभा एक बात बताओ। ये भाभी और अम्मा तुमसे इतनी नाराज क्यों हैं ?

प्रभा ने कुछ जवाब नहीं दिया। फिर घूँट भरकर बोली, "मुझे क्या

पता ? हमारी किस्मत मे यही लिखा होगा और क्या कहूँ ?

'देखो प्रभा, तुम्हें मेरी कसम है। इस वक्त मैं जो कुछ जानना चाहता हूँ मुझे सच-सच बता दो। तब से किस्मत किस्मत लगा रखी है, किस्मत विस्मत का तो इस समय झाको भाड मे !' जिन्दगी मे पहली बार मैंने भाग्य के विरोध मे कहा।

'यह क्या बुरी आदत है ? बोलने की देर नही हुई और मेरी और तुम्हारी कसम चलने लगी" उसने प्यार भरी झुंझलाहट से कहा। उसके दोनो हाथ पहले तो मेरे गरम माथे पर निश्चेष्ट रखे रहे फिर धीरे-धीरे मेरे उलझे बालो मे घूमने लगे। जाने कितनी बोतलो का नशा मेरी नस-नस में उतरता चला गया। यों ही उँगलियाँ चलाती वह बोली, 'अम्मा-बाबूजी को नाराज करने का तो कारण साफ ही था। लेना-देना उनके मन के लायक नहीं हुआ। रुपया-पैसा अच्छा जेवर-कपडा, कुछ भी तो नहीं ला सकी। इसमें पढी लिखी होना भी एक दुर्गुण बन गया। यो मुन्नी बीबी ने तो इसका खूब प्रचार किया ही बडी जेठानी ने अम्मा से भी सन्तोष प्रकट किया कि लाई चाहे कम होऊँ, लेकिन बडी बहू से लाख दरजे अच्छी हूँ देखने-सुनने में। बस तुम्हारी अम्मा को नाराज करने के लिए ये दो-तीन बातें काफी थीं। दिन रात वे अम्मा के कान भरती रहती थीं। मैं सुनती और चुप रहती। कहती किससे जाकर ? तुम भी नाराज थे। बहुत बार तो मन मे आता कि मैं भी सांवल की बहू की तरह" आगे गला भर आया और फिर दो-तीन बूँदें टपकी।

मैंने हाथ बढाकर उसके मुँह पर रख दिया। प्यार से डाँटकर बोला 'खबरदार प्रभा, जो इस तरह की एक भी बात कही !' फिर उसकी गरदन मे बाँहें डालकर सिर नीचे झुकाया और धीरे-से उसके शीतल पपडाये होंठों को चूम लिया। मुझे लगा मानो जलती प्यास का घूट मेरी नस-नस को झनझनाता चला गया हो। काँपती भराई आवाज में कहा 'प्रभा, बस इस बार हम गलती को माफ कर दो। मालूम नहीं मेरे ऊपर कौनसा भूत सवार हो गया था ! यह मेरी जिन्दगी की सबसे आखिरी

गलती है। आओ, आज से हम निश्चय कर लें कि कभी नहीं लड़ेंगे—कभी भी। चाहे कोई कुछ कहता रहे "

प्रभा ने अपने गाल से मेरे होंठों को दबा दिया और बात टूट गई। आंसू फिर बहने लगे। मैंने झिड़ककर कहा, "फिर यही! तुम बड़ी कमजोर हो प्रभा!" लेकिन तभी किसी ने जबान पकड़ ली। जो ऐसे-ऐसे आंधी-तूफानों के बवण्डरों में नहीं डगमगाई वह कमजोर है? तभी याद आया, कल प्रभा छत पर बैठी-बैठी रो रही थी। मैंने रोते हुए पहली ही बार देखा था। सवाल तभी से उठ रहा था। पूछा "अच्छा प्रभा, एक बात और बताओ "

हूँ," उसने यों ही कहा।

'तुम कल रो क्यों रही थी? इतने दिन हो गए मैंने तुम्हें रोते शायद कभी नहीं देखा। जब मैंने चांटा मारा था, तब भी शायद तुम नहीं रोयी थी।

इस बार प्रभा का स्वर कड़ा हो आया, 'मैं क्या, उस दिन तो कोई भी खूब रोता। इतनी बड़ी हो गई, अभी तक चरित्र पर किसी ने एक शब्द नहीं कहा। उस दिन जो सुना ' फिर सहसा वह चुप हो गई। कुछ देर बाद भावाविष्ट स्वर में बोली, 'जिस दिन तुम भी मेरे चरित्र पर सन्देह करोगे उस दिन जहर खा लूंगी '

मैं चुप हो गया। लगा उसकी दृढ़ता के आगे मैं बौना हूँ। चिन्तित स्वर में कहने लगा हमारे घर का वातावरण रोज रोज गन्दा होता चला जा रहा है। इसके लिए क्या किया जाए? फिर उसे सान्त्वना देता-सा बोला 'तुम भी क्या सोचती होगी, पढ़ लिखकर किस कुएँ में आ गिरी?

सहसा प्रभा ने कोई जवाब नहीं दिया। काफी देर चुप रही। फिर जाने कहाँ से बोली 'मुनीष हमेशातें ही तो नहीं रहेंगी। तुम पढ़-लिख लो कुछ तो आसानी हो ही जाएगी। तुम्हारे साथ साथ रहूँगी तो कुएँ खाई कहीं भी डर नहीं लगेगा। अकेले पड़ जाने पर ही जी घबरा

उठता है।" उसके भीगे स्वर के रोमांचों को मैंने दिल की गहराई में महसूस किया।

'अच्छा, तुमने तो इतने सवाल पूछ लिए। अब मैं भी पूछूं ?'

'नहीं प्रभा, नहीं, मैं तुम्हारे एक भी सवाल का जवाब नहीं दे पाऊंगा। समझ लो कि पागल था, उन दिनों दिमाग ठीक नहीं था। प्रभा का 'आप' से 'तुम' पर आना मुझे अच्छा लगा।

सुबह-सुबह मैंने प्रभा से कहा, "प्रभा, जो हुआ सो छोड़ो। वह सिर्फ मेरी गलती थी। अगर मेरी मजबूरी समझ सकती हो तो मुझे माफ कर दो। हमारे घर की हालत तुम देख ही रही हो। तुम खुद समझदार हो। इन सारी परिस्थितियों में हम लोग कैसे रहें यह निश्चय भी हम ही करना होगा।" मुझे खुद अच्छा लग रहा था कि मैं इतनी गम्भीरता के साथ महत्वपूर्ण बातें कर सकता हूं, सोच सकता हूं।

"इसमें मैं क्या बताऊं ? जैसे तुम कहोगे, मुझे मंजूर है। बताओ, आज तक मैंने कभी तुम्हारा विरोध किया ?" मेरी बांह पर सिर रखे छत की ओर देखती वह बोली।

'लेकिन मैं तो चाहता हूं कि तुम विरोध करो। हम लोग बहस करें और फिर खूब सोच-समझकर एक नतीजे पर पहुंचें।' कहने को मैं कह तो गया, लेकिन मन के भीतर किसी ने पूछा—तुमसे विरोध में कही गई बात सुनी जाएगी ? जल्दी से बोला 'तुम्हारी सलाह के बिना मैं कोई काम नहीं करूंगा। घर की सारी परिस्थितियां तुम्हें इस लायक नहीं लगतीं कि उन पर डटकर बातें की जाएं ? आखिर तुम सलाह देने से डरती क्यों हो ? तुम भी तो पढ़ी लिखी समझदार हो।"

'फिर वही पढ़ने-लिखने पर तानाकशी ?' प्रभा का स्वर तल्ख हो गया, "तुम भी अपने घर वालों की ही भाषा में बोलोगे ? बताओ, इस पढ़ने लिखने को कहां से जाऊं ? मां-बाप ने पढ़ा दिया तो क्या करूं ? जो कुछ पहला पढ़ा लिखा था सब तो भुला दिया। किसी को घर में आज

तक पढ़न लिखन का घमण्ड दिखाया ?' स्वर म नाराजी थी और गले म गीलापन ।

मुझ अपनी गलती महसूस हुई । इस बचारी को बिना जवाब देने का अवसर दिये इस बारे म इतने ताने सुनाने पड़े हैं कि अब अपने को रोक नही पाती । दुलार स उसका मुह अपनी ओर मोडकर कहा 'तो बाबा यह सब मैं कहाँ कह रहा हूँ ? लगता है इतने दिना की चुप्पी का बदला निकालन को उधार खाये बठी हो । मुह से बात निकली नही कि काटने दौडी । पुरानी शराब की तरह तज हो गई हो ।' उस खुश करने के लिए आगे जोडा 'आदमी जरा पी ले तो चस्का ही न छूटे और जिन्दगी भर नशे मे पडा रहे ।

बरछी स वह बोली, 'इन शब्दो का अथ मैं भी जानती हूँ ।' फिर शायद लगा कि स्वर म ज्यादा कडाई आ गई है । लजाने का भाव दिखा कर कहा, 'दो दिन म तुम तो अच्छे से अच्छे सिनमा ऐक्टर स भी ज्यादा एक्सपट हो गए । जो बात कर रहे थे वह तो चूल्हे भाड मे गई और लगे ये बकार की बातें करने ।'

'एक्सपट' शब्द कानो को खट से लगा । प्रभा गिडिता है यह बात इतनी तरह दुहरायी गई थी कि इसका अथ ही खो गया था । इस शब्द से पहली बार मुझ ध्यान आया कि वह किसी गाँव-कस्बे के घिरे वातावरण म रहने वाली नही, अच्छे शहरी परिवार की इकलौती लडकी है । किरण के पहनने ओढ़ने के ढग चाल चाल के तौर-तरीको को देखकर मेरे मन म भी आया है कि काश एसी समझदार और सुरुचिपूण पत्नी मेरी भी होती ! उस मिलमिन म मैंन प्रभा को कभी याद ही नही किया । वह तो कभी घर का काम धाम करते रहने वाले एक नगण्य प्राणी से अधिक मेरे सामन आयी ही नही । अब याद आया कि सिनेमा देखना तो दूर, बेचारी हमारे यहाँ तो सिनमा के पोस्टर तक देखने को तरस उठी होगी । कहानी उपन्यास की एक एक लाइन पढ़ने को तडफडाती होगी । शहर की लडकियो के ना जाने कितने कितने सपन होते हैं, जाने कितने कितने शौक होते हैं'

बेचारी ने सब हमारे घर का इन दीवारों में दफ़न किए। तभी दिवाकर के घर और अपने घर का अन्तर सामने आ गया। कम-से-कम वहाँ पढ़ा-लिखा होना एक दुर्गुण में तो शुमार नहीं किया जाता। क्या कभी हमारा घर भी बसा हो सकेगा? मैं भी प्रभा से किसी दिन कह सकूंगा कि शाम को घूमने चलना है दिवाकर और किरण आएँगे? उनके साथ चाय पीनी है। लेकिन लेकिन और आगे सोचा नहीं गया। अपने आप एक गहरी साँस मुँह से निकल गई।

प्रभा ने मेरी साँस सुनी तो भन्नाकर बोला अब क्या सोचने लगे? फिर मेरे माथे पर झुककर हाथ फेरते हुए बोली अच्छा बताओ, क्या कह रहे थे। ऐंटरवाली बात बुरी लग गई क्या?"

मैं चुप रहा और अपने ऊपर झुके उसके चेहरे को ग़ौर से देखता रहा। जाने क्यों यह जो कुछ कह और कर रही है वह सच्चे मन से नहीं कर रही। सोचती होगी कि अब बाँह दी गई है तो निभाना ही पड़ेगा। निश्चय ही मन के भीतर कहीं वह मुझे अपने लायक़ नहीं मानती।

'बताओ न!" इस बीच उसने फिर अनुरोध से कहा 'देखो मैं तुम्हारी सभी बातें मानूंगी। तुम मेरी एक बात मान लेना। मुझे बहुत बक-बक करने की आदत है। जो मुँह में आता है बक देती हूँ। मेरी किसी भी बात का बुरा मत माना करो, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मुझे ख़ुद भी ध्यान नहीं रहता कि क्या कहना चाहिए क्या नहीं। बाद में अफ़सोस होता है। इतने दिनों चुप रही हूँ सो कुछ-न-कुछ बोलने की याद आती है। रमा भी कहती है कि मैं बहुत बकवास करती हूँ।

मैंने उसकी बात का बुरा नहीं माना, लेकिन अपनी ही बात से मन में बहुत उदासी घिरने लगी। सचमुच मैं इस लड़की के लायक़ हूँ ही कहाँ! और ये पूछा कौन रमा?"

मेरी एक बदनाम-कली है। उत्साह में सब-कुछ भूलकर वह रमा के बारे में बताने लगी। मन में बोली, इस बार जब मैं गयी थी तो तुम्हारे बारे में बहुत ही पूछ रही थी। अपने बदनाम को सबसे बदनाम

लड़कियाँ थी हम लोग। भरी बहुत ही पक्की दोस्त है। लड़कियों में इतनी पक्की दोस्ती होती नहीं है। हम लोग आपस में सोचा करती थी—कभी शादी नहीं करेंगी खूब पढ़ लिखकर गाँव में चली जाएँगी और वहाँ स्त्रियों को पढ़ाया करेंगी। कभी सोचती—थोड़ा-सा सामान साथ लेकर सारे हिन्दुस्तान का पैदल टूर' करेंगी, खूब विस्तार से अपनी डायरी लिखा करेंगी। नये नये गाँव और शहरों में तरह तरह के लोग मिलेंगे। गुण्डे-बदमाशों या जंगली जानवरों से अपनी रक्षा के लिए हम लोग लाठी और छुरी चलाना सीखने की योजनाएँ बनाती। और भी बड़ी बड़ी जाने क्या क्या बातें किया करती। घर और बाहर वाले सब बहुत नाराज होते कि जाने ये लोग ऐसी क्या बातें करती रहती हैं कि खतम ही नहीं होती। हम लोग उन्हें और भी चिढ़ाते

अचानक मैंने बात काटकर पूछा अच्छा प्रभा तुम्हें शादी करने का बहुत अफ़सोस है?"

प्रभा झटके में चौंक पड़ी "नहीं तो, क्या मैंने तुमसे ऐसा कहा?" फिर वह खिलखिलाकर हँसने लगी 'देखो मैं कहती थी न मुझे बोलने की बहुत आदत है। मुझे रोक लिया करो। क्या करूँ, याद ही नहीं रहता। वही बात हुई न?' और वह देर तक खिलखिलाती रही। मुझे उसका यों उन्मुक्त भाव से खिलखिलाना अच्छा भी लगता था और आश्चर्य होता था कि इतना सब सह चुकने के बाद कैसे यह यों बिना झिझक हँस सकती है बातें करती चली जा सकती है। मैं तो अपनी याद में कभी यों हँसा नहीं। अचानक हँसना रोककर उसने मेरी कनपटियों को दोनों हथेलियों के बीच में दबाकर सीधे मेरी आँखों में देखते हुए कहा 'देखो मैंने जो कुछ भी कहा हो, उसे बिलकुल भूल जाओ। अब तो मैं चाहती हूँ कि तुम खूब पढ़ लिख लो। मुझसे जो कुछ कहोगे, मैं करती जाऊँगी।

मुझे सिहरकर और बाबूजी की सारी बात याद हो आई पूछा, प्रभा एक बात में सलाह दो।

'मैंने कहा न, मुझसे सलाह मत माँगो। तुम जो कहोगे करूँगी।'

अरे सुना तो सही पहले। बड़ी आज्ञाकारिणी बनी हो!' मैंने नकली डाँट से कहा। 'मेरा एक दोस्त है दिवाकर। वह भी पीछे पड़ रहा है कि मुझे बड़ इयर जॉयन कर ही लेना चाहिए। दूसरी तरफ भाई साहब और बाबूजी का कहना यह है कि मुझे कहीं-न-कहीं नौकरी कर लेनी है ताकि घर का कुछ मदद मिल सके। मेरा तो दिमाग काम नहीं करता, तुम बताओ।'

वह थोड़ी देर चुप रही, जैसे मुझे कुछ और कहने का अवसर दे रही हो। फिर बोली, अब इसमें मैं क्या सलाह दूँ? तुमको जो भी ठीक लगे।'

मुझे साफ लगा कि जो कुछ वह कहना चाहती थी वह नहीं कहा। अपने मन के ऊपर ही ठीक लगने की बात होती तो मैं तुमसे पूछता ही क्यों? मैं जो भी तय करूँगा उसका असर केवल मुझ तक ही तो नहीं है। अब तक तो अपने लिए घर वालों के लिए पढ़ाई का बहाना था। अब वह भी खत्म हो गया। जितना कुछ दीखता है उससे यह तो साफ है कि पढ़ाई अब आगे चलेगी नहीं। इतने दिन जैसे रो-पीटकर काटे हैं वही बहुत हैं। घर वालों को अब तत्काल मदद की जरूरत है। अब तो कोई रास्ता ही दिखायी नहीं देता।

प्रभा ने जमुहाई ली और बोली 'तो ठीक है कुछ कर-करा लो।

'इतने बे-मन से क्या कह रही हो?' मैंने कहा "मुझे मालूम है तुम्हें मेरी बात पसन्द नहीं है लेकिन बताओ करूँ क्या? और रहा काम, सो कहना सबके लिए बड़ा आसान है जरा बाहर निकलकर देखोगी तो पता चलेगा कि काम कब मिलता है! बड़े-बड़े इण्टर और बी० ए० घूमते हैं कोई कौड़ी को नहीं पूछता। बहुत कोशिश करूँगा तो चालीस-पचास की नौकरी मिल जाएगी। सो दिन भर कलम घिसनी पड़ेगी और रात को फाइलों का गट्ठर बाँधकर घर लाना पड़ा करेगा। बात करने की फुरसत नहीं मिलेगी। रात भर बड़े-बड़े आँखें फोड़ो। भाई

साहब लड़ाई के जमाने में नौकर हो गए थे सो समझते हैं कि अब भी वैसा ही आसान है। वह जमाना तो रहा नहीं। लेकिन ये बातें समझाएं किसे? हमारी तो अक्ल काम नहीं करती। पास में कोई अच्छी डिग्री हो तो कोशिश भी की जाए। अब किसी से क्या जाकर कहें कि 'जी, हम इण्टर पास हैं और यह बेचारा भी क्या नौकरी दिलाए! तुम कुछ क्यों नहीं बोलती?'

क्या बोलूं, बताओ? कहो तो किसी स्कूल में मास्टरनी-वास्टरनी की नौकरी कर लूं? उसके स्वर में परिहास खनक उठा। जैसे घर की सारी स्थिति को और सहज कर रही हो।

एकदम बड़ा सा मुंह फाड़कर मैं बोला, "घर से और निकलवाना। यह बात अगर जरा भी अम्मा या भाभी के कान में पड़ गई तो समझ लो यह तूफान उठेगा कि घड़ी पहनकर खाना बनाने वाला दिन भूल जाओगी। फिर इन परिस्थितियों और अपनी मजबूरी पर खुद ही गुस्सा आने लगा राय प्रभा, कभी कभी तो ऐसी झुंझलाहट होती है कि यहां से कहीं भाग चलें। तुम भी सोचती होगी कि किस निकम्मे के पल्ले बंधी हो। मैं दिल की बात कहता हूं अब तुम्हारी यह हालत देखी नहीं जाती। आराम चैन का तो सवाल नहीं, ठीक से पहनना ओढ़ना भी नहीं होता। मेरे पास खुद कपड़े नहीं हैं।

तुम मेरी चिन्ता मत करो। मेरे पास बहुत हैं।'

लेकिन मैंने उसकी बात नहीं सुनी, 'दिवाकर की चाइल्ड रोज पीछे पड़ती है कि तुम्हें किसी दिन ले चलूं। लेकिन बताओ, कैसे ले चलूं? अब तो मुझे यह भी डर है कि किसी दिन वह यहीं न चली आए। मुझे अफसोस हुआ कि मैंने दिवाकर को यह क्यों बता दिया कि प्रभा आ गई है। अगर आ गए तो हम लोग उन्हें कहां उठाए-बैठाएंगे?

सहसा प्रभा बोल पड़ी हाय राघो! यहां से भी मत जाना। क्या करेगी यहां का सब दलदर? उनकी खातिर करने को भी तो कुछ नहीं है।'

'मैंने कहा न, मुझसे सलाह मत माँगो। तुम जो कहोगे, करूँगी।'

'अरे सुना तो सही पहले। बड़ी आज्ञाकारिणी बनी हो!' मैंने नकली डाँट से कहा। 'मेरा एक दोस्त है दिवाकर। वह भी पीछे पड़ रहा है कि मुझे थर्ड इयर जॉयन कर ही लेना चाहिए। दूसरी तरफ भाई साहब और बाबूजी का कहना यह है कि मुझे कहीं-न-कहीं नौकरी कर लेनी है ताकि घर को कुछ मदद मिल सके। मेरा तो दिमाग काम नहीं करता, तुम बताओ।"

वह थोड़ी देर चुप रही, जैसे मुझे कुछ और कहने का अवसर दे रही हो। फिर बोली, "अब इसमें मैं क्या सलाह दूँ? तुमको जो भी ठीक लगे।"

मुझे साफ लगा कि जो कुछ वह कहना चाहती थी वह नहीं कहा। 'अपने मन के ऊपर ही ठीक लगने की बात होती तो मैं तुमसे पूछता ही क्यों? मैं जो भी तय करूँगा उसका असर केवल मुझ तक ही तो नहीं है। अब तक तो अपने लिए घर वालों के लिए पढ़ाई का बहाना था। अब वह भी खत्म हो गया। जितना कुछ दीखता है उससे यह तो साफ है कि पढ़ाई अब आगे चलेगी नहीं। इतने दिन जैसे रो-पीटकर काटे हैं वही बहुत हैं। घर वालों को अब तत्काल मदद की जरूरत है। अब तो कोई रास्ता ही दिखायी नहीं देता।'

प्रभा ने जमुहाई ली और बोली "तो ठीक है, कुछ कर-करा लो।'

'इतने बे-मन से क्या कह रही हो?' मैंने कहा 'मुझे मालूम है तुम्हें मेरी बात पसन्द नहीं है, लेकिन बताओ करूँ क्या? और रहा काम, सो कहना सबके लिए बड़ा आसान है, जरा बाहर निकलकर देखोगी तो पता चलेगा कि काम कम मिलता है। बड़े-बड़े इण्टर और बी० ए० घूमते हैं कोई कौड़ी को नहीं पूछता। बहुत कोशिश करूँगा तो चालीस-पचास की नौकरी मिल जाएगी। सौ दिन भर कलम घिसनी पड़ेगी और रात को फाइलों का गट्ठर बाँधकर घर लाना पड़ा करेगा। बात करने की फुरसत नहीं मिलेगी। रात भर बैठ-बैठ आँखें फोड़ो। भाई

है ? अब मैं अकेल कोई निर्णय नहीं ल सकता। कुछ-न-कुछ तो होगा ही, आखिर इसमें जल्दी निराश होने की बात क्या है ?

मन ही मन डर भी रहा था कि इतनी देर से लौटने पर घर पर डाट पड़ेगी। देखें इस बीच म वहा और क्या-क्या हो गया ? वेमन स लौटन लगा। एम्प्लायमण्ट एक्सचेंज की बिल्डिंग पीछे छूटने लगी, कोलाहल धीमा पड़न लगा।

हुआ या कि दो दिन बाद मैंन डरते डरत भाभी स कहा, "भाभी, तुम्हार पास साड़ी भी कोई धोती होगी ?"

'धोती का क्या करोगे ? मैं जान गया कि भाभी समझ गई है लकिन अनजान बनकर पूछ रही हैं।

'हा ता प्रभा को दे दो, कोई देख तो क्या कह' देखने म भी तो शरम लगती है। मैंन जबरदस्ती आवाज को सापकर कहा।

भाभी की आंखो म कुटिलता और बात को ताड़ लन क सतोष की मुस्कराहट चमक आई। मैंन उनकी मुस्कराहट के जहर का देखकर भी अनदेखा कर दिया। वह बोली 'मेरे पास तो कसम से लालाजी, एक भी नहीं है। विश्वास न हो ता चलके मरा सन्दूक देख लो। वे दोना हाथो म बच्ची को झुलाती रही 'अम्मा क पास ता हागी एकाध। उनसे क्यो नहीं पूछ लेत ?

अम्मा के पास जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, इसीलिए तो भाभी के पास आया था। अब जरा सा साहस बंधा। अपने को समझाया कि इसम डरन की एसी बात भी क्या है। मैं बोलने लगा हूं इस बात को जान तो वह गई हैं। इधर-उधर चक्कर काटकर अम्मा के पास पहुँचा। पूछा "अम्मा, तुम्हारे पास एकाध धोती तो नहीं है ?' उनकी ओर सीधे देखने का साहस नहीं पड़ रहा था।

'कसी ? प्रश्न के बाद ही पूछा, सून अभी तो एक पतलून बनवायी थी।'

'मुझे नहीं अम्मा मैं प्रभा के लिए पूछ रहा था। उसकी धोती

एकदम फट गई है। उधर देखा तक नहीं जाता।

'आह! तो यों क्यों नहीं कहता कि बहू के लिए चाहिए? घुमा फिरा के क्या पूछ रहा है' प्रभा का नाम सुनते ही अम्मा का चेहरा जैसे बुझ गया। बुरा-सा मुंह बनाकर तौलिया का गुच्छा तकिये के नीचे से निकाला और उसे मेरे सामने फेंकती हुई बोली 'ले, तेरे सामने धरा पड़ा है। देखे तो निकाल ला। मुझे कहां दिखायी देता? होता होती तो मैं अपने आप ही नहीं दे देती' अबके महीने पर रुपये बचे, तो मंगा दूंगी। बैंस एकाध तो उसके पास भी होगी ही।'

मैं चुप हो गया। क्या जवाब देता? चलते-चलते परिहास-से स्वर में कहा, उसकी साड़ी की ही एकाध बची हो तो दे दो। कोई देखे तो क्या कहे?

इस बार अम्मा एकदम भड़क उठी, 'साड़ी का रखा है पत्थर! तू क्या कहीं चला गया था? कौनसा खजाना आया था साड़ी में? और कितने जतन हो गए साड़ी को कि उसका बात याद किया जा रहा है? क्या रे, तब की सब चीजें अभी तक रखी ही होंगी? मुन्नी को नहीं दिया कुछ जाते वक्त? वह गयी थी तब इसे कुछ नहीं दिया?' लगता था अम्मा का क्रोध अपने आप ही बढ़ता चला जा रहा है। वह जोर-जोर से कहने लगी, 'तू अच्छा अपनी बहू से बोलने लगा। अब तो जरा-जरा-सी बातों पर छाती पर चढ़कर आएगा। तू ही तो एक अनोखा बहू वाला है दूसरे बहू नहीं है! यों कभी नहीं कहना कि सिवा-पत्ता के भेजा है। अरे, मैं उसकी नस-नस जानूं। वो साधी नहीं है बड़ा पुर्जी रकम है। इतने दिनों इस्कूल में और किया ही क्या है? यही अपना-पराया तो साधा है।'

अम्मा का भाषण निर्बाध चलता रहता, तभी बाबूजी ने आकर डांटते हुए कहा, 'क्या बात है? क्या हल्ला मचा रखी है? कभी यह भी सोच लिया करो कि बाहर कोई आया-गया, या मिलने वाला ही बैठा हो। सुन तो क्या कहेगा? एक पल को इस घर में शांति नहीं है। हमेशा यही

अम्मा ने उनकी बात सुने बिना, उतने ही जोर से कहा, 'तुम्हारा लाडला बहू की तरफदारी लेकर आया है। शादी का हिसाब माँग रहा है। कहता है शादी में जो कपड़े आये हैं वो दे दो। बहू को इन कपड़ों में शरम लगती है। पूछो इसीसे, शादी में कौनसे कमख्वाब के थान आये थे ?'

बाबूजी ने जलती आँखों से मुझे देखा, और हिकारत से झिड़ककर बोले, "कमाने धमाने की कौनी नहीं, और बहू की तरफदारी को शेर। शरम नहीं आती ? थू है इस बेहयाई पर ! दूसरा भी तो भाई है, सो बेचारा मरा जा रहा है। यहाँ पटा दिया, लिखा दिया और अब दुनिया भर का फैशन करने को भी दो। यह तो नहीं कि कम-से-कम अपना खर्चा अलग कर ले कुछ तो बोझा कम हो। आदमी कभी-कभी अपने आप भी कुछ सोचे ' और बिना बात पूरी किये वे वापस बैठक में चले गए।

बाबूजी को नाराज देखकर या यह संतोष मानकर कि जो कुछ वह कहना चाहती थी वह काफी जोरदार तरीके से कहा जा चुका, अम्मा एकदम चुप हो गई। पिटा हुआ-सा मुँह लिये मैं चुपचाप अपनी कोठरी में चला आया। मैं अम्मा के पास गया ही क्यों ? भाभी जरूर पहले से जानती होंगी। इन्हें भी किसी दिन समझूँगा। खुद तो कुछ कहने की हिम्मत होती नहीं है इधर उधर भिड़ाती रहती हैं

तभी न जाने कैसे समय निकालकर प्रभा आ गई। आते ही बोली 'वहाँ जाकर यह सब बाद करने को तुमसे किसने कहा था ? मुझे धोती साड़ी किसी की जरूरत नहीं है। मेरे पास सन्दूक भरा रखा है। मैं तो इसलिए नहीं पहनती कि अच्छा कीमती साड़ियों को यहाँ घर के कामों में क्यों खराब करूँ ? क्या जरूरत थी मुझे-ही-मुझे वहाँ जाकर झगड़ा खड़ा करने की ? तुम कहो कुछ करने लगो तो मैं कुछ पहन लूँगी। बड़े-से-बड़े जाड़ा जब इन कपड़ों में निकाल लिया तो अब क्या मरी जा रही हूँ तुमसे नहीं देखा जाता तो ला अभी निकालकर पहने लेती हूँ। मैं तो कहीं आने जाने के लिए रख छोड़ी है। लेकिन देवता, मैं हाथ जोड़ती हूँ

तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, वहाँ जाकर यह सब झमेला मत करना। तुम तो कह-सुनकर अलग हो जाओगे, मेरी जान वे लोग बाद में नोच खाएँगी

मैंने परेशानी के स्वर में अधीरता से कहा "अच्छा प्रभा, इस वक्त तुम चली जाओ। मैं कुछ कह-कहा दूंगा तो तुम नाराज हो जाओगी।'

प्रभा का गला भर आया 'मैं कभी नाराज हुई हूँ आज तक?

तभी नीचे से किसी ने जैसे सारा दम लगाकर आवाज लगाई, 'अब कहाँ गायब हो गई? बहू, दाल सारी उफन-उफनकर चूल्हे में जा रही है इसे उतारकर ही खसम से बतियान चली जाती "

प्रभा केले के पत्ते की तरह थर्रा उठी, नीचे भाग गई।

मैं बड़ा-बड़ा सुनता रहा—कमाओ, कमाओ! कुआँ खोदो, माह भोका, लेकिन कमा-कमाकर लाओ। काश मुझे कहीं कोई गड़ा हुआ खजाना मिल जाता तो इन सबकी नाक तक रुपया लाकर ठूंस देता, कहता, लो चबाओ! और बचपन की भूली हुई कल्पना फिर सिर उठाने लगी जैसे चलते चलते कहीं अचानक मेरा पाँव टकराता है, इट-पत्थर समझकर मैं पहले तो ध्यान नहीं देता लेकिन बाद में अचानक याद आ जाने पर लौटकर देखता हूँ कि जमीन से बाहर निकला किसी ढक्कन का सिरा है। जरा-सा पाँव से मिट्टी इधर उधर हटाता हूँ और पाता हूँ कि अरे यह तो पीतल के भारी दल का ढक्कन है जिसमें गिन्नियाँ या सोने चाँदी के गहने भरे पड़े हैं। अपनी वह तस्वीर भी मेरे सामने आ जाती है जब इधर-उधर देखता हुआ मैं उसे निकालने को झुक रहा हूँ। या छिपकर बैठा हुआ बेचैनी में रात का इन्तजार कर रहा हूँ। साथ ही अपनी इस कल्पना की असंभावना पर हँसी भी आती है। पहली बात तो सड़क बनाने वाला ने जमीन का जाने कितना गहरा पहले ही खोद रखा होगा। और अगर यह भी मानें कि जमीन में गड़ा हुआ धन स्थिर नहीं रहता चलता रहता है तो पुलिस वाले और बाहर वाले छोड़ेंगे? मारा तो वहीं से जाएँगे।

फिर अपनी इस बेवकूफी पर झुंझलाहट आती—बैठा-बैठा क्या

बकार की बातें सोच रहा हूँ ? सवाल तो यह है कि इस समय आखिर क्या करूँ ? मान लो, अब मारकर बिना रिजल्ट की राह देखे कहीं नौकरी करने जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ ? सर, जो भी हो, जैसे भी हो, आज किस्मत आजमानी ही है। यह चलेगा नहीं।

कागजात में दबे मट्रिक के सर्टिफिकेट को गोल मोल करके मैंने जेब में रखा और दबे पाँव बाहर निकल आया। अम्मा किसी काम को लेकर प्रभा के ऊपर बड़बड़ा रही थी। और कुछ काम तो है नहीं, पूजा करना और बड़बड़ाना। मुझे निकलते देखकर पीछे से बोली

अब फिर निकल दिए ! खाना तो खा जाते। कब तक रखा रहेगा ? बस ही भगोना भर दाल फिरी है। रोज रोटियाँ भगिन को देनी पड़ती हैं "

यह घर है या भटियारखाना ! हर वक्त बस एक ही बात ! कोई एक पल को शान्ति से नहीं बैठ सकता। खुद तो कोई यहाँ सोचता नहीं, और अगर कुछ कहो तो लड़ाई हो। प्रभा के लिए धोती माँग ली तो ऐसा क्या बुरा कह दिया ? अभी आकर प्रभा मुझे डाँट बता गई मुझे बुरा नहीं लगा। लेकिन बाबूजी के शब्द भाले की तरह दिल को चीरते चले गए। एक ये अम्मा हैं। रोटियाँ भगिन को देनी पड़ती हैं ! किसी को चैन से खाने दो तभी तो खाएगा या उस दिन किरण ने अपनी साड़ी के प्रति अवज्ञा दिखायी थी तो मुझे बुरा लगा था। आज लगा, उसने बिलकुल ठीक किया। जब ये ही ऐसा दुर्व्यवहार करती हैं तो अपने आप मन में मैल आएगा। अम्मा के पास साड़ी धोतियाँ सब होंगी। लेकिन नहीं ये तो उनकी प्यारी बहू के लिए हैं। उनका पति कमाता जो है, तभी सारे दिन बच्चों को लिये घूमना और राज करना। घर भर को एक नौकरानी मिल गई है सो जानवरों की तरह काम लिये जाओ। न उसके खाने की बात सोचो न पीने की। जब मन हो सो डाँट फटकार लो। बेचारी निकम्मे पति की पत्नी जो है

सड़क पर तो आ गया लेकिन खड़ा-खड़ा सोचता रहा। याद हो

नहीं आया कि निकला कहाँ जाने के लिए था। हाँ इतना ध्यान था जहाँ जा रहा हूँ वहाँ कोई देख न ले। बड़ी देर माथे को उँगली से ठोक-ठोककर याद करता रहा। यह क्या हो गया है मेरे दिमाग को ?

एम्प्लायमेंट-एक्सचेंज की ऊँची बिल्डिंग से दूर से ही हजारों आदमियों की भीड़ और मेले-जैसा कोलाहल सुनाई दे रहा था। बिल्डिंग की सारी गलियाँ और दरवाजे भरे हुए थे। आस-पास का सारा कम्पाउण्ड आदमियों से ठुसा था। लोग सेहड़ों, लॉन, क्यारियों सब पर चढ़े पड़ रहे थे। बाहर की बाउण्ड्री वाली दीवार पर पंजों के बल दुहरी लाइन लगाए खड़े थे। एक-दूसरे के कंधों का सहारा लिये भीतर झाँकने की कोशिश कर रहे थे। सबकी निगाह इमारत की तरफ थीं। देखने ही अन्दाज होता था कि या तो यहाँ कोई बड़ा नेता आया होगा और इस विषय पर भाषण दे रहा होगा कि देश की हालत किस तरह दिन दिन सुधरती चली जा रही है। कहाँ कितने बाँध बने हैं कहाँ कितनी नई फैक्टरियाँ चालू हुई हैं, और भारत का स्थान विश्व में किस तरह महत्वपूर्ण होता चला जा रहा है। फिर सोचा कहीं यहाँ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई—आग लग गई हो या किसी ने किसी का खून कर दिया हो। लेकिन चौराहे वाला सिपाही शान्त और निरुद्विग्न भाव से ट्रफिक को हाथ दे रहा था। भीड़ में गहरे न जा सकने के कारण साइकिल वाले लोग साइकिलों से टिक सड़क पर खड़े-खड़े ही भीतर के समाचार जानने की कोशिश कर रहे थे। भीड़ के किनारे जाकर खड़ा ही हुआ था कि किसी ने कंधे पर हाथ रखा, कहिए स्वयंसेवकजी !

चौंककर पीछे मुड़ा। तभी सुना 'माफ कीजिए मुझसे गलती हो गई।"

बनियान झलकाता महीन मलमल का कुरता पाजामा और रंगे बालों को पीछे की ओर काढ़े गोरे-से एक सज्जन थे। अपने पतले चेहरे पर क्षमा की एक मुस्कराहट लाकर बोले 'मैंने आपको देखकर कोई और

समझा था।"

मैं भी मुस्करा पड़ा 'कोई बात नहीं।' फिर पूछा 'आपको पता है, यह आज यहां क्या हो रहा है?' न मालूम क्या उस व्यक्ति का चेहरा मुझे कुछ आकर्षक लगा।

आज यहां शायद मजदूरों या क्लर्कों की भरती है। इस आर पास खड़ा नीले का काला-सा नोटिस बोर्ड ध्यान से देखते हुए उन्होंने बताया। मैं भी झुककर देखने लगा। ऊपर से नीचे तक सकड़ा नौकरियों के नाम लिखे थे। प्राय सभी के आगे चॉक से क्रास के चिह्न लगे थे। बढ़ई के आगे लिखा था—दस बढ़ई मजदूरों के आगे था—पचास मजदूर, और क्लर्कों के आगे था—तीन क्लर्क। अथाह आश्चर्य से मेरा मुंह खुला रह गया—तिरसठ आदमियों की जरूरत है और तीन हजार आदमियों की भीड़ यहां जमा है! दिल जैसे धसक गया।

और थोड़ी देर तमाशा देख-दाखकर मैं सिर लटकाए घर लौट आया। नहीं इस अथाह भीड़ में मेरे लिए कोई जगह नहीं है। दिवाकर ठीक कहता था अच्छी डिग्री जब तक न हो तब तक अच्छी नौकरी भी नहीं मिल सकती। यहां मैं क्या करूँगा? इन हजारों लोगों में से कोई एम्प्लायमेण्ट आफिसर का भानजा होगा, कोई भतीजा, पहले उनके नाम जाएँगे या मेरे? थोड़ी दूर साथ साथ लौटते हुए कड़वाहट से उन साहब ने कहा था—'दिन रात गला फाड़ फाड़कर चीखने वाले इन नेताओं को शरम भी तो नहीं आती। अपने बनमानुषों जैसे मुंह को गभीर बना बनाकर कहेंगे कि अब हम स्वतन्त्र हैं। देश के नव निर्माण के लिए हम अच्छे-से अच्छे इंजीनियर चाहिएँ डाक्टर चाहिएँ मशीन चलाने वाले लोग चाहिएँ वैज्ञानिक चाहिएँ। तुम्हें किसी की जरूरत नहीं है, तुम्हें अपने बगलों-कोठियों की क्यारियाँ हरी भरी रखने को माली चाहिएँ और गाड़ियाँ चलाने को ड्राइवर चाहिएँ। यह चाहिए वह चाहिए। चाहिए तुम्हें पत्थर!

उनका गुस्सा मुझे अपना घाव सहलाना लगा। ठीक ही तो है

जिनकी इच्छा आगे पढ़ने की है कुछ बनने की है उनके पास न साधन हैं न सुविधाएँ। और तुम्हें जादू के जोर से बने हुए डॉक्टरों और इंजीनियरों बनानिकों और टेक्नीशियनों सभी की जरूरत है।

संसार में महान और अकेला बनने के कैसे-कैसे मधुर सपने मैंने देखे थे, मैं लौटते हुए सोचने लगा। रात रात भर अपनी नींद और खून से मैंने उन सपनों को सींचा था कि मैं यह बनूंगा मैं वह बनूंगा। दयानंद से लेकर शिवाजी, रवींद्रनाथ गांधी और जवाहरलाल नेहरू तक कौन मेरा आदर्श नहीं रहा? किन किन के अनुसार अपने जीवन को ढालने की मैंने कोशिश नहीं की? किन किनकी जीवन-कथाओं ने मेरे तन-मन में रोमांच और ज्वार नहीं उठा दिए? बाधाओं को रबर के गुब्बारों की तरह इधर उधर फेंक देने के कैसे-कैसे जोश भरे भीतर खुदबुदाया करते थे और शाम होने तक किस तरह मैं अपने उन्हीं सपनों के पालनों पर झूला करता था। प्रभा से न बोलकर मैं अपने को कितना प्रसन्न अनुभव करता था, जैसे मेरे मार्ग का कांटा खुद ही हट गया हो और प्रारब्ध ने महान बनने का रास्ता खुद ही मेरे सामने खोल दिया हो। अब बस महान् बन जाने में देर ही कितनी रह गई है! कितनी बेवकूफी और मूर्खता की बातें थीं वे सब भी! कितनी काल्पनिक और निराधार! और मैं था कि अपनी वास्तविकता को भूलकर उन्हें ही सच समझा करता था।

'और उससे भी बड़े मजाक की बात यह है' उन्होंने सिगरेट वाले हाथ को झटककर कहा था, सफलता प्राप्त करने और महान् बनने के नुस्खे स्कूलों और कालेजों में हम लोगों के कच्चे दिमागों में इस तरह भर दिए जाते हैं मानो उस तरह का पाठ पढ़ने के बाद लड़का पहला काम करेगा कि जाकर जवाहरलाल नेहरू बन जाए फिर बाद में महात्मा बन जाए। पचास और सौ रुपये लेकर मास्टरी करने वाले गोबर-गणेश को यह नहीं सूझता कि यही पाठ वह भी पढ़ा करता था और महान् बनने चले इस स्कूल में हैडमास्टर को लताड़ खाने आ मरा। ये लोग भूल जाते हैं कि वे बड़े आदमियों के बेटे थे। उन्हें खाने, रहने की चिन्ता

नहीं थी। अपने आप बड़ आदमी बनने। और फिर उनके मुड़ने की जगह आ गई। 'माफ कीजिए, अगर कोई बात गलत कह दी हो,' कह-कर वे चले गए।

उनकी बातों पर आश्चर्य करने के साथ-साथ मुझे यह भी लग रहा था कि कहीं देखा है इन्हें। याद नहीं आ रहा था। 'नहीं कोई बात नहीं,' मैंने ऊपर से जवाब दिया। उनकी बात की सचाई दिल को चीरती चली गई। नहीं नहीं, मेरे लिए कोई भविष्य नहीं है, कोई जगह नहीं है। और गुस्से में आकर जेब में तह किये रखे मट्रिक के सर्टिफिकेट को मैं खूब मरोड़ता मसलता रहा।

जाने कब तक व्यर्थ ही भटकता रहा और यह बात घिरकर दिमाग में टकराती रही कि मुझे कुछ करना है कुछ करना है अपने लिए नहीं तो प्रभा के लिए। लेकिन घण्टे पर पड़ती चोट की तरह यह बात भी घनघनाती रही कि कहीं कुछ नहीं है कोई अपना नहीं है।

दोपहर बाद जब घर पहुँचा तो डाकिए से कुछ लेकर अमर घर के भीतर जा रहा था। पूछा, 'किसकी चिट्ठी है अमर ?"

अमर इस तरह चौंका जैसे सिगरेट पीता गया हो। हकलाकर बोला, छोटी भाभी की है।

'लाओ मुझे दो।' हाथ बढ़ाकर पत्र मैंने उसके हाथ से ले लिया। मुहर देखी प्रभा के घर की नहीं थी। साफ नहीं आई थी, गौर से देखने पर जोधपुर की लगती थी। आश्चर्य हुआ जोधपुर से पत्र किसने डाला है ? लेकिन खोलने की इच्छा जरा भी नहीं हुई। जानता हूँ, मेरी ही जानकारी में प्रभा के न जाने कितने पत्र खोल गए हैं। अमर के रुख से भी मैं जान गया कि पत्र आज रात को भली प्रकार सेंसर करके, यदि आवश्यकता समझी जाती तो बन्द किया जाना।

पत्र लेकर मैं भीतर आया। प्रभा एक कोने में बैठी-बैठी आटा छान रही थी। मैं इस बात को देखते देखते ऊब चुका था कि जब देखो तब या तो वह रसोई के काम में लगी है या रसोई-सम्बन्धी ही किसी काम में

उलझी। आखिर, कितना काम है चौके का कि चुकने में ही नहीं आता। इस समय तो ऐसा मन हुआ कि दोनों बाहें पकड़कर उसे उठा दूं और कहूँ "चलो, बहुत हुआ बाकी काम कोई और कर लेगा।' लेकिन वह कोई और कौन होगा? पपड़ाते होठों और सूखे गले से धीरे से जाकर कहा, "यह तुम्हारा पत्र आया है प्रभा!"

'कहां से?' वह एकदम हुलस पड़ी। मेरे हाथ से खत लेकर कोने पकड़े हुए ही पता पढ़ा और उमंगकर बोली, जोधपुर से आया है, रमा का होगा। बहुत दिन में आया। मैंने भी उसे लिख रखा है लिफाफा नहीं था कि उसे डालती। फिर सहसा मेरे चेहरे को देखा तो बात अधूरी छोड़ दी, 'तबीअत तो ठीक है न?

"क्या, मेरी तबीअत को क्या हुआ? मैं चलते चलते बोला, 'पहले इसे पढ़ लो, आटा पीछे छान लेना।

पत्र मेरी ओर बढ़ाते हुए बोली ए सुनो इसे जरा हमारे संदूक में रख दो। रात को पढ़ूंगी। लो यह ताली है।' पल्ले से बंधी कमर में खुंसी ताली को खींचती वह बोली, 'अभी तो सारा काम करना है। खाना तो अभी बना ही नहीं है।' तभी उसे याद आ गया हो, इस तरह बोली और क्या, आप जनाब ने खाना क्यों नहीं खाया? हम अभी तक भूखे बैठे हैं।'

मैंने बहुत ही अधिक नरम स्वर में कहा 'भूख नहीं थी प्रभा, खा लिया था।'

"वाह खा लिया था। उसने विद्रूप से दुहराया 'जैसे तुमने खा लिया था मैं खूब जानती हूँ। कम-से-कम यह तो सोच लेना चाहिए कि जरा-से गुस्से के मारे हम तो खा नहीं रहे लेकिन दूसरा आदमी भी तो भूखा बैठा होगा।

तो तुमने सचमुच अभी तक नहीं खाया?' मैंने एकदम पूछा। लगा अनपढ़ता की सारी थकान और मन की सारी घुटन अपने आप पिघल गई। आंखों में नमी घुल आई।

आपको क्या है ? आपको तो जब घूमने से फुरसत मिले तो पूछ लीजिए। वह नाराज होकर आटा छानने लगी। मन पुलकने लगा। हजारों प्रश्न मन में घुमड़ने लगे—जब मैं तुमसे नहीं बोलता था तब भी इसी तरह भूखी रहती थी क्या ? गला साफ करके इतना ही कहा, 'लाओ अब दे दो। सुबह अपने कहे हुए शब्दों पर खुद ही गुस्सा आने लगा।

अब बासी खाओगे ?' वह जल्दी मचाती हुई-सी बोली, 'अभी आधे घण्टे में ताजा बनाए देती हूँ। और देखो, मेरे सन्दूक में ज्यादा उलट-पुलट मत करना।

मैं ऊपर आ गया। कोठरी में उसका सन्दूक एक ओर रखा था। खोला और लापरवाही से पत्र डाल दिया। फिर उसकी बात का ध्यान हुआ और मन के रोकते रोकते इच्छा जोर मारने लगी कि देखूँ तो सही, सन्दूक में रखा क्या-क्या है ? देखा, रेशमी और सूती चार-पाँच साड़ियाँ, ब्लाउज और कागज के तथा दूसरे डिब्बे डिबियों में जाने क्या-क्या रखा था। कपड़े सचमुच अच्छे किस्म के थे और घर का ऐसा काम करते हुए रोजमर्रा के पहनने लायक नहीं थे। सबसे अधिक जिस चीज ने मेरा ध्यान खींचा वे थीं दो-तीन पुस्तकें। माया की वही प्रति अभी भी रखी थी। पुस्तक उसके किसी सम्बन्धी ने दी थी। महान् महिलाओं के जीवन-चरित्र पर एक पुस्तक और एक गांधीजी की आत्म-कथा एक नवयुवतियों के जानने लायक बातों पर कोई किताब और प्रेमचन्द की 'रंग भूमि'। सब पर झट के साथ-साथ उसके अपने हाथों से भी एक कोने में लिखा था—प्रभा। 'रंग भूमि' के पन्नों से झाँकता कागज का एक सिरा दिखायी दे रहा था। खींचकर बाहर निकाला तो देखा, किसी का पत्र था। सबसे पहले नीचे भेजने वाले का नाम पढ़ा तो चौंक गया। वहाँ प्रभा का ही नाम था। प्रभा का पत्र यहाँ क्या रखा है ? कागज खोलकर अच्छी तरह देखा। अक्षरों की बनावट तो सुस्पष्ट थी, लेकिन पत्र बड़ी जल्दी में लिखा गया था। वर्ष भर में पहली बार मैं अपनी

पत्नी के हाथ की लिखाई पढ़ रहा था और वह भी उस पत्र की जो किसी दूसरे के नाम था। तब भी महसूस हुआ कि मेरी पत्नी की लिखाई सैकड़ों से अच्छी है। कहीं चोरी पकड़ी न जाए इसलिए जल्दी-जल्दी पत्र पढ़ने लगा।

और वह पत्र जाने कब तक अक्षर अक्षर मेरे मन में गूंजता रहा। लगता, जैसे मैं पढ़कर उसे दुहरा नहीं रहा बल्कि खुद वही रात के अँधेरे में लेटी-लेटी मुझे अपने मन का लिखकर बता रही हो। थोड़े दिनों बाद तो मुझे यह विश्वास ही नहीं रह गया कि सचमुच मैंने इतना बड़ा पत्र पढ़ा था। फिर तो ऐसा लगने लगा कि पत्र तो छोटा था, उसे मेरे मन की कल्पनाओं ने सोच-सोचकर बड़ा लिया है। हाँ इतना जरूर याद है कि पत्र कई किस्तों में लिखा गया था, क्योंकि लिखाई कई बार टूट-टूटकर नयी हुई थी। बहुत दिनों बाद तक पत्र का जो विस्तारपूर्ण रूप मुझे याद रहा, वह शायद यों है—

प्रिय रमा

जब तुम्हारा पत्र मिला तब मैं अम्मा के पास हो थी और शायद अम्मा के पास जब वापस पहुँचूंगी तभी इसका जवाब तुम्हें मिलेगा। तुम मेरी व्यस्तता को बहाना समझोगी, लेकिन तुम्हें कैसे समझाऊँ कि आज-कल दम मारने की फुरसत नहीं पा रही हूँ। रोज सुबह शाम पर टालती हूँ लेकिन समय नहीं मिल पाता कसम से कहती हूँ। सुबह से शाम तक का कार्यक्रम गिना दूँ?

मैं जानती हूँ तुम खूब रूठ रही होगी खूब बुरा मान रही होगी और मान रही होगी कि जब नाराज होकर स्कूल के पीछे वाले अनार के पेड़ के पास मुँह फुलाकर बैठ जाता था और मैं मनाने जाती थी उसी तरह अब भी मनाने आ जाऊँगी। लेकिन मैं कसम खाऊँ तुम्हें रमा सही कि मैं नहीं आ सकती नहीं आ सकती। चाहे तब भी नहीं आ सकती। बाबा, तुम्हीं कहो आखिर स्कूल की सबसे 'बड़प्पन' और सबसे लड़की की दर्जा लेता। तुम्हीं तो मुझे सरकस में नौकरी

करने को कहा करती था । अब म अनुभव करती हूँ कि हमारा चाहना कितना झूठा होता है । हम लाग न जान क्या क्या चाहा करते हैं ! कोई सीमा होती है हमार चाहने की ? ससार की हर अच्छी चीज को चाहने की स्कूल क दिनो की कल्पना, वे भावुकता भरे सपन । रमा, उस समय हमे कोई क्या नही राकता कि यह सब झूठ है ? किसी भी लडकी की शादी होती, और म जाकर उसके पति को देखती तो सोचा करती थी कि हि, मेरा पति एसा थोड ही होगा। मेरा पति तो आफसर होगा कही अफसर होगा, किसी बडा कम्पनी का मनजर होगा । हम और वो बस दो ही प्राणी होगे, ये किल बिल किल बिल सास देवर भाभी भतीजे कुछ नही होगे । खूब लम्बी चौडी, एकदम नये ढग की कोठी होगी । जहा भी कोई फर्नीचर अच्छा लगता उस अपनी कल्पना की कोठी मे सजा लेती, रग रोगन, पालिश परद, चारो तरफ सदाबहार मेहदी का लाइनो म कही लान लग होत कही टनिस या बडमिटन कोट होता। तीन-चार नौकर । सुबह ये मुझ बड प्रम से उठायेंगे, मेरी देर से सोन की आदत पर बुरा भला कहग । चाय पीते-पीते, हँसते, अखबार पढत पढते सारा समय निकल जाया करगा । इनके दफ्तर जाने के बाद बडी मुश्किल से मेरा समय कट पाया करगा । किसा पडोसिन के यहाँ चली जाया करूँगी या उस बुला लिया करूँगी । फिर शाम को हम रोज किसी सिनमा या किसी दोस्त के यहाँ चले जाया करगे एसी ही और भी जान क्या-क्या बातें थी जिनम डूबा रहती थी । अब तो सब याद भी नही आती

लेकिन रमा कल्पनाएँ हा सच हो जाया करती तो फिर कहना ही क्या है ! हमारी हर हँसी पर भाग्य दाँत पीसता है । हम रोन हैं तो वह खिलखिलाता है । वह जानता है कि कटपुतलिया की तरह उछल-कूद हम चाहे जितना लें, डोरियाँ तो उन्ही हाथो म हैं जो दया-माया नही जानत । कविता म बालू तो कहूँगी कि उन सभी बचपने के सपना के दीये आज समय के विपले कुएँ म घुट-घुटकर बुझ गए हैं और तडफडाते

घुग्रो के भयकर साँप इधर-से-उधर मँडरा रहे हैं। साँपो से पहले भले ही डरा करती होऊँ, अब तो रमा डर भी नही लगता। चाहती हूँ कोई मुझे डस ले। नयी-नयी मुसीबतो की सूरतें देखकर अब तो सिहरन तक नही होती। लगता है हृदय जमकर पत्थर हो गया है। और रमा, अगर यह नही होता तो बताओ, कैसे बची रहती? अब तक या तो विष खा लेती या कुएँ मे कूद मरती।

देखो न अपनी-ही अपनी बातें लिखती चली जा रही हूँ। यह भी नही सोच रही कि तुम ऊब रही होगी। लेकिन अपना भी मैंने लिखा क्या है? मै जानती हूँ कि अगर अपना जरा लिखूगी भी तो यह पत्र तुम तक नही पहुच पाएगा। इससे ज्यादा नही लिख सकती। मै प्रार्थना करती हूँ इसमे क्यो पूछना भी मत। तुमसे मिलने को तुमसे मिलकर रोने को तुम्हारी गोद मे लिपटकर अपने दिल की सारी बातें कह डालने को कितनी कितनी तडपन करती है कैसे बताऊँ? देखें अब ईश्वर कब मिलाता है।

सदैव तुम्हारी ही
प्रभा

पत्र समाप्त हो गया और उसे कितनी देर हाथ मे लिये खडा रहा, मुझे नही मालूम। पता तब लगा जब अचानक हाथ की पकड ढीली हो जाने से वह नीचे गिर पडा। चौंककर उसे यथास्थान रखा। सन्दूक बन्द किया तो लगा जैसे किसी जिन्दा जीव को मारकर गाड रहा हूँ। भर आईं आँखें पोंछी। प्रभा मेरी प्रभा तुम नहीं जानतीं यही स्वप्न तो मेरे भी हैं यही सब तो मैं भी सोचा करता था। अगर अपने होने वाले पति के बारे मे तुम तरह-तरह की कल्पनाएँ किया करती थी तो क्या मैंने रात रात जागकर अपनी नींदें नही खराब की कि अपने भविष्य का मैं कैसा बनाऊँगा? तुम्हारे सपने घुट घुटकर मर गए तो मेरा भविष्य भी क्या गिरकर चकनाचूर नही हो गया? लेकिन मैं किसे कोसूँ? तुम तो मेरा क्या दोगी, भाग्य को कोसोगी और भीतर-ही भीतर घुलोगी,

चुप रहोगी—लेकिन मैं भी यही करूँगा तो कैसा होगा ? कैसे होगा ?

मगर फिर भी मुझे जाने क्यों लगता रहा कि मेरी आत्मा पर एक हत्या का पाप लदा है, कॉलर की तरह पंजे गड़ाए कुछ चिपका है। चौखट के सहारे खड़ा रहा बड़ी देर मैं अपना माथा किवाड़ों पर ठोकता रहा। धीरे धीरे सामने ऊँचे ऊँचे मकानों के पीछे सूरज का बड़ा सा गोला उतरता चला जा रहा था। शहर का कोलाहल खूब बढ़ गया था और दो-चार पतंगें आसमान में मँडरा रही थीं कौवे लाइन बनाकर सूरज की ओर चले जा रहे थे।

उस रात मैंने प्रभा से पूछा अच्छा प्रभा तुम बताओ तुम क्या चाहती हो ? ईमानदारी से बताना, मुझे बहकाने की कोशिश मत करना। मैं आगे भी पढ़ूँ या नौकरी कर लूँ ? और मुझे उस अनजान व्यक्ति का स्मरण हो आया।

प्रभा ने गहरी साँस ली मैं जो कुछ चाहती हूँ वही सब कुछ हो सकता है ? अपनी स्थिति भी तो देखनी होती है। लेकिन मेरे मन से पूछो तो मैं तो चाहती हूँ कि तुम खूब पढ़ो कम से कम एम० ए० कर लो।

फिर ? मैंने उत्सुकता से अगला विचार जानने चाहे। शायद वह पत्र की भाषा दुहराए।

फिर क्या ? तब कहीं प्रोफेसर हो जाना कोई अच्छी सी नौकरी कर लेना।

लेकिन तब तक घर का क्या होगा ? तुम्हें विश्वास है कि एम० ए० पास करने तक इस चख चख में मैं जिन्दा बचा रहूँगा ?

लेकिन अभी से तुम्हें कोई ऐसी नौकरी मिली जाती है कि घर वालों के दलिद्दर दूर कर दो। प्रभा बोली। उसका मुँह भन्नाया आया और मुझे तो दोष देना मत जो तुम्हारे जी में आये सो करो।

'दोष देने की बात नहीं प्रभा मैं क्या कुछ नहीं जानता कि बिना

डिग्री अच्छी नौकरी पाना कितना मुश्किल है। एम० ए० तो मुझे किसी-न किसी हालत में करना ही है। चाहे नौकरी के साथ-साथ कुछ और भी क्यों न करना पड़े। हाँ थोड़ा कष्ट जरूर हम लोगों को सहना पड़ेगा।'

"कष्ट का अब कौनसे गलीचों पर पड़े-पड़े सुख भोग रहे हैं?" समझकर उसने कहा, "थोड़ा और सही।"

"सच प्रभा, मैं सब कर लूंगा तुम मुझे हिम्मत बँधाती चलो। मैं दुनिया के सब काम कर लूंगा। जिन्दगी में बड़ा अकेला रहा हूँ बड़ा निराशावादी रहा हूँ। कभी किसी ने प्रोत्साहन और प्यार का एक शब्द नहीं बोला। अगर तुम मेरी शक्ति और प्रेरणा बन सको तो मैं अपने और तुम्हारे सारे सपने साकार कर लूंगा। भावुकता के आवेग में मेरी आँखों में आँसू भर आए।

"मैंने तो कभी भी नहीं सोचा था कि तुम्हारे पैरों की बेड़ी बनकर आऊँगी। जब भी तुम पाओ कि मैं तुम्हें पीछे घसीट रही हूँ तो निर्मम होकर पाँव की बाधा की तरह मुझे छोड़कर अपने को अलग कर लेना। मेरी चीख-पुकारों पर ध्यान मत देना।' बाहर से झाँकती चाँदनी में उसकी आँखों की पारियाँ चमकने लगीं।

मैंने अब जरा व्यावहारिक होकर कहा, "ना प्रभा हमारा सबसे पहला निश्चय यही है कि इस घर में हम कोई चाल नहीं लेंगे, कोई भी चीज। कल मैं और भी जोर से नौकरी तलाश करूँगा। थोड़ी माँगी थी तो आज अम्मा और बाबूजी की बातें सुना।

'हूँ छोड़ो। वे बेचारे भी क्या करें?' प्रभा ने बात टाल दी।

"बात करें बस नहीं। मामी के लिए बस निकल आती है? मुझे गुस्सा आ गया। 'इसीलिए तो न कि मामी के पति के बल पर सारा घर चलता है। लेकिन इस बात का भी तो साफ नहीं कहते। सारे बेटों के प्रति समान भाव की बात फिर क्यों की जाती है? सर जी हमें तो अब कुछ लेना ही नहीं है।'

लेने को अब कौनसा मिला जाता है? मौन पर तो मिलता नहीं

है, वमे ता

'सच कहूँ प्रभा आज मैं बहुत ही निराश हो गया था। अगर तू नहा होती ता पता नही घर आता भी या नही,' आवेश म मने कहा। उसके सार शरीर को बाँहा म भीच लिया। मुग्ध मयूरी-मे उसके खुले नयनो के आकाश म विभोर खुमारी के बादल घिर आए और मेरी थकानें और निराशाएँ प्यार की शीतल पुहारा म घुलसन लगी।

चार

एम्प्लायमट ऐक्सचेंज के बाहर जिन सज्जन से भट हुई थी, उनकी बात मन प्रभा को भी बतायी। उनकी कही हुई बातें लगातार मरे दिमाग म कौंधती रही। मुझ उनके बात करन का ढग, आतम विश्वास भरा लहजा और शाम सभी-कुछ अब इतने अच्छे लग थ कि मन-हा मन म अफसोस करने लगा—उनस जान-पहचान क्यो नही कर ली? शायद इस लिए कि मर दद को उनके शब्दा का सहारा मिला था। लेकिन उनस फिर दुबारा, इतनी जल्दी भट हो जाएगी यह उस समय नहा सोचा था। या आँखें उन्ह आते-जात खोज निकालन को बचन रहती ही थी।

मुझे देखते ही दिवाकर बोला इस कहते हैं बडी उम्र वाला शतान! यानी जो याद करते ही आ टपके उसे अग्रजी म शतान कहते हैं और भारत म उस बडी उम्र वाला समझा जाता है। तुम अपन आपको किस कटघरे म रखना पसन्द करोग?

फीकी मुस्कान के साथ बठक म प्रवेश करत हुए मैंन कहा, जिसम तुम्हारी इच्छा हा।" लेकिन आरामकुरसी पर बठ एक दूसरे सज्जन को दखकर मैं सकुचा गया। अपन आधे शरीर को उन्होंने सामने लम्बा

थोड़ा अखबार तानकर छिपा रखा था। मन हाथ के इशारे से पूछा—कौन है?

'सुनिए अखबार तो यहीं रहेगा न। आइए अपने दोस्त से आपका परिचय कराएँ। दिवाकर ने उनका अखबार पकड़कर खींचते हुए कहा। नये व्यक्ति के आने पर भी यों लीन होकर अखबार पढ़ते रहना मुझे उनकी असभ्यता लगी।

अखबार हटते ही जब एक कमसिन-सी सूरत बाहर आई तो मैं चौंककर उछल-सा पड़ा 'अरे, आप?

उन्होंने निहायत इत्मीनान से अखबार एक तरफ समेटकर रखते हुए कहा, 'जी मैं वही हूँ। दिवाकर आपका इतना बातें करना रहता है कि उस दिन दर्शन ही लगा, कहीं आप वह न हों। इरादा था कि यह परिचय कराए उससे पहले खुद ही परिचय कर लूँ। उस दिन कष्ट न आ रहा था तो लगा शायद आप ही हों।

'सचमुच, मैं तो बाद में अनुमान करता रहा कि आपने परिचय क्यों नहीं किया। उस दिन आपकी बातों ने मुझे इतना ज्यादा 'मर भीतर कृतज्ञता-जैसा कुछ उमड़ता लगा था उसे रोककर मैं बोला। अगली बात वहीं तोड़ दी।

दिवाकर ने निराशा से दोनों हाथों को झटका, "अब क्या परिचय कराएँ? आप सोते पहले कहाँ मिल लिए, भाई? अच्छा खैर समय में इन्हीं के बारे में बता रहा था। यही हमारे गिरीश भाई साहब हैं। ये कह तो रहे थे कि शायद वहीं तुम्हें लगा है या मिल आए हैं, लेकिन मैंने बताया कि उसका तो तीन दिन से कोई पता ही नहीं है। पुलिस खोजती फिर रही है।

उसके मजाक की तरफ ध्यान न देकर मैंने कृतज्ञता से कहा "अगर मुझे अब पता होता कि आप ही गिरीश भाई साहब हैं तो '

बात को बीच में काटकर वे बोले, 'तो क्या मारने पीटने का इरादा था?' और वे खिलखिलाकर हँस पड़े। अच्छा खैर ये सारी बातें छोड़िए,

और आराम से बैठिए। मुझे यहाँ आये दो तीन दिन हो गए। आया हूँ तभी से आपकी राह देख रहा हूँ।"

'मुझे तो ऐसे ही एक जरूरी काम में फँस जाना पड़ा,' मैंने माफी माँगने के लहजे में कहा। फिर पूछा, 'आप यहाँ किसी काम से या ?"

'हाँ, काम से ही समझिए। यों बहन को लाया था। उन्होंने दिवाकर की ओर देखा। वे तहमद और बनियान पहने थे कन्धे पर तौलिया था। शायद नहाने जाने को थे।

'माताजी से मिलाने लाये होंगे ?' मैंने बिना किसी विशेष उद्देश्य के पूछा।

नहीं मिलाने तो नहीं लाया। इस बार वे सुस्त होकर अपने में खो गए 'पर हाँ, मिलाने ही समझिए क्यों दिवाकर, तुमने नहीं बताया इन्हें ? भई समर साहब, बात कुछ यों है कि हमारी बहन को पहले हिस्टीरिया के दौरे आते थे, फिर अचानक वह एकदम पागलों जैसी हरकतें करने लगी—कई उन दौरों का समय बढ़ता चला गया। डाक्टर ने बताया कि जल्दी-से-जल्दी किसी मण्टल-हॉस्पिटल में दाखिल न किया गया तो केस काफी खराब हो जाएगा। परसों उसे भरती करके आए हैं।"

तुम होते तो तुम्हें भी छोड़ आते' बीच में दिवाकर ने कहा।

मुझे उस पर झुंझलाहट आने लगी। इतनी गम्भीर बात में भी उसे मजाक ही सूझ रहा है। फिर और भी ध्यान से उनकी तरफ मुखातिब होकर कहा 'हिस्टीरिया के दौरे क्यों आने लगे, इसके बारे में डाक्टरों ने कुछ नहीं बताया ?

"इसके बारे में डाक्टर क्या बताएँगे ? गिरीश बाबू, 'यह तो हमेशा ही मानसिक परेशानियों, बहुत अधिक चिन्ताओं और नर्वस दबाव में आने लगते हैं। या डाक्टर के पास जाओ तो कुछ-न-कुछ बताएगा ही, लेकिन असली कारण हम जानते हैं। वे कुछ देर चुप रहकर चिन्तित

भाव से अपने पंजों को उँगलियों आपस में फँसाकर उन्हें चटखाने रहे। फिर अपने आप से बोले 'और सोचा जाए तो बात कुछ ऐसी खास नयी भी नहीं है, लेकिन उनकी समझ में आती ही नहीं। क्या किया जाए? गलती हमारे घरवालों की हो थी। उसकी शादी कर दी छोटी सी उम्र में। मुश्किल से तब वह होगी ग्यारह-बारह साल की। पतिदेव उस समय पढ़ रहे थे। जब उन्होंने पढ़ाई पूरी की तो अचानक इलहाम हुआ कि पत्नी अशिक्षिता है और उसके साथ उनका निभाव नहीं हो सकता। मां तब से एक तरह से छोड़ ही रखा है। मैं अपने साथ ही रखना था सो दिन रात पीछे लग-लगाकर मैट्रिक तो करा दिया। लेकिन कमबख्त सोचती इतना है कि कुछ न पूछिए। अगर यह रोग न लगा लेती तो इस साल इण्टर कर लेती। मैं उसे खूब समझाता हूँ कि तुझे फ्रिक्र क्या है? किसी की सुनती ही नहीं। रात को सात-सात बजे तक सोती है। बात कहते-कहते बहन के दुख से उनका गला भर्रा आया। वे मुंह मोड़कर अखबार के पन्ने टांक में लगाने लगे।

'हूँ' मैंने गम्भीरता से कहा। मुझे लगा जैसे वे मुझी को बात बता रहे हों। कुछ देर बाद पूछा, "तब तो आपको हर बार यहाँ आना पड़ेगा?

जी हाँ महीने में दो-तीन बार तो आना ही पड़ेगा। बड़ी परेशानी है।' वे निहायत ही थके स्वर में बोले 'मैं तो राह देख रहा हूँ कि हिन्दू कोड बिल पास करके या बस हो ये नेता लोग एकाध कानून बना दें तो तलाक दिलाकर कहीं और शादी कर-करा दूं। न सही साल, एक बेकार का पुछल्ला तो होगा। लेकिन यह अपने वोटों की पड़ी है। घर वाले तो सब विरोध में हैं मगर मुझसे यों मरते नहीं देखा जाता।

यों मरते हुए तो बहन को सचमुच ही नहीं देखा जा सकता, लेकिन उनका प्लान तलाक ही यह मेरी समझ में नहीं आया। पूछा, 'आप तलाक या पिता की सम्पत्ति में पुत्री के भी बराबरी के हिस्से के पक्ष में हैं?

बहुत आश्वस्त और अन्तिम निर्णय के स्वर में वे बोले, "एकदम ।

"लेकिन इसमें हमारे सारे समाज का ढाँचा चरमरा जाएगा," मैंने चिंता से कहा।

"किस समाज का मैं समझा नहीं ?" उन्होंने आश्चर्य से पूछा।

"हमारे हिंदू समाज का" मैंने साहस करके कहा। चारों तरफ भयानक गड़बड़ी फैल जाएगी। शादी विवाह-जैसी पवित्र चीज़ को लोग मन बहलाव का एक साधन बना लेंगे, नो दिन शादी को और फिर तलाक हो गया। गुड्डे गुड़ियों का खेल हो जाएगा। सम्पत्ति के बटवारे को लेकर या तो बहनोई और भाइयों में झगड़े होंगे या बहन और भाई लड़ेंगे। तब भाई-बहन के सम्बन्ध प्रेम के कहाँ रह जाएँगे ? मैंने दिवाकर की ओर देखा कि शायद वह भी मेरी तरफ से कुछ सहारा दे। इन विषयों पर हम लोग घण्टों पार्क में लड़े हैं।

किस तरह का प्रेम ? इस बार उनके पूछने के ढंग से ही मैं जान गया कि वे जान बूझकर अनजान बन रहे हैं। शायद मेरी सारी बातें समझकर उनका जवाब देने के लिए।

'इस तरह का प्रेम कि आप अपनी बहन का इलाज कराने को इतने हैरान-परेशान हैं यहाँ लाए हैं और हर आठवें दसवें दिन आएँगे मैंने अपनी बात का ज़ोर देकर कहा, क्योंकि आपके मन में उसके लिए अब दया है, प्यार है। यह कानूनी या शास्त्रीय बन्धन नहीं, आपके मन की माँग है आपकी इच्छा है। कल जब यही बहन आपसे बराबर का हिस्सा माँगेगी तो आप उसके लिए यह दया और प्यार रख पाएँगे ? तब आपके मन में न चाहते हुए भी उसके लिए एक द्वेष होगा।

महाशय इतनी देर सुनने के बाद कुछ कड़े स्वर में उन्होंने कहा पता नहीं आप इस सबको किन निगाहों से देखते हैं। मगर मैं तो समझता हूँ कि वह युग तब भी इससे अच्छा होगा। अब आपके मन में अपनी बहन के लिए दया या प्रेम है। यह न तो कानूनी बन्धन है न

बाहरी सामाजिक दबाव। आप दया न भी करें, जरा-सा बेरहम हो जाएँ तो वह बेचारी कुछ नहीं कर सकती। रोयेगी, दो-एक आदमियों से शिकायतें करेगी और अपनी किस्मत को कोसेगी। इससे उसे आपकी इच्छा पर जीने को तो नहीं मजबूर होना पड़ेगा। द्वेष और प्यार आपकी इच्छा पर होंगे। वह आपकी कृपा के टुकड़ों पर तो नहीं जिये-मरेगी। जब दो भाइयों का सम्पत्ति में बराबर का हिस्सा होना है तब उनमें लड़ाइयाँ नहीं होतीं? लेकिन दोनों अपना अपना हिस्सा लेकर अपनी अलग अलग जिन्दगियाँ शुरू कर देते हैं। दूसरे भाई का हिस्सा देना कानून पर न होकर आपकी इच्छा पर ही होता तो आपकी इच्छा होती आप उसे हिस्सा देते न होती तो उसे राह का भिखारी बना देते।'

इस तर्क में मैं बोलता गया। इन सब पक्षों में तो मैंने इसे कभी सोचा ही नहीं था। फिर भी हिम्मत करके बोला 'स्थिति जो भी हो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इस तरह के नियमों में बड़ी गड़बड़ी फैल जाएगी। समाज को चलाए रखने के लिए पुराने लोगों ने बहुत सोच-समझकर जो नियम बनाए हैं वे सब उलट-पुलट हो जाएँगे।"

तो फिर' वे शान्त भाव से बोले 'हो जाएँ, इसमें क्या होना है?

मैं उनके इन छोटे छोटे निर्द्विग्न भाव से किये गए प्रश्नों से डरने लगा था। खूब सचेत होकर कि कहीं कोई उलटा-सीधा जवाब न दे जाऊँ बोला इससे अपने यहाँ की सती और आर्य नारियों की उज्ज्वल परम्परा एकदम लुप्त हो जाएगी। विवाह का आधार या तो स्वार्थ रह जाएगा या वासना का आवेग।

माफ कीजिए समर भाई,' वे उसी स्वर में बोले,' मुझे दिवाकर ने बताया था कि आप काफ़ी सोचने-मनन करने वाले व्यक्ति हैं। लेकिन देख रहा हूँ कि सोचना दो तरह का होता है। एक होता है हर चीज को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर जाँचना और दूसरा होता है भावनाओं के आवेग में घुटना। बुरा मत मानिए, मुझे तो आप दूसरी तरह

के प्राणी लगते हैं। उन्होंने दो उँगलियां में अखबार उठाकर कहा आप समाज में गड़बड़ी की बात कहते हैं। ज़रा सी आँख खोलकर देखिए न कौनसा व्यवस्था और सुंदरता आपको दिखायी देती है? यह आज का अखबार है लखनऊ ज़िले में पाच हज़ार भले घरों की स्त्रियों ने तलाक के लिए प्रार्थना पत्र दिये हैं। इन सबको एक साथ शौक चर्राया है या, आपके खयाल से ये सब वासना से उन्मत्त हो रही हैं? दो स्त्रियाँ जलकर मर गइ, चार कुएँ में गिर गइ आठ भाग गइ या टी० बी० में मर गइ, ये सारी बातें हम लोगों के लिए इतनी स्वाभाविक हो गई है कि उन्हें हम या ही टाल देते हैं। ये कहीं भी हम नहीं छूती। मुझे भी तो बताइए न किस सुव्यवस्था की बात आप कर रहे हैं? मैं आपके घर की बातें तो नहीं जानता लेकिन मुझे एक घर बताइए जहाँ नारी मजबूरियों में घुट नहीं रही। मैं शिक्षिता और साहसी औरतों की बात नहीं कह रहा। वहाँ भी समस्याएँ हैं लेकिन वे दूसरी तरह की हैं।'

वे बोलते रहे और कभी मेरे सामने मुन्नी की और कभी प्रभा की तस्वीर आती रही। लगता था जैसे ये सारी बातें केवल उन दोनों को ही ध्यान में रखकर कही जा रही हैं सिर्फ मेरे लिए ही कही जा रही हैं।

'मजबूरी में घुल घुल और घुट घुटकर मरने को भारतीय नारी की सहनशीलता का नाम दे देकर मत पूछिए। करोड़ों व्यक्तियों के हज़ारों सालों के इतिहास से निकाले गए दो नाम सीता और सावित्री! मैं पूछता हूँ सीता का नाम लेते समय हमारा माथा शर्म से झुक नहीं जाता? निर्दोष नारी के कितने बड़े बलंक और कितनी अमानुषिक यातना को हम लोग झंडों पर काढ़कर पूजते हैं?

उनकी इस बात से मेरा मुँह तमतमा आया। मुझे लगा जैसे उन्होंने भरे बाज़ार मुझे गाली दे दी हो। हमारे ऋषि मुनियों के बनाए सारे धर्म नियम आपकी निगाह में बेकार हैं?'

जहाँ तक उन्हें संग्रहालय या म्यूज़ियम में रखने का सवाल है, मैं मानता हूँ कि उनके लिए खूबसूरत काँच की आलमारियाँ होनी चाहिएँ

लेकिन अगर उन्हें आप आज के समाज के कानूनों के रूप में लादना चाहें तो मैं कहूँगा कि उन्हें चूल्हे में रखकर चाय बनाइए और ज़ोर से कहकहा लगाकर खुश होइए कि आपने कन्धों पर लद और गरदन में दाँत गड़ाते भालू का उतार फेंका। मेरी उत्तेजना का आनन्द लेते हुए वे जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर माचिस खोजने लगे।

उनके द्वारा अपने लिए पेश की गई सिगरेट को मना करके मैं गौर से उनके चेहरे की तरफ़ देखने लगा—इनकी बहन की तरह इनका दिमाग़ भी तो नहीं चल गया? वे धुएँ भरी फूँक में जलती तीली को बुझाते रहे और मैं सोचता रहा कि उनके सिर को अगर दीवार से दे मारा जाए तो निकलता हुआ धुआँ कैसा लगे? ज़बरदस्ती अपने को बस में रखकर मैंने पूछा 'आप अपने हिन्दू धर्म को संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म नहीं मानते?

वे फिर होंठ टेढ़े करके मुस्कराए देखता हूँ आप बदलती हुई दुनिया से काफ़ी दूर हैं। श्रीमान् समरजी आपकी इस संघ वाली भाषा को अरब सागर के पार कोई नहीं जानता। दुनिया एटम और हाइड्रोजन बम बनाती है और आप अपनी 'गोबर-संस्कृति' को लिये रोते हैं। इस तरह की दम्भ भरी बातों से पहले आपने कभी दूसरी सभ्यताओं और संस्कृतियों को जाँचने की कोशिश की? पुराने खण्डहर और पोथी की पुरानी किताबें रोम और मिस्र के पास भी कम नहीं हैं। चीन की सभ्यता ने संसार को जो कुछ दिया है उसका आधा भी तो किसी और ने नहीं दिया। ईसाइयों को आप चाहे जितनी गालियाँ दें, कि वे लोगों का धर्म बदलते हैं। मगर वे ही हैं जो अनजान लोगों के बीच लाखों मुसीबतें सहकर जाते हैं, स्कूल खोलते हैं अस्पताल खोलते हैं, और अपनी ज़िन्दगियाँ धर्म के नाम पर अर्पित कर देते हैं। आपके यहाँ विश्व-कल्याण की बात करते करते अगर किसी का जी आधा भी गया तो हिमालय में तपस्या करने भाग खड़ा होता है। पैसा हुआ तो साधुओं को पालने के लिए मन्दिरों में जागीरें लगा देता है ग़रीब हुआ तो सिर घुटाकर दूध-मलाई खाने लगता है।

'आप सिर्फ उसका एक पक्ष देख रहे हैं गिरीश भाई,' मैं बोला।

'एक या दो मैं नहीं जानता। मैं तो वही पक्ष देख रहा हूँ जो हमारे सामने है या जिसके आज हम सब शिकार हैं। आपके यहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं और सोने की वर्षा होती थी लेकिन आज आप संसार की सबसे जाहिल कौम हैं। आपका धर्म सबसे ज्यादा अवैज्ञानिक धर्म है। आदमी की बुद्धि के सारे विकास को भूलकर जो धर्म अव्यावहारिक बातों को जीवन का लक्ष्य बनाता रहे समार के सारे ज्ञान विज्ञान को वेदों में खोजता रहे वह सचमुच दयनीय है। लखनऊ के इक्के चलाने वाले नवाबों का ध्यान आता है मुझे तो ये सारी बातें सुन-सुनकर।' और वे अपनी ही बात पर जोर से हँस पड़े।

मैंने कोशिश करके कहा इन बाहरी चीजों पर अपने को केन्द्रित करना कभी हमारा लक्ष्य ही नहीं रहा। इसलिए हमने न कभी दूसरे देशों पर हमले किये न धर्म का संसार में फैलाने के लिए जिहाद बोले। हमारा लक्ष्य तो हमेशा ही आध्यात्मिक शांति और उन्नति रहा।'

और इस बार सिगरेट पीना बीच में छोड़कर वे 'हो हो' करके हँस पड़े। 'क्या सुंदर शब्द-जाल है अपनी लाचारी छिपाने का! इसे ही तो लोग गरीबी को पूजना कहते हैं। बाहर हमले न करने का कारण कोई दार्शनिक आधार हो ऐसा नहीं बल्कि सचाई यह है कि आपके पास ताकत नहीं थी। वरना आपस में लड़ने और एक-दूसरे का राज्य हड़पने में आप भी कभी पीछे नहीं रहे। और जिन अशोक और कनिष्क के पास ताकत थी उन्होंने बाहर वालों पर कृपा कर दी हो, ऐसा भी नहीं है। फिर बीच में ही अपनी बात तोड़कर बोले, मैं न तो पुराने इतिहास की बात करता हूँ, न हवाई बातें, मैं तो सीधी बात पूछता हूँ, आज आप अपने देश के किसी भी आदमी को पकड़कर पूछिए उसके मन में कितनी आध्यात्मिक शांति है। आध्यात्मिक शांति सिर्फ दान ट्रस्टों और धर्म के रुपये में दूध मलाई उड़ाने वालों में होती है।

मेरा मन झुलबुलाने लगा—ऐसा कौनसा सवाल पूछूँ कि इस आदमी

की यह कतरनी-सी जबान बन्द हो जाए। अचानक ही मैंने पूछा 'संसार की उत्पत्ति कब हुई ?'

वे फिर जोर-जोर से हँसने लगे, आप तो पुराने ऋषि मुनियों की तरह शास्त्रार्थ करने लगे। संसार की उत्पत्ति तो बड़े सीधे ढंग से हुई थी—ब्रह्मा ने सोचा मैं अकेला हूँ मुझसे नहीं रहा जाता, अब अनेक हो जाऊँ। और उसने अपने गुणों का प्रसार कर लिया। तब प्रकृति आ गई या खुदा ने कुन' कहा और दुनिया हो गई। इसमें इतनी क्या दिक्कत है ?" फिर नाक से धुआँ निकालते हुए सिगरेट को खुले दरवाजे से बाहर फेंका और मुस्कराए 'समरजी मैं नहीं कहता कि आज के वैज्ञानिक संसार की उत्पत्ति का जो भी रूप या प्रारम्भ बताते हैं, वही अन्तिम सत्य है, लेकिन इन सारे गपोड़ों में पड़ना ज्यादा सही नहीं लगता। फिर भाई ज्ञान का तो कभी अन्त होता है ? जैसे-जैसे हम और जानेंगे हमारी जानकारी बढ़ती जाएगी।" फिर उठकर शरीर तोड़ते हुए कहा 'हम लोग भी क्या हैं मिलते ही दुनिया के भूत और भविष्य की चिन्ता ले बैठे। पहले और अब के इस उदाहरण से आपने यह तो नहीं समझ लिया कि मैं बहुत ही बातूनी आदमी हूँ '

नहीं-नहीं, आपसे तो मुझे बहुत सोचने और जाँचने का मसाला मिला' मन झेंपकर कहा।

'तब तो आप सच्चे हिन्दू हैं। सच्चा हिन्दू सोचता और जाँचता कुछ नहीं वह तो चाहे आध्यात्मिक ज्ञान हो या रिन्दन और ब्लैक का रामा, सबको ग्रहण करना जानता है। खैर, मेरी कोई बात आपको ज्यादा बुरी लग गई हो तो माफ कीजिए। बहस करते समय मुझे ध्यान नहीं रहता। जो भी ठीक समझता हूँ कह देता हूँ।

यही तो होना चाहिए,' मैंने कहा, 'मुझे आपसे बहुत सी चीजों पर बातें करनी हैं

जरूर-जरूर ! अब तो आपसे अक्सर ही भेंट हुआ करेगी तिसिय बात कुछ बातें आपसे माँगूंगा। कुछ बातों पर आप भी दुबारा

सोचना पसन्द करोगे।

मुझसे क्या सीखना ?' मैं लजाकर सकुचित हो उठा। नीचे देखते हुए बोला मुझे तो सभी बातें नयी लगीं, बहुत सी बातें मालूम हुईं।

नहीं-नहीं। मैं तो भाई किसी भी चीज को पूर्ण नहीं मानता। हर चीज विकास करती है इसलिए पूर्ण ज्ञानी कोई नहीं होता। मैं तो ज्ञानी उसे कहता हूँ जिसमें जानने की इच्छा हो। जब तक यह इच्छा है तभी तक वह ज्ञानी है, इसके बाद लाइब्रेरी की किताब और उसमें कोई अन्तर नहीं। आपकी और दिवाकर की परीक्षा तो हो गई न अब आगे क्या करने की सोच रहे हैं ?' वे बड़े भाई की आत्मीयता से बोले।

अब यही समस्या है कि आगे क्या किया जाए ? समझ में नहीं आ रहा। नये आदमी के सामने अपनी परेशानियाँ रोना मुझे कभी भी अच्छा नहीं लगा।

अगर हो सके तो आगे खूब पढ़िए। आप बहुत उन्नति कर सकते हैं वे बोले।

इस बार मैंने पूछा और आजकल आप क्या कर रहे हैं ?

एक बार दिवाकर को देखकर वह कहने लगे मैं तो भाई, सरकारे हिन्द में डेढ़ सौ रुपए का एक क्लर्क हूँ। बड़ी मुश्किल से छुट्टी मिलती है। सो शनिवार को आया करूँगा और रविवार को चला जाया करूँगा। यही सोचता हूँ। मुझे उठता हुए देखकर बोले 'इस बार जब आऊँगा तो आपसे जरूर मुलाकात करूँगा। आज तो जा रहा हूँ नमस्ते।

आपसे मिलकर सचमुच बड़ा अच्छा लगा। अपने से ज्यादा जानने वाले वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इतनी आत्मीयता से मुझसे बातें की थीं। मैं गद्गद् हो आया।

मेरी बात से उनके चेहरे पर स्नेह उमड़ आया। हाथ मिलाकर मैं बाहर आ गया। दिवाकर अभी तक चुपचाप इस तरफ कभी मुझे और कभी उन्हें देख रहा था जैसे दो पहलवानों को देख रहा हो। उसकी हर

दृष्टि से लगता था जैसे बताना चाहता हो, देखा हमारे भाई साहब को! मैंने कहा, 'ज़रा बाहर आओ एक ज़रूरी काम है।'

वह नीचे आ गया। सड़क पर आकर मैंने भारी स्वर में कहा, 'यार हम कहीं नौकरी दिलवाओ न, सच बड़ी परेशानी है। वरना सारा पढ़ना-पढ़ाना रखा रह जाएगा और ज़िन्दगी बकवास करते-करते बीत जाएगी। कुछ दिन तुम्हारे साथ और रह लें।'

मेरे स्वर के अनुनय से या पता नहीं क्यों, वह तपाक् से बोला, अच्छा तुमने पहले क्या नहीं बताया? मैं आज ही बाबूजी से कहूँगा। और भी एकाध जगह ज़िक्र करूँगा।

'हाँ यार, ज़रा काम ऐसा हो कि पढ़ने लिखने को भी थोड़ा समय मिल सके और अपना काम भी चलता रहे। बहुत सीरियसली तलाश करनी है। मैं कातर हो आया।

'अच्छी बात है। तुम चिन्ता मत करो।

उससे विदा लेकर जब आया तो दिमाग़ में जैसे काई बड़ी भारी मथानी चल रही थी। विनोद के उत्तरों ने मुझे इतना चकित नहीं किया था जितना इस बात ने कि कैसी आसानी से हर बात का जवाब उनके पास तैयार रहता है। सचमुच आज तो बहुत सी नयी बातें जानी हैं।

पाँच

दोनों कानों में उँगलियाँ ठूँसकर मैं बाहर चला आया ताकि पीछे से आता एक शब्द भी कानों में न पड़े।

साँझ हो रही थी और गाय बैलों का झुण्ड सारी सड़क के रिक्शे तांगे का एक ओर समेटे धूल उड़ाता, गोबर फैलाता लौट रहा था। मंदिर या संघ में जाने का तो अब कभी ख़याल ही नहीं आता जब उन

सारी चीजो से बहुत-बहुत दूर चला आया हूँ। या जिस व्यक्ति का उन सबस सम्बन्ध था वह कोई दूसरा आदमी था मैं नहा था। सब मुझ बेकार और समय की बरबादी लगत थ। साथ ही लगता था कि आज के समय म लोग कस इतना वक्त बरबाद कर लते हैं।

अपने उसी पाक म आकर चुपचाप पड गया। यही तो विवाह के पहले दिना म आकर लटा करता था। दिन छिपन म अभा काफी देर थी और लाग पतली-पतली सडको और पगडडिया पर इधर से उधर टहलने आ जा रहे थ। उनका चलना और हँसना देखकर लगता था माना इन्ह कोई चिन्ता ही नही है। आया खिलखिलाते बच्चा को गाडियो म घुमाने ले जा रही थी। कभी-कभी कोई युवक और युवता आपस मे घुल मिल और हँस हँसकर बातें करते चले जात तो पास के लान मे निर्निमष खुली आखा स उन्हे देखना मैं मन ही मन दात किटकिटाया करता 'साल कस निकल आए ह जम इन्ह खाने-पीने की कोई चिन्ता ही न हो। बाप कमाकर रख गया होगा। घर म दाना वक्त चख चख होती होगी, लकिन घूमने इस तरह चले आए है जसे सिनमा दखन निकल हो। उल्लू के पटठ! इन लागा का कोई काम नही रह गया और?' और अपनी इस विचित्र कुढली आदत पर क्रोध भी आया और हँसी भी। मुझे हो क्या गया है यह? दूसरा की हसी खुशी भी नही दख सकता? लेकिन मैं जस अफाम के नशे म निस्पन्द और निश्चष्ट पडा पडा इधर उधर देखता रहा मानो असहाय और बीमार पडा हू और उठा नही जा रहा। अध खुली आँखो स चारा ओर दखता रहा वह लडके क्रिकट खेल रह हैं। वे दो लडके साइकिल पर लद चले जा रह हैं। वह आदमी झूम झूम कर किताब पढ रहा है वे चार लडकियाँ चोटियाँ झुलाती चहलकदमी कर रही हैं। वह लडका पिल्ले क पीछे भाग रहा है। ला फिर यह एक और जाना आया लगता था जस किसी दूसर लोक स सब-कुछ देख-सुन रहा हूँ। बस घर स आती आवाजें माना यहाँ तक पीछा करती चली आ रहा था उफ वह घर है? काश बुलबुलाता नरक है नरक!

'रोटियों में आज घी क्या नहीं लगा रही, भाभी ?' थाली परोसकर जैसे ही प्रभा ने समर के सामने सरकाई समर रोटियों की सूरत देखते ही तुनक उठा।

'घी खतम हो गया लालाजी !' प्रभा ने मुलायम स्वर में बताया।

'अभी कल-परसों ही तो सेर भर लाया था, खतम भी हो गया ?' उसने तेज होकर पूछा।

'था ही कितना ?' प्रभा काम में लगी रही, इसलिए बिना ध्यान दिये ही बोली, 'अब तुम खा तो रहे ही हो। घर में ही काम आ रहा है।"

समर को यह शब्द अपनी उपेक्षा लगी। उसने उद्धत भाव से कहा, 'यों क्या नहीं कहता कि मेरा अपना खसम का चटा लिया ? घर का नाम क्यों लेती हो ? हम दीखता नहीं है घर में किसी का मिले या न मिले, लेकिन समर भैया की दाल में खूब घी डाला जाएगा रोटियों खूब चुपड़ी जाएँगी। बस हमारे लिए '

'क्या है, समर ?' मैं चौंक पड़ा। उसे यह नहीं मालूम था कि मैं पौधों में बैठा-बैठा दूना पर पानी कर रहा हूँ। मैं बिनगारी निकालती आँखों से उसे या ही घूरता हुआ एक हाथ में बाल्टी और एक हाथ में दूना लिये रसोई में आ खड़ा हुआ।

मुझे देखते ही वह सकपकाकर चुप हो गया, रोटी के बहुत छोटे छोटे कौर चुगने लगा।

वह बैठा था। मैंने एक जोर की लात उसकी पीठ पर मारी और कहा 'बेशरम, बात करने की तमीज नहीं है ? लगाम मुँह में है या नहीं ? या जी में आया सो बक दिया ? मैट्रिक में पढ़ते हैं ये !

पिटकर उसने एक बार मेरी ओर देखा और थाली फेंककर एकदम भन्नाया हुआ हनहनाता बाहर भाग गया। वहाँ गला फाड़ फाड़कर रोने लगा।

प्रभा ने रोटियाँ बनाना छोड़ मटके में गरदन मोड़कर मुझे

घूरा 'तुम वहाँ बैठे-बैठे सारी बातें सुनते रहते हो ? बड़े आये हिमायत लेने वाले ? जाओ यहाँ से बाहर ! जूता लिये चौके में चले आए '

मैंने गला फाड़कर कहा 'चुप रहो। इतना बड़ा हो गया इसे बात करने का कायदा नहीं आता।

तभी मारा दम लगाकर अम्मा वहीं अपनी चारपाई से चीखी, 'क्यों रे समर के बच्चे इधर तो आ जरा ! बस तेरी ही वो बहू लगती है, किसी और की कुछ नहीं लगती ?

जूता पीछे में फेंका और मैं घड़घड़ाता हुआ अम्मा के सामने जा पहुँचा। दूसरी ओर खड़ा-खड़ा अमर रो रहा था।

क्या रे खाना खाते हुए इसे क्यों मारा तूने ? माला का अन्तिम दाना आँखों से लगाकर अम्मा बोली तेरा हाथ बहुत उठ गया होगा ! तेरे मन में क्या है बाबा तू हम साफ-साफ क्यों नहीं बता देता ?

हाथ उठने की क्या बात है ? मैंने भी खूब गला फाड़कर कहा यह अपने से बड़ा से कायदे से नहीं बोल सकता ?

मैंने क्या बदतमीजी से बात कही बताना तो ? अमर उद्दण्डता और हेकड़ी से बोला। 'इतना ही तो पूछा था कि परसों ही तो सेर भर घी लाया था इतनी जल्दी कैसे खतम हो गया ?'

सामने ही-सामने झूठ बोलता है ! अम्मा की सखी में बहुत ज्यादा मत रहना अमर ! मैं अभी तो गया भी नहीं हूँ। मैं एक हाथ में ग्रास लेकर उस पर झपटा।

खबरदार जो लड़के पर हाथ उठाया ! अम्मा ने गरजकर डाँटा, अभी तो मैं जिन्दा हूँ। देखती हूँ मेरे रहते कैसे उसकी तरफ टेढ़ी नजर से देखता है ! अब तो तुम हम सब दुश्मन लगते ही होगे। हम तो तेरे इन लक्षणों को पहले ही जानते थे। देखा कोई उस काले सिर वाली के लिए भाई पर हाथ उठा रहा है। अरे मैं पूछती हूँ तुझे शरम नहीं आ रही जो तू उसे शरम की सीख दे रहा है ? किस मुँह से यह सब कह रहा है ? अच्छा तू बोलने लगा अपनी फूलदे रानी से, तूने तो सारा

आसमान सिर पर उठा लिया। रोज एक-न एक उपद्रव, रोज एक-न-एक ऊधम! इनसे अच्छा तो जब बोलता नहीं था तभी था।"

'बोलता नहीं था तभी तो ये सारे के-सारे सिर पर चढ़ गए हैं। कोई किसी का कुछ बदना ही नहीं। तमीज-सलीका किसे कहते हैं, कोई जानता ही नहीं' मैंने जवाब दिया।

'हाँ हाँ भया हम तमीज-सलीका काहे को जानेंगे? वो तो तूने एक दिन में उसे कनमुही से सीख लिया न। गुरु तो तुझे अब मिली है। लो, अब लाडला हम तमीज-सलीका सिखाने चला है। कल तक पैदल चलना नहीं जानता था, तब तमीज सिखाने वाली नहीं आई। अब आसमान पर उड़ने लगा। धरती पर चल बटा, धरती पर। बेशरम वो है या तू कि जब देखो तब बहू की आड़ लिये चले आ रहे हैं—न माँ का ख्याल न बाप का ध्यान। तेरे लिए छोटा-बड़ा कोई रहा ही नहीं गया। तुझे तो और अब अम्मा याद आने लगी।

तुम तो कुछ सोचा मत, और अगर दूसरा कुछ कहे तो बहू की आड़ हो गई? अब महीनों हो गए ख्याल है किसी को कि कब नहाती है, कब सोती है? एक कपड़ा माँगा सो दुनिया भर का महाभारत? भाभी क्या कुछ भी करने लायक नहीं हैं? लेकिन नहीं, वे क्यों करेंगी? वे तो बड़ी बहू हैं न, माँ की जगह! सो वे तो रानी हैं बाकी सब दासियाँ।

'दासी वे काहे की दासी तो हम हैं, जिन्दगी भर टुक-टुकर खिलाया, अब और खिलाएँगे। पहले एक को खिलाया अब दो-दो को खिलाएँगे। रोती बच्ची को जबरदस्ती खाट पर पटककर भाभी भी भाभी पर आ टूटी। भनभनाती हुई वे भाभी चौके में पहुँचीं और प्रभा को जबरदस्ती उसके पटरे से खींचती हुई बोलीं, 'हटो बहूरानी तुम्हें तकलीफ हो रही होगी। मैं बनाती हूँ।"

'बना तो रही हूँ मैं। मन तुमसे कुछ कहा हो तो मुझसे कहो मुझसे क्यों नाराज हो रही हो?' प्रभा रुआँसी-सी खुशामद के स्वर में

कहती रही, लेकिन भाभी के हाथों में प्रचण्ड शक्ति आ गई थी। उन्होंने प्रभा की सूखी सी देह को उठाकर एक ओर रख दिया और धम से पटरे पर बैठकर खसर-खसर रोटियाँ बेलने लगी। प्रभा की आँखों में पानी भर आया। वह स्तब्ध बैठी कुछ देर यों ही देखती रही, फिर चिमटा उठाकर अध सिकी रोटियों का सामने फैले अंगारों पर रखकर घुमाती हुई फुलाने लगी।

"कमाने के नाम तो अभी और पढ़ेंगे, अभी और पढ़ेंगे" अम्मा बड़बड़ाती चली जा रही थीं। भाभी ने झटके से चिमटा प्रभा के हाथ से खींच लिया और खुद मुँह फुलाए फूली हुई रोटियों को सारी ताकत से दाँत पीस पीसकर चकले पर मारने लगी। दो चार मिनट चुपचाप बैठने के बाद जब प्रभा की समझ में नहीं आया कि क्या करे, तो वह अपराधिनी की तरह धीरे से उठी और उनकी रोती बच्ची के पास आ गई। भाभी उसे क्रोध में यों ही पटक आई थीं, वह गला फाड़ फाड़कर रो रही थी। प्रभा उसे उठाकर बाँहों में हिला हिलाकर चुप कराने लगी।

रोटी बेलते-बेलते न जाने कैसे भाभी को इसका पता चल गया। सब छोड़ छाड़कर वह धम धम करती प्रभा के पास आई और बच्ची को एक तरह जबरदस्ती छीनती हुई बोली "रहने दो बहूरानी, तुम उसे छोड़ दो। जरा सा रो लेने दो। इतने रोने से मरी नहीं जाती है। अगर इसकी किस्मत में रोना ही बदा है तो रो लेगी। मर जाएगी कमबख्त ज्यादा-से ज्यादा पर तुम्हारी आत्मा को तो सन्तोष हो जाएगा। तब से बैठी-बैठा आँगन में गड़ रही थी न

प्रभा को लगा कि इस सारे काण्ड की जिम्मेदारी उस पर डाल दी गई है। इस अप्रत्याशित स्थिति से वह रोने को होती हुई-सी बोली, जिठानी जी, मैंने तो कुछ भी नहीं कहा। मुझे तुम यह सब क्यों सुना रही हो ? वह बच्ची को न देने का हठ करती रही। इस खींच-तान में बच्ची और भी जोर से रोने लगी।

मैं हक्का-बक्का खड़ा इस सारी स्थिति को देख रहा था। लगा मेरी

स्थिति अब केवल एक दर्शक की रह गई है। मन डाटकर कहा, "उसे दे क्या नहीं देती प्रभा? फिर जल्द जान छुड़ाकर बाहर भागते हुए बोला, 'या तो कुछ कहा मत, और कुछ कहो तो सब अलग अलग मनाएँगे।"

प्रभा से बच्ची छीनकर भाभी ने उसे फिर खाट पर पटका और फिर चौके में चली गई। जाते-जाते इतना मेरे सामने हो चुका था। पता नहीं बाद में क्या हुआ। जानता था प्रभा को किस तरह के तूफान का सामना करना पड़ा होगा। मेरा दिमाग तो एकदम सुन्न हो गया था।

घर की सारी स्थिति की याद से पार्क में लेटे-लेटे भी मेरे सिर की नसें-नसें चटखने लगीं।

'धाँय!"

अचानक कहीं बहुत पास ही बन्दूक चलने जैसी गगन भेदी आवाज से चौंककर मैं इस बुरी तरह उछल पड़ा मानो मुझे ही निशाना बनाकर किसी ने बन्दूक चलाई हो। लगा जैसे सो रहा था। इधर उधर देखा। पार्क के एक सिरे पर कुछ आदमी किसी को घेरे खड़े थे। सब-कुछ भूल भालकर जल्दी-जल्दी उधर पहुँचा। दस-पन्द्रह आदमियों की भीड़ के बीचा-बीच, लम्बी-सी जीभ और झाग निकाले, मुर्दा गरदन वाला एक विशालकाय घोड़ा चारों टाँगें फैलाए दम तोड़ रहा था और खून की गाढ़ी-गाढ़ी धारें मुलायम घास वाली जमीन पर कुछ दूर बहकर सूख गई थीं। घोड़े की सामने वाली टाँगों के ऊपर के पुट्ठे में बड़ा-सा छेद बना था और वहाँ से खून के साथ कुछ सफेद-सफेद तरल पदार्थ भी निकलकर बह आया था। पास ही खाकी पैण्ट और सफेद कमीज पहने एक सज्जन खड़े-खड़े रूमाल से आँखों से बहते आँसू पोंछ रहे थे। एक हाथ में जमीन पर टिकी बन्दूक पकड़ रखी थी। लगा खड़े-खड़े रो रहे हैं। मैंने एक साहब से पूछा 'क्या भाई यह क्या हो गया?' उसने अफसोस से बताया, 'दारोगाजी का घोड़ा है, इसे बहुत प्यार करते थे।

अब बहुत दिनो से बीमार था । ठीक हो नही हो रहा था, सो मार दिया ।

'हुह, अच्छा प्यार करते थ ! बीमार था सो मार दिया । जिन्दगी-भर सवारी की और अब जब बीमार हो गया तो मार दिया । एक दिन यो ही बुड्ढे बाप को भी मार देंग ' मैंने घृणा और गुस्से से मुह बिचकाकर कहा । और भी जाने क्या-क्या कहता तभी उस आदमी ने तिरस्कार से मेरी तरफ देखकर कहा "और अब बाकी सारी जिन्दगी तडपना और कष्ट पाता रहता तब ठीक था ? अब एक मिनट की तक-लीफ हुई और बेचारा सारे दुखो से छुटकारा पा गया ! किसी से कष्ट देखा जाता है किसी से नही ।'

म चुप होकर खिसियाना-सा वहाँ से लौट आया । अलग जाकर मन अपने ठस माथे पर दो-तीन बार हाथ मारा—यह मेरे दिमाग को आखिर हो क्या रहा है ? जरा-सी बात समझ मे नही आती । बिलकुल ठीक ही तो है । डाक्टरोगाजी ने क्या गलती की ? इसी तरह उस दिन शिरीष की बातें भी मेरी समझ म नही आ रही थी । बेचारा बिलकुल ठीक ही तो बता रहा था । मेरा ही दिमाग कुन्द हो गया है ।

रात को दस बजे जब म घर लौटा तो मेरी समझ मे कुछ भी नही आ रहा था । लगा, सिर म या तो गोबर भरा है या कुछ है ही नही । बस माथे मे जोर का दद हो रहा था । घर म बिलकुल सन्नाटा था । सब लोग सो चुके थ । किवाड भिड हुए थे, भाई साहब या बाबूजी अभी तक बाहर से नही आये थ । मैं चुपचाप ऊपर छत पर चला आया । अप्रैल बीत चुका था । सब लोग ऊपर छता पर ही सोये थे । अपनी कोठरी में आकर बिना कपडे उतारे ही एक ओर बिस्तरे पर जा पडा । भीतर गरमी और उमस थी । आँखो म नींद का नामोनिशान नही था । बस यो ही सूनी आँखो से छत को देखता रहा ।

तभी न जाने किधर से प्रभा मेरे पास आकर बढ गई । डरते डरते बाँह छूकर बोली सोना नहीं साभाग ?'

मुझे उसका चेहरा नहीं दिखायी दे रहा था। भीतर मैं कहीं इसी क्षण के लिए आशंकित था। बिना कोई भाव दिखाए या हिले-डुले बोला, "नहीं। तुमने खा लिया ?

'नहीं' उसने सर माथे पर हथेली रखकर कहा।

और मैं सहसा प्रभा की जाँघ में मुँह गड़ाकर फफक उठा, "प्रभा प्रभा बताओ, हम क्या करें, कहाँ चले जाएँ ?

छः

आपके मन में कोई सुख-खबरी मचल रही हो और आप उसे जल्दी से जल्दी जाकर घर सुना देना चाहते हों तब कोई आपको बातों में उलझाए हो, या वहम के एक-से-एक उलझे सूत्र निकाल निकाल कर ला रहा हो तो मन में कैसी झुंझलाहट आती है। इच्छा होती है कि सारी शिष्टता और सभ्यता को ताक पर रखकर झटके से उठ खड़े हों और कहें—'आप यह सारी बकवास बन्द कीजिए, मुझे सबसे पहले यह सुख-खबरी जाकर अपनी पत्नी को सुनाना है। दिवाकर की बैठक में मेरी हालत कुछ-कुछ ऐसी ही थी।

दिवाकर ने पूछा था, 'काम कराओगे ?

'हाँ हाँ, मिला कुछ ?' मैं बेचैनी से उठ खड़ा हुआ।

'मिला तो नहीं लेकिन दूर बहुत है' दिवाकर ने बताया। 'या समझो कि शहर के दूसरे सिरे पर है।

'यार, तुम बताओ तो सही। तुम शहर की बात कहते हो मैं दुनिया के दूसरे सिरे पर चला जाऊँगा। मैं उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा।

"शर्त यह है कि यह इयर जायन करोगे।'

"हाँ हाँ यार, करूँगा। तू बोल तो सही।' मैं झुंझलाकर भी मुस्करा उठा।

'तो सुनो, काम है एक प्रेस में प्रूफ रीडिंग का। सुबह पाँच से ग्यारह का वक्त मैं तय कर आया हूँ ताकि वहाँ से सीधे कॉलिज जाने में सुविधा हो।'

कौन लोग हैं ? कहाँ है ? मुझे बता तो सही, दिवाकर ! देंगे क्या ?"

इतनी उतावली नहीं। पिताजी के एक दोस्त का प्रेस है। फिलहाल तो कुछ बहुत नहीं है, लेकिन दो एक महीने बाद कह-सुनकर बढ़वाया जा सकता है।'

"पहले बता तो सही कि है कितना ?"

'पचहत्तर एक-दो महीने बाद सौ कराया जा सकता है। लेकिन तू एसा बेचैन क्यों हो उठा ?' वह मेरी बच्चों-जैसी अधीरता पर हँस पड़ा।

"बहुत है बहुत है दिवाकर !" कृतज्ञता-गद्गद् स्वर में मैंने कहा 'यह हो जाए, दिवाकर, तो मेरा उद्धार हो जाएगा। तू नहीं जानता मैं कितना परेशान हूँ। घर में एक पल को चैन नहीं मिलता ' और मन में जैसे एक ज्वार उमड़ने लगा कब चलोगे ? चलो अभी चलें न !

दिवाकर ने एक पल मेरे चेहरे को देखा और बोला 'अच्छा तो चलो।

और जब सारी बातें तय हो गईं, तब भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह पचहत्तर रुपयों की नौकरी सचमुच मुझे मिल गई है। मुझे तो ऐसा लगने लगा था कि यह दो-दो पैसा का तरसना मेरे भाग्य में हमेशा के लिए लिख दिया गया है। हर महीने एक साथ पचहत्तर रुपये आना तो एक सपना है जिस पर किसी भी तरह विश्वास नहीं किया

जा सकता। बेचारे भाई साहब को इससे कुछ ही तो ज्यादा मिलता है। सारा दिन खटते हैं। लौटते हुए मन होता था उड़ता हुआ चला जाऊँ और जाकर प्रभा से कहूँ, देख प्रभा, मुझे नौकरी मिल गई। दिवाकर की ही वजह से यह सब हुआ, नहीं तो यों ही घुट घुटकर मर जाता। मैं उसके साथ लौटकर घर तक आया। तय यों हुआ था कि सुबह पाँच बजे से ग्यारह तक यहाँ रहा करूँगा। इसके बाद सीधा कालेज जाऊँगा। हो सकता है मेरे सौभाग्य से पहला पीरियड थर्ड-इयर का न पड़े। निश्चय ही जब भाग्य ने यहाँ मेरा साथ दिया है तो वहाँ भी देगा ही। वरना हाजिरी पूरी कराने के लिए किसी प्रोफेसर की खुशामद करनी पड़ेगी। उस पीरियड को छोड़ दूँगा। मन हल्का था दिवाकर के पैरों में लिपट जाऊँ।

'दिवाकर तूने मुझे बचा लिया, वरना सच कहता हूँ मैं पागल हो जाता। तू नहीं जानता हमारे घर की हालत क्या है।' मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करूँ। मेरी आँखें भर आईं।

"अरे छोटे भाई, मैंने इसमें कुछ नहीं किया। मुसीबत से संघर्ष करने का नाम ही तो वीरता है। बस तो मुझे बड़ा उदार दाता है खुद इतना कमजोर है।' और फिर मुझे संकोच से बचाने के लिए एकदम बात बदलकर बोला, 'लेकिन यार, एक बात सोचता हूँ कि दूर बहुत पड़ जाएगा। आने-जाने और खाने-पीने की मुसीबत होगी।"

"दूर का तो कोई सवाल नहीं है। मुश्किल से दो मील होगा। ज्यादा भी हो तो क्या है। सुबह-सुबह जरा टहलना भी हो जाएगा। हाँ, खाने की समस्या जरा टेढ़ी है। फिर मैंने सोचकर कहा "पर यार, वह भी कोई ऐसी दिक्कत नहीं है। प्रभा बना लिया करेगी। सुबह कुछ जल्दी ही तो उठना पड़ेगा। खाना बन जाया करेगा। दिवाकर, उसकी बड़ी इच्छा थी कि मजाक से ही एम० कर डालूँ। सुनते ही खुशी से उछल पड़ेगी।'

'अच्छा हाँ, अब याद आया, उसने एकदम याद करके कहा 'उस दिन

तुम किरण से '

क्षमा के स्वर में मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए, "यार सब चलता है, भाई! ज़रा यह समय गुज़र जाने दे, फिर किसी दिन बैठकर सब बता दूंगा।'

'जैसी तेरी मरज़ी। लेकिन इतनी सुबह उन्हें मुसीबत नहीं होगी खाना बनाने में?' उसने चिन्ता से पूछा, 'क्योंकि पाँच बजे वहाँ पहुँच जाने का मतलब हुआ, तुम चार साढ़े चार पर घर से चलो। यानी सात तीन पौने चार पर उठो। परेशानी तो खासी है।'

सब हो जाएगा दिवाकर, सब हो जाएगा। उसे तुम नहीं जानते। उसने कितनी मुसीबतें सही हैं इसे कोई नहीं जानता। मेरे लिए वह सब कर सकती है सब सह सकती है।' और अपने जैसे अभागे के लिए प्रभा के त्याग और मुसीबतों का ध्यान करके मेरी आँखों में आँसू आ गए। विह्वलता के आवेग से मेरा निचला होंठ फड़कने लगा। एकदम दूसरी ओर देखते हुए मैं रुलाई पर नियन्त्रण पाने की कोशिश करता रहा। कहीं प्रभा के सामने भी रोने लगा तो अच्छा नहीं लगेगा। थोड़ी देर हम लोग यों ही बिना बोले चुपचाप चलते रहे। फिर मुश्किल से मैंने कहा, 'दिवाकर कुछ रुपये उधार दो।

'कितने?'

बीस काफी हैं। मिलते ही चुका दूंगा। सोचा आज घर खाली हाथ नहीं जाऊँगा। कुछ-न-कुछ प्रभा के लिए लेकर जाऊँगा तो वह खुश हो जाएगा। उसे धोती की सख्त जरूरत भी है।

यहाँ तो नहीं हैं। किरण के पास होंगे तो दे दूंगा। और हाँ गिरीश भाई साहब आये हैं वे भी पूछते थे तुम्हें। आज शनीचर है न सो दोपहर की गाड़ी से आ गए। बहन से मिलने चले गए थे, अब तक लौट आए होंगे।

मन तो हो रहा था कहूँ, मैं अब कहीं नहीं जाऊँगा, किसी से नहीं मिलूंगा। मुझे प्रभा के पास जाकर सबसे पहले यह सूचना देनी

है। लेकिन दिवाकर ने रुपये लेने थे और इस समय मैं उसका इतना अहसानमंद था कि वह अगर जहन्नुम में चलने को कहता तो वहाँ भी जा सकता था। चलते हुए पूछा, 'क्या रविवार को तो हमारी छुट्टी रहा करेगी न?

'बिलकुल रहेगी। अगर काम कराएगा तो ओवर-टाइम देगा। फिर मुझे समझाकर बोला, देखो, प्रूफ़ रीडिंग तो तुम जानते नहीं हो। पाँच-सात दिन तो तुम्हें सीखने में लगेंगे।

अरे सब हो जाएगा यार, तूने क्या मुझे अपनी तरह कूढ़-मगज समझा है? और मैं अकारण ही खिलखिलाकर हँस पड़ा।

काँपते हाथों से रुपये जेब में रखे ही थे कि बैठक में गिरीश भाई ने प्रवेश किया 'क्या सान्त्व, हमारे आते ही चल दिए?

'अरे भाई सान्त्व, आपके लिए तो यहाँ आया ही हूँ।' मन में सोचा कम-से-कम ना धोतियाँ तो आ ही जाएँगी। पूछा, बच्चे को तबीयत कैसी है?

वे धक्के-से कुरसी पर बैठ गए। गहरी साँस लेकर बोले "ठीक है। बुखार तो लगता ही है। दिवाकर भाई माफ करना। तुमने कहा था कि साथ चलकर देखने लगेंगे मगर तबीयत ऐसी घबरा रही थी कि मैं उसे कर चला ही गया। अच्छा आप लोग कब हैं?

ठीक

'अरे यह नयी चीज़ तो मैंने देखी ही नहीं' उन्होंने मेरी बात अधूरी ही काटकर कहा 'यह आपकी चोरी क्या हुई?

दबकर दिवाकर भी उठ पड़ा, अरे मैंने ध्यान ही नहीं दिया! यह क्या हुआ?

और मेरा मुँह एकदम लाल हो आया। कल जब बाल कटवाए थे तो चुटिया एकदम उड़वा दी थी। पता नहीं उसके पीछे गिरीश भाई का डर था या उनकी कोई उपयोगिता समझ में न आने का ज्ञान। लेकिन

फिर इतना सकोच और झेंप लगी थी कि बाहर निकलने की हिम्मत ही नहीं पडती थी। हमेशा हाथ सिर पर इस तरह फरता रहता था जसे उस्तरे हुए बाला को सँवार रहा हूँ, लकिन मैं उसे छिपाए रखना चाहता था। घर वाले शोर मचाएँगे ही, बाहर वाला को पता चलगा तो वे भी जान मुसीबत म कर देंगे। या इधर मैन चोटी को बालो मे छिपाकर रखना गुरू कर दिया था इसलिय दखने म एकदम तो कोई पता नहीं लगा पाएगा। लकिन घर वाला स कब तक छिपा रहेगा? सुनन को मिलगा—'जटलमन बनन चले हैं! फ्रान के पीछे पागल हैं! अपना धरम करम कुछ रहा ही नहीं!' पहले खयाल आया टोपी लगाने लगू। लकिन तब तो एकदम ध्यान खिचेगा। कभी लगाई नहीं जाने कसा लगू! बाहर निकलत, सडक पर चलते, घर मे रहते हमेशा सचेत रहता कि शायद सब लोग जान गए हैं कि मन चोटी कटवा ली है। नौकरी पाने की खुशी म अब सब-कुछ भल चुका था। अब गिरीप भाई की बात सुनकर नये सिर स मन भय स भर उठा।

बस एक ही बार की बहस म सारी माला-कठी भूल बठ? दिवाकर न ताना मारा तो मुझ होश आया—'इतनी दर मे साथ हूँ इधर मेरा ध्यान ही नहीं गया।

इस बार गिरीप भाई ने मेरा पदा लिया "जो समझ मे आता है वो करते हैं। कोई तरी तरह अप्रियल हैं?

'अच्छा हुआ। अब कुछ आदमी स लगे वरना काटून बन घूमते थे," दिवाकर ने अकारण ही हँसकर कहा। इस समय मैं इस मन स्थिति म नहीं था कि किसी भी बात का बुरा मानता। मन हो रहा था जल्दी मे जल्दी यह शिष्टाचार समाप्त हो और मै प्रभा के पास पहुँचू। खिल पडेगी।

इस बार सिगरट जलाकर गिरीप भाई न विषय बदल लिया "हाँ तो आपन बताया नहीं भारतीय सस्कृति की सवश्रेष्ठ चीज़ क्या है?

विषय बदलन से मुझे कुछ चन की साँस मिली। उनकी इस बात पर मैं तब म ही सोचता रहा था, लकिन कोई एक चीज मेरी समझ म

नहीं आती थी। जो कुछ जानता था उसे उन्हीं शब्दों में कह पाऊँगा या नहीं यह भी विश्वास नहीं था। उत्तर दिया, आत्म-ज्ञान और आध्यात्मिक चिन्तन ही मेरी समझ में

बात काटकर वे बोले, "भाई ये भारी भारी शब्द हैं और इनका कोई अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। मान लीजिए, आपने कोशिश करके अर्थ समझा भी दिया तो फिर इनकी उपयोगिता या जरूरत मेरी समझ में नहीं आएगी। इसलिए जरा

मैं अचकचा गया। फिर भी जैसे-तैसे कहा, 'सरल शब्दों में तो शायद यही कहेंगे कि अपना और संसार का ज्ञान।'

बात काटकर वे जल्दी से बोले "संसार झूठ है माया है और आत्मा ब्रह्म के अंश हैं। और आपके माँ-बाप, भाई-बहन पत्नी-पुत्र सब माया हैं बंधन में आप उनके लिए माया हैं। इसलिए इन सारे मायाओं के बंधनों को तोड़ दो तो आत्म ज्ञान प्राप्त होगा। भागकर हिमालय की गुफाओं में चले जाओ तो ये सब अपने-आप ही छूट जाएँगे।' गिरीश भाई हो-हो करके हँस दिए, "भाई वाह!

मैं शर्मा ही हतप्रभ हो उठा और देर तक कोई जवाब ही नहीं सूझा तब वही मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले भाई मेरे यह पलायन और पराजय का दर्शन ही तो आपको यहाँ ले आया है। बेटा बाप को माया समझे और बाप बेटे को माया कहे इससे ज्यादा अहसान-फरामोश और एक-दूसरे का अपमान और क्या होगा? जिस औरत ने आपको जन्म दिया है उसे आप नरक का द्वार कहें और जिसे आप अपने बेटे की माँ बनाने जा रहे हैं उसे कुमारिका बनाएँ यह तो दर्जे की कृतघ्नता नहीं है?

लेकिन अन्त में हमें लगा तो कुछ भी नहीं पड़ता, मैंने कहा 'इसलिए आदमी को आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए? वाह भाई वाह खूब दर्शन है आपका! इस बार सचमुच गिरीश भाई ने जोर लगाकर कहा 'आत्म-हत्या के कम सुन्दर नाम हैं—आत्म-ज्ञान

ब्रह्म म लीन होना, माया मोह के बन्धना स छुटकारा स्थित प्रज्ञता । अर साहब कौन आपके हाथ जोडने गया था कि आप इस ससार म आकर इस कृताथ कीजिए ही ? बाजीगर न एक गोला निकाला तो आपके हाथ म ब्रह्म पकडा दिया, दूसरा गाला निकाला तो माया आ गई, तीसर गाल स गुणो का जन्म हुआ—लीजिए साहब, हवा मे दशन का महल खडा होता गया । अब आप घर-बार की जिम्मेदारी छोडिए और भागिए इस ब्रह्म ज्ञान के पीछे ।

'इसम आप बेकार के झझटो और चिन्ताओ स ता बच जाते हैं" म बोला ।

'जी हाँ हमार घर एक दुघटना हो गई और आपको प्राप्त हो गया ब्रह्म ज्ञान । आप ता एक तरफ आसन लगाए बठे हैं । अब इस दुघ टना को कौन सँभाले ? ब्रह्म ज्ञान न हा गया शराब की बोतल हो गई कि पिया और औंधे पड हैं । भाड म जाए घर, और कुएँ मे जाएँ घर वाले ! और फिर अचानक जस उन्हें कुछ याद हा आया हो । वे बोल, अच्छा बया साहब, मान लीजिए आपके माँ बाप न न आपको पढाया लिखाया, ा अच्छा खाने पहनन का दिया । आपकी दख भाल भी ठीक नही की । तब बडे होकर आप उन्ह गालियाँ बया दते हैं ? बयो नही मान लत कि उन्ह भी ब्रह्म-ज्ञान हो गया था और उन्होने भी आपको माया मानना शुरू कर दिया था ? व क्या माया क पीछे भागत ? इस लिए उन्होन आपकी चिन्ता नही की ।

इस बार मैं सचमुच बौखला गया । ब्रह्म ज्ञान के इस रूप को तो मन दखा ही नही था । इस दृष्टि म ता सचमुच यह अहसान फरामोशी और गर जिम्मदारी हुई । मन फिर पतरा बदलने की कोशिश की 'ब्रह्म ज्ञान का मतलब इतना स्थूल और ऊपरी ही तो नही है । य बहुत स ऐस बाय जिन्हें हम ईश्वरीय कहत हैं ये बहुत भी चमत्कार लगन वाली चीजें ।

आपकी इस चमत्कार और दवी घटनाओ वाली बात पर मुझ एक

चीज़ याद हो आई, गिरीप भाई न जरा मुस्कराकर कहा। 'पता नहीं यह कहाँ तक सही है लकिन मैंन इस स्वामी विवकानन्द के ही नाम म सुना है। कहते हैं एक बार कहीं जाते हुए उन्हें रास्ते म नदी पार करने की जरूरत आ पड़ी। पार करान वाला नाव दूसरे किनारे गयी थी। स्वामीजी बठकर राह देखने लग कि उधर म नाव लौट ता व नदी पार करें। तभी वाई एक महात्मा भी वहाँ आ पहुँचे। परिचय हुआ। महात्माजी का जब पता चला कि स्वामीजी नाव की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो इनकी बहुत भत्सना का। कहा कि अगर ऐसी ऐसी जरा-सी बाधाओं से या रुककर खड़े हो जाओगे तो कैसे दुनिया म चलोगे? तुम तो स्वामी विवकानन्द हो, बड़े आध्यात्मिक गुरु और दार्शनिक माने जाते हो। जरा सी नदी पार नहीं कर सकते? देखो नदी या पार की जाती है।" और महात्माजी खड़ाऊँ खटखटाते हुए पानी पर चलते चले गए। पानी की सतह पर लम्बा चक्कर लगाकर महात्माजी लौटे और चुनौती के स्वर में बोले, 'अमरिका घूम आने और भाषण दे देन से ही कोई स्वामी नहीं हो जाता। उसके लिए तपस्या और साधना करनी होती है। इस महात्मा की शक्ति पर स्वामी वास्तव म चकित थे, पूछा, 'महात्मन् यह सिद्धि आपने कहाँ और कैसे पायी? अपने प्रभाव और स्वामीजी की मूर्खता पर महात्मा मुस्कराए और गर्व म बोले, यह सिद्धि यों ही नहीं मिली। इसके लिए मुझे हिमालय की गुफाओं में तीस साल अखण्ड तपस्या करनी पड़ी है।' महात्माजी की इस बात पर स्वामीजी खिल-खिलाकर हँस पड़े। गिरीप भाई ने अपनी बात तोड़कर मुझे प्रश्न करने का अवसर दिया।

और बात सचमुच ऐसी रोचक थी और ऐसी जगह ताड़ी गई थी कि मेरे मुँह म अपने आप निकल गया क्या? इसम हँसने की बात क्या है?

वही तो स्वामीजी ने कहा' वे बोले 'महात्मन् आपके इस चमत्कार पर मैं सचमुच चकित हूँ। लेकिन भगवद् नदी पार करने का काम तो

ब्रह्म म लीन होना, माया मोह के बन्धनो स छुटकारा, स्थित प्रज्ञता । अरे साहब कौन आपके हाथ जोडने गया था कि आप इस ससार म आकर इस कृताथ कीजिए ही ? बाजीगर न एक गोला निकाला तो आपके हाथ म ब्रह्म पकडा दिया, दूसरा गोला निकाला तो माया आ गई, तीसर गोल म गुणा का जन्म हुआ—लीजिए साहब, हवा मे दान का महल खडा होता गया । अब आप घर-बार की जिम्मेदारी छोडिए और भागिए इस ब्रह्म ज्ञान के पीछे ।'

'इसम आप बेकार के झझटो और चिन्ताओ म तो बच जाते हैं" म बोला ।

"जी हाँ हमार घर एक दुघटना हो गई और आपको प्राप्त हो गया ब्रह्म ज्ञान । आप तो एक तरफ आसन लगाए बठे हैं । अब इस दुघटना का कौन सँभाले ? ब्रह्म ज्ञान न हो गया शराब की बोतल हो गई कि पिया और आँखे पड हैं । भाड म जाए घर, और कुएँ मे जाएँ घर वाल । और फिर अचानक जस उन्ह कुछ याद हो आया हो । वे बोल, अच्छा बयो साहब, मान लीजिए आपके माँ बाप न न आपको पढाया लिखाया, न अच्छा खाने पहनने को दिया । आपकी दख भाल भी ठीक नही की । तब बडे होकर आप उन्हें गालियाँ क्या दते हैं ? क्यो नही मान लत कि उन्हें भी ब्रह्म ज्ञान हो गया था और उन्होने भी आपको माया मानना शुरू कर दिया था ? वे क्या माया के पीछे भागत ? इस लिए उन्होने आपकी चिन्ता नही की ।

इस बार मैं सचमुच बौखला गया । ब्रह्म ज्ञान के इस रूप को तो मन दखा ही नही था । इस दृष्टि से तो सचमुच यह अहसान फरामोशी और गर जिम्मेदारी हुई । मन फिर पतरा बदलने की कोशिश की, ब्रह्म ज्ञान का मतलब इतना स्थूल और ऊपरी ही तो नही है । ये बहुत से ऐस काय, जिन्ह हम ईश्वरीय कहत हैं ये बहुत सी चमत्कार लगने वाली चीजें ।'

'आपकी इस चमत्कार और दवी घटनाओ वाली बात पर मुझ एक

चीज याद हो आई,' गिरीप भाई न जरा मुस्कराकर कहा। 'पता नही यह कहाँ तक सही है लेकिन मैंने इस स्वामी विवेकानन्द के ही नाम से सुना है। कहते हैं एक बार कही जाते हुए उन्हें रास्ते म नदी पार करने की जरूरत आ पडी। पार कराने वाली नाव दूसरे किनारे गयी थी। स्वामीजी बटकर राह देखने लगे कि उधर स नाव लौटे तो व नदी पार करें। तभी कोई एक महात्मा भी वहा आ पहुँचे। परिचय हुआ। महात्माजी को जब पता चला कि स्वामीजी नाव की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो इनकी बहुत भत्सना की। कहा कि अगर ऐसी-ऐसी जरा-सी बाधाओ से या रुककर खडे हो जाओगे तो कम दुनिया म चलोगे ? तुम तो स्वामी विवेकानन्द हो, बडे आध्यात्मिक गुरु और दार्शनिक माने जाते हो। जरा सी नदी पार नही कर सकते ? देखो नदी यो पार की जाती है। और महात्माजी खडाऊँ खटखटाते हुए पानी पर चलते चले गए। पानी की सतह पर लम्बा चक्कर लगाकर महात्माजी लौटे और चुनौती के स्वर में बोले, "अमेरिका घूम आने और भाषण दे लेने ही कोई स्वामी नहीं हो जाता। उसके लिए तपस्या और साधना करनी होती है। इस महात्मा की शक्ति पर स्वामी वास्तव म चकित थे, पूछा महात्मन् यह सिद्धि आपने कहाँ और कैसे पायी ?' अपने प्रभाव और स्वामीजी की मूर्खता पर महात्मा मुस्कराए और गर्व म बोले, यह सिद्धि यो ही नही मिली। इसके लिए मुझे हिमालय की गुफाओ म तीन साल अखण्ड तपस्या करनी पडी है।' महात्माजी की इस बात पर स्वामीजी खिल खिलाकर हँस पडे। गिरीप भाई ने अपनी बात ताडकर मुझे प्रश्न करने का अवसर दिया।

और बात सचमुच ऐसी रोचक थी और ऐसी जगह ताडी गई थी कि मेरे मुँह से अपने आप निकल गया, 'क्या ? इसमे हँसने की बात क्या है ?

यही तो स्वामीजी ने कहा," बेचारे महात्मन् आपके इस चमत्कार पर मैं सचमुच चकित हूँ। लेकिन भगवन् नदी पार करने का काम तो

दो पल में हो सकता है। उसके लिए आपने अपनी जिन्दगी के तीस साल बरबाद कर दिए! दो पल के काम के लिए ये तीस साल, जो कभी आपको वापस नहीं मिलेंगे। तीस साल आपने इस साधना में लगाए और जीवन के बाकी दिन आप इस चमत्कार या सिद्धि के प्रदर्शन में लगाएँगे। जिन्दगी भर नदियाँ पार करेंगे और लोगों की श्रद्धा लूटेंगे। ये तीस साल आप मानव-कल्याण के किसी काम में नहीं लगा सकते थे? कोई दवा ही खोजते, जिससे लोगों को किसी रोग से मुक्ति मिलती।' अपनी बात समाप्त करके शिरीष भाई बोले 'मैं नहीं जानता यह घटना सच है या झूठ। लेकिन इस सचाई से हम इन्कार नहीं कर सकते कि आदमी भूख और रोग से तड़प-तड़पकर मरता रहा और आपकी भारतीय संस्कृति मानव मात्र के कल्याण का राग अलापती रही। औरत और शूद्र के कवाब भून भूनकर खाते हुए हम लोग जीव-मात्र की समानता के नारे लगाते रहे। चींटी और हाथी में तो हमने एक ब्रह्म देखा लेकिन शम्बूक और सीता को जीवित प्राणी नहीं समझ पाए। उन पर हमने क्या-क्या अत्याचार नहीं किये?

और अचानक मुझे शिरीष भाई की बात सुनायी देनी बन्द हो गई। लगा, जैसे मैं प्रभा के सामने सिर झुकाए अपराधी की तरह खड़ा हूँ क्या मर्यादापुरुषोत्तम राजा राम के भीतर एक क्षण के लिए भी यह अपराधी' सिर झुकाकर नहीं खड़ा हुआ होगा? कभी उसने सीता के सामने अपने आपको निरुत्तर नहीं पाया होगा? जैसे अचानक मेरा दम घुटने लगा। मन हुआ अभी अभी इसी क्षण मुझे प्रभा के सामने होना चाहिए और मैं यहाँ बैठा-बैठा बहस कर रहा हूँ। कैसे इस बहस को समाप्त करूँ और भागूँ। लेकिन उनकी बातें ऐसी आकर्षक थीं कि उठने को मन नहीं करता था।

वह कहते रहे और हमारी सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि हमारे पास अपना इतिहास नहीं है। पता नहीं और किसी जाति के पास अपना सच्चा इतिहास है या नहीं, लेकिन हमारे पास तो निश्चय ही जो कुछ है वह

इतिहास नहीं पुराण है। पुराणों में काव्य और इतिहास का ऐसा घपला होता है कि सचाई का पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता है। ऐतिहासिक सत्यों या तथ्यों को जब जब काव्य-रूप दिये जाते हैं तो उनकी सारी वास्तविकता के क्रम को एक नये ही अभिप्राय से अर्थान्तरित कर दिया जाता है। फिर हर युग में उन पुराणों को इतनी बार काव्य का जामा पहनाया गया है कि सचाई का पता ही नहीं लगता। यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि हर युग, इतिहास और पुराणों को अपनी परिस्थितियों और समस्याओं के ही प्रकाश में देखता है। उसी हिसाब से तोड़-मरोड़ करता है और सिर्फ नयी व्याख्या ही नहीं करता पुराने वेश में नया आत्मा रखता है। फिर एक कान से दूसरे कान तक आती हुई सचाई सैकड़ों सालों में क्या रह जाती होगी, इसे आप खुद सोचिए। एक ज़रा-सी घटना पाँच मिनट के समय में चार कानों में क्या-क्या रूप ले लेती है यह तो आपने खुद देखा होगा। कविता में तो यों भी सारे इतिहास को रूपक प्रतीक उत्प्रेक्षा और व्यंजना से लाद दिया जाता है।"

उनकी कुछ बातें मेरे कानों में पहुँच रही थीं और कुछ ऊपर ही रह जाती थीं। शायद मेरी मनःस्थिति वे समझ गए थे। बोले, 'आपको मेरी बातें तकलीफ पहुँचा रही हैं?'

'नहीं-नहीं, क्यों, आपको ऐसा क्यों लगा?'

'मुझे लगा आपको शायद कुछ परेशानी'

'बात यह है बात यह है' मैंने हकलाकर बड़ी मुश्किल से कहा, मैं इस समय ज़रा जल्दी में था। घर में कुछ काम है। वैसे आपकी बातें इतनी रोचक हैं कि जाने को मन नहीं करता। बहुत नयी बातें हैं इसलिए चौंकाती ज़रूर हैं।

'पर आपने पहले क्यों नहीं कहा कि आपको जाना है? अद्भुत भाई! कमाल के आदमी हैं आप भी!' वे उठ खड़े हुए, 'भाई हम तो वहम करने का रोग है। आप साफ़ बता दिया कीजिए कि आपको काम है। हम बातूनी आदमी हैं।' अपनी बेवकूफी पर हँसकर वे बोले 'हाँ,

आपके तो रिजल्ट निकलने वाले होंगे न आजकल ?' चारों तरफ वही सब सुनायी द रहा है।

इसी चिन्ता से तो मुझे जा रहे ह। जाने क्या होगा !' मेरा दिल वास्तव म धमकने लगा। फीकी मुस्कराहट के साथ कहा हमारे छोटे भाई ने इस बार मट्रिक का इम्तहान दिया है। उसे तो जब देखो तब बस, रिजल्ट का ही चिन्ता है। रात म साता भी है या नहीं ! आज इस मदिर म दिया जलाने जा रहे हैं कल उस ज्योतिषी के पास गये हैं। कभी हनुमानजी का चोला, और कभी महादेवजी का परसाद ।

इस बार दिवाकर बोला हाँ हाँ, मैं जानता हू उस। मैं तो उसके बार म तुमसे बातें भी करना चाहता था। जब भी कभी निकलता हू, अक्सर उसे इधर उधर देखता हू। यह उम्र बडी कच्ची होती है। उस पर अच्छी निगरानी होनी चाहिए वरना इधर उधर भटक जाएगा। जिन लडकों के साथ देखा है वे भी मुझे कुछ एसे ही लगे।

दखता मैं भी सब-कुछ हूँ, दिवाकर लकिन भाई मैं कुछ नहीं कर सकता। अब सारी बातें तुम्हें क्या बताऊँ ?' परेशानी से सिर झुकाए मैंने कहा। प्रभा के साथ बदतमीजी की सारी घटना मुझे फिर से याद हो आई। शिरीष भाई को नमस्कार करके मैं बाहर निकला।

दिवाकर साथ था। बाहर निकलते हुए उसने कहा जिस समय तुम लोग सभ्यता और सस्कृति की खाल उधेड रहे थे मैंने तुम्हारी समस्या का एक हल खोज निकाला।'

'क्या ?' मैं सोचने लगा, आज यह देवदूत की तरह मेरी समस्याओं का हल ही निकाल जा रहा है। वाकई कितनी सारी परेशानियाँ इसने आज हल कर डाली है।

'साढे चार या पौने पांच पर यहाँ से एक गाडी जाती है। पांच-दस मिनट म राजामन्डी पहुचा देती है। बस वहाँ से पदल भाग जाया करना।'

हाँ यार, इसका तो मुझे खयाल ही नहीं था।' म उछल पडा।

अरे, यह समस्या बड़ी आसानी से हल हो गई !

लेकिन आने-जाने में तो आने रोज लगेंगे।' दिवाकर फिर चिन्तित हो आया।

मैंने हाथ हिलाकर चलते हुए कहा, 'अरे छोड़ो किस झमेले में पड़े हो ? यहाँ टिकट लेने वाला में से नहीं हूँ। वह चरखा दें कि टी० टी० का बाप देखता रह जाए।

और अकारण ही खिलखिलाकर हँसता हुआ मैं चला आया।

एक धोती का दाम जब बारह रुपये सुना तो सारा उत्साह मर गया।

सोचा था कम-से-कम दो धोतियाँ तो ले ही जाऊँगा। खैर, एक ही सही। यही क्या कम है ! उस समय धोती का बंडल कभी इस हाथ से उछल कर उसमें पहुँच जाता था और कभी इस बगल से उस बगल में। पाँव सीधे ही नहीं पड़ रहे थे। मन होता था कि सड़क बरफ़ के ढलान की तरह चिकनी और ढालू होती तो फिसलता-दनदनाता हुआ मैं पल भर में घर जा पहुँचता। धोती प्रभा को देता तो वह उछल पड़ता। एकदम ऐसा लगता जैसे आसमान से उतरता हुआ चला आ रहा हूँ। चलते-चलते कभी अपने आप ही मुस्कराता और कभी बड़बड़ाता। कभी उँगलियों पर हिसाब लगाता हुआ सिर मटकता और होंठ कस लेता। फिर अपने इस पागलपन पर खुलकर हँस पड़ता। अब भगवान् करे रिजल्ट भी अच्छा निकल आए तो मजा आ जाए। सारी मुश्किलें हल हो जाएँ। फिर एम० ए० करने में रह ही क्या जाए !

भगवान् करे ! गिरीप होता तो भगवान् की भी खाल उधेड़ डालता। हुह मूर्ख है ! बस बातें तो सब सच ही करता है। लेकिन भाई बिना सभ्यता संस्कृति और धर्म के कहाँ काम चलता है ! कहते थे आप कि अब हम वहाँ आ गए हैं जहाँ आदमी को मानवता के सिवा किसी भी धर्म की जरूरत नहीं है। मगर हमारा धर्म तो अनादि है ! अरे इतनी सी बात पर दो घण्टे लगातार बहस होती रही। मुझे जल्दी पड़ी थी कि

कस प्रभा के पास पहुँचूँ और आप वहम किये चले जा रह थ। हाय उस बचारी न भी कितनी मुसीबत सही है ! यह पहली चीज ले जाकर उसे दूगा।

लेकिन शीघ्र ही सारी खुशी भारी चिन्ता म बदल गई। इस तरफ तो मैंन सोचा ही नही था। यह प्रभा को दूगा कस ? सचमुच यह तो बडी भारी समस्या है। सबके सामन दूगा तो अच्छा नही लगेगा। अम्मा और भाभी बुरा मानगी सो अलग। हाँ या ता हो सकता है कि धोती सीधे अम्मा को ही जाकर दू। कहूगा अम्मा धोती को तुम्हारे ही लिए लाया हूँ। समझ ता जाएँगी। अभा अभी तो धोती को लकर इतनी बातें हुई हैं। व खुद ही द देंगी। हाँ यही ठीक है। दुनिया भर क झमटा स बच जाऊगा। हमार यहाँ भा जरा जरा-सी बातो पर कितनी चखचख होती है ! और व बचारी भी कर क्या ? घर की हालत भी तो ठीक नही है। भाई साहब बचार सारा दिन हाड तोडकर जो कुछ कमात हैं वह भी कोई कमाना है ? वह तो कहो मकान अपना है। वही किराये का होता तो पता चल जाता ! तीस ता कम-स कम देन ही पडत किराये के। कायदे से अपनी पहली कमाई की यह धोती मिलनी ता अम्मा को ही चाहिए आर द दू ता खुश ता सचमुच हो जाए

लेकिन जस ही घर का दरवाजा दिखायी दिया कि ये सारी भावनाएँ काफ़ूर हो गइ। घुसते ही कुवर न पूछा भया यह क्या ले आय ? मैंन स्वाभाविक रूप स कह दिया, 'कुछ नही, तुम्हारी भाभी की धोती लाया हूँ। उसके पास थी नही। और ज्यादा कुछ न पूछकर वह जहाँ जा रहा था वहाँ चला गया। बण्डल मैंन सीधे अम्मा की गोद म डाल दिया। उन्होने पूछा 'क्या है ? मैंन स्नेह से कहा अम्मा, तुम्हार लिए धोती लाया हूँ।' और वास्तव म मर मन म आया कि अगर इस अम्मा रखना चाहगी तो मैं कुछ नही कहूँगा। क्या है प्रभा के लिए दूसरी लेता आऊगा। तभी कोने म चटनी पीसती प्रभा दिखायी द गई। तब लगा, नही अम्मा स ज्यादा जरूरत इस है। जसे ही पहला वेतन मिला,

प्रभा के लिए जरूर ले आऊँगा। यह अम्मा का नाम सही।

अम्मा बोला हाँ ऊँ, हम तो बहुत लाएगा। यो क्या नहा कहता कि अपनी बहू का लाया है ? अम्मा ने मुस्कराकर कहा। वे बण्डल खोलने लगीं। बच्चों का याद में मुनाती माना ना दखन के लिए आ खड़ी हुई।

धोती तो बड़ी अच्छी है ! अम्मा और भाभी दोनों के मुँह से निकला। तभी कुँवर भी आकर खड़ा हो गया और थोड़ी देर देखकर बोला, 'भाभी के लिए लाये हैं।

हाँ, हाँ उतना क्या हम समझते नहीं हैं' अम्मा ने इस तरह कहा जैसे इस बात को वह पिछले जन्म में भी जानती थी।

'नहीं अभी दरवाजे पर ही कह जा रहे थे, अपना बात को और ना सच बताने के लिए कुँवर ने कहा।

अम्मा की प्रसन्नता एकदम घुप्प हो गई। मैंने तब धोखा में कुँवर को पूरा, लेकिन अंधेरे के कारण या तो उसने देखा नहीं या अम्मा को कहीं मेरे खिलाफ़ भड़काने में उसे अच्छा लगा। रस्म अदायगी के तौर पर थोड़ी देर धोती को उलट-पुलटकर देख चुकने के बाद अम्मा ने उसे लपेटकर मेरी ओर बढ़ा दिया, ले

'तुम्हीं रख लो अम्मा, मैं क्या करूँ ! मुझे अपने और कुँवर दोनों के ऊपर गुस्सा आ रहा था। बात जबान पर आते आते ही रुक गई कि तुम्हीं दे देना लेकिन चुप रहा।

जिसके लिए लाया है उसे तू खुद ही क्यों नहीं दे देता ? मेरा नाम क्यों लगा रहा है ' इस बार अम्मा ने इतने कटु शब्दों में कहा कि धोती मुझे ले लेनी पड़ी। चुपचाप उठाकर ऊपर चारपाई पर डाल आया। सारा उत्साह और आनन्द समाप्त हो गए।

और उसी दिन खाना खाते-खाते भाई साहब का मैंने सूचना दे दी—

भाई साहब मैंने सोचा है कि यह इयर में एडमीशन न ही लूँ। मैं डर रहा था कि कहीं कोई काण्ड न उठ खड़ा हो इस पर।

भाई साहब का कौर चबाता मुंह रुक गया। कुछ देर मुझे इस तरह देखते रहे जैसे पहचानते न हों। फिर पूछा "बाबूजी से पूछ लिया?

'आप कहेंगे तो वे आसानी से मान लेंगे।" जब वे नाराज नहीं हुए तो मैंने अपनी बात जरा हिम्मत के साथ सामने रखी, भाई साहब, बात यह है कि जब तक कोई अच्छी डिग्री न हो तो नौकरी भी ढंग की नहीं मिलती। बड़े-बड़े बी० ए० एम० ए० तक यों ही घूमते हैं।

आहत स्वर में भाई साहब ने कहा, सो तो ठीक है, लेकिन उस डिग्री के लिए खर्चा भी तो चाहिए। बी० ए० की पढ़ाई का खर्चा है। मुझे तो अभी भी पास होता नहीं लगता "

इस बार कुछ दृढ़ स्वर में मैंने कहा, "बी०ए० की पढ़ाई का खर्चा तो निकाल लूंगा अपना। उसके बारे में आपको चिन्ता की बात नहीं होगी। नौकरी की बात मेरे मुंह तक आ आकर रह गई।

'लेकिन भाई, तुम अकेले ही तो नहीं हो। और भी लोग तो हैं न? उनका इशारा स्पष्ट ही प्रभा की ओर था।

'वह सब मैं देख लूंगा भाई साहब,' मैंने हठ और खुशामद से कहा, बस आप बाबूजी से कहलवा दीजिए जरा।

'अब तुम्हें जो दीखे सो करो। मैं तो बाबूजी से नहीं कहता हूं। उनका दिमाग यों ही ठीक नहीं रहता। भाई साहब नाराज होकर चुप हो गए। मगर अभी बाबूजी के गुस्से को तो मुझे भुगतना था। शीघ्र ही वह क्षण भी आ गया।

धोती पर प्रभा नाराज भी हुई और खुश भी। गंभीरता से बोली, बड़ी लाए धोती! अम्मा को तो नाराज कर दिया।'

तुम बताओ करता क्या? मेरा कसूर हो तो मुझसे कहो, मैंने ईमानदारी से कहा। मैं तो तैयार था कि अगर इसे वे न लेतीं तो मैं तुम्हें दूसरी ला देता।

ओहो, बड़े रईस हो गए हो! क्या बात है, कहीं पड़े-पड़े मिल

भाई साहब का कौर चबाता मुँह रुक गया। कुछ देर मुझे इधर देखते रहे जैसे पहचानते न हों। फिर पूछा, "बाबूजी से पूछ लिया ?

'आप कहेंगे तो वे आसानी से मान लेंगे। जब वे नाराज नहीं हुए तो मैंने अपनी बात जरा हिम्मत के साथ सामने रखी, 'भाई साहब बात यह है कि जब तक कोई अच्छी डिग्री न हो तो नौकरी भी ढंग की नहीं मिलती। बड़े-बड़े बी० ए० एम० ए० तक यों ही घूमते हैं।

आहत स्वर में भाई साहब ने कहा, 'सो तो ठीक है, लेकिन उस डिग्री के लिए खर्चा भी तो चाहिए। बी० ए० की पढ़ाई का खर्चा है मुझे तो अभी भी पास होता नहीं लगता "

इस बार कुछ दृढ़ स्वर में मैंने कहा 'बी०ए० की पढ़ाई का खर्चा मैं निकाल लूंगा अपना। उसके बारे में आपको चिन्ता की बात नहीं होगी। नौकरी की बात मेरे मुंह तक आ आकर रह गई।

'लेकिन भाई, तुम अकेले ही तो नहीं हो। और भी लोग तो हैं न ? उनका इशारा स्पष्ट ही प्रभा की ओर था।

"वह सब मैं देख लूंगा, भाई साहब, मैंने हठ और खुशामद से कहा 'बस आप बाबूजी से कहलवा दीजिए जरा।

'अब तुम्हें जो ठीक लगे सो करो। मैं तो बाबूजी से नहीं कहता हूँ उनका दिमाग यों ही ठीक नहीं रहता। भाई साहब नाराज होकर चुप हो गए। मगर अभी बाबूजी के गुस्से को तो मुझे भुगतना था। वह भी वह क्षण भी आ गया।

धोती पर प्रभा नाराज भी हुई और खुश भी। गंभीरता से बोली, बड़ी लाए धोती ! अम्मा को तो नाराज कर दिया।

तुम बताओ करता क्या ? मेरा कसूर हो तो मुझसे कहो," मैंने ईमानदारी से कहा। मैं तो तैयार था कि अगर इसे वे ले लेतीं तो मैं तुम्हें दूसरी ला देता।

ओहो, बड़े रईस हो गए हो ! क्या बात है, कहीं पड़े-पड़े मिल

गए क्या ?' प्रभा ने आँख नचाकर दुलार से पूछा।

मैंने प्रयत्नपूर्वक, जैसे कोई बहुत ही साधारण-सी बात हो, लापरवाही से कहा, 'मुझे नौकरी मिल गई है न!

ऐं? स।च? प्रभा उछल पड़ी। उसकी आँखें आश्चर्य प्रसन्नता और उत्सुकता से फैल गईं, "तुम तो बड़े वैसे हो जी! चुपचाप बैठे हैं बताया तक नहीं! कैसे धीरे-से कह रहे हैं जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

मुझे उसकी उत्सुकता बचनी बड़ी अच्छी लगी। फिर भी बनावटी लापरवाही से कहा, हाँऽऽ। उसमें ऐसा था भी क्या? बता ही देता।

खुशी प्रभा के रोम रोम से फूटी पड़ रही थी। फूलों की खिली डाली जैसी उसकी खुशी देखकर मुझे लगा सचमुच कितनी बड़ी घटना हो गई है! और तब मैंने आवेश में उसे बाँहों में बाँध लिया और चुम्बनों में उसका मुँह ढक दिया, हाँ प्रभा, मैं तुम्हें ठग कर रहा था। उच्छ्वसित कंठ से बोला 'सच एक बहुत बड़ा बोझ सिर से उतर गया नहीं तो यही फ़िक्र थी कि आगे पढ़ भी पाऊँगा या नहीं।

प्रभा को जब साँस आई तो पूछा 'है कितने की?

बस यही मत पूछो। या समझो कि पढ़ने लायक खर्चा निकल आएगा। अगर यह चलती चली जाए तो कम-से कम एम० ए० तो कर ही लूँगा। मैं दूर भविष्य में जाकर खो गया।

बेचैनी में उसने मेरे दोनों कंधे झकझोरकर कहा 'तब भी है, कितने की यह तो बताओ।

और उसकी झुंझलाहट मेरे भीतर गुदगुदी पैदा करने लगी। मैं आराम से उसकी गोद में लेट गया और बाँह के मोच में आती हुई उसकी चोली में खेलता रहा जैसे उसकी बात ही न सुनी हो। अपने ही आत्म प्रवाह में बहता रहा 'बस सबसे पहला काम यह करूँगा कि कॉलेज में नाम लिखाऊँगा। बाद में फ़ीस माफ़ करा लूँगा। जैसे-तैसे तुम्हारे लिए

गोद मे रखकर सारी बात बता दी।

उस रात बडी देर हम लोग बातें करते रहे। मेरी कल्पना को तो पख लग गए थ। बार बार और ठहर-ठहरकर मैं अपने सपना का वणन करता था। यह तो तय ही था कि एम० ए० अगर अच्छे डिवीजन मे हो कर लिया तो कही-न-कहा प्रोफ़ेसर हो जाऊँगा। तुम्हारी मौज है" मैं उससे कहने लगा, "पढ़ने लिखने के नाम काला अक्षर भैस बराबर, और आप जाकर प्रोफ़ेसरनी कहलाओगी। जरा कोई प्रोफ़ेसरनी की सूरत तो देखा आकर!'

प्रभा नाराज हो गई तब ठीक है, कोइ पढी लिखी न आना। लडकिया को भी तो पढाओगे, उन्ही म से किसी को छाँट लेना।'

'और अपनी लडका को जो पढा लेंग " मैंने खुशामद से कहा।

गुस्सा भूलकर प्रभा बोली 'हाँ, यह तो मैं अभी से कह देती हूँ बाद म तुम ची चपड करा। मैं कालज जरूर जायन करूँगी।"

"घर जो चाहो सा कर लना, प्रभा! तुम घर की रानी होगी। कौन तुम्हे रोकने वाला होगा फिर!' मैं फिर सपना म खो गया और दखो, हमारी एक अच्छी-सी लाइब्रेरी जरूर होगी। उसम नयी-स-नयी किताबें लाकर रखेंग। दो-तीन पत्रिकाएँ मगाया करेंग।'

लेकिन रडिया क बिना तो घर सूना-सूना लगगा" प्रभा बोला।

'नहीं घर सूना क्या लगगा,' मैंने दुष्टता स कहा, उसका भी इन्तजाम कर लेंग पहले ही। चलता फिरता रडियो तब तक तो घर म घूमन लगगा।"

प्रभा लजाकर लाल हो उठी। और उस समय तो कुछ ना होना कठिन नही लग रहा था। प्रभा की मासल बाँह पर सिर रख हुए मुझे ससार की बडी स-बडी मुसीबत छोटी लग रही थी। लगता था मैं हर बाधा को जीत सकने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं एक योजना रखता तो प्रभा उसम सुधार करती और प्रभा जो कुछ बताती उसम मैं मान-मरा निकालता। उस रात बगीचे के फूलों म लदकर बगले के फाटक पर

गोद में रखकर सारी बात बता दी।

उस रात बड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। मेरी कल्पना को तो पख लग गए थे। बार-बार और ठहर-ठहरकर मैं अपने सपनों का वर्णन करता था। यह तो तय ही था कि एम० ए० अगर अच्छे डिवीज़न में ही कर लिया तो कहीं-न-कहीं प्रोफ़ेसर हो जाऊँगा। 'तुम्हारी मौज है' मैं उससे कहने लगा, "पढ़न लिखने के नाम वाला अक्षर भैंस बराबर और आग जाकर प्राफ़ेसरनी कहलाओगी। ज़रा काई प्राफ़सरनी की सूरत तो देखो आकर!'

प्रभा नाराज़ हो गई 'तब ठीक है काई पढ़ी लिखी से आना। लड़कियों का भी तो पढ़ाओगे, उन्हीं में से किसी को छाँट लेना।'

'और अपनी लड़की को जो पढ़ा लेंगे" मैंने खुशामद से कहा।

गुस्सा भूलकर प्रभा बोली 'हाँ यह तो मैं अभी से कह देती हूँ बाद में तुम चौं चपड़ करो। मैं कालेज ज़रूर जॉयन करूँगी।"

"अरे जा चाहो सो कर लेना प्रभा! तुम घर की रानी होगी। कौन तुम्हें रोकने वाला होगा फिर!' मैं फिर सपनों में खो गया और देखो, हमारी एक अच्छी-सी लाइब्रेरी ज़रूरी होगी। उसमें नयी-से-नयी किताबें लाकर रखेंगे। दो-तीन पत्रिकाएँ मँगाया करेंगे।

लेकिन रडियो के बिना तो घर सूना-सूना लगेगा' प्रभा बोली।

'नहीं, घर सूना क्यों लगेगा' मैंने दुष्टता से कहा उसका भी इन्तज़ाम कर लेंगे पहले ही। चलता फिरता रडियो तब तक तो घर में घूमने लगेगा।'

प्रभा लजाकर लाल हो उठी। और उस समय तो क्रुद्ध भी होना कठिन नहीं लग रहा था। प्रभा की मांसल बाँह पर सिर रखे हुए मुझे संसार की बड़ी-से-बड़ी मुसीबत छोटी लग रही थी। लगता था मैं हर बाधा को जीत सकने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं एक याचना रखता तो प्रभा उसमें सुधार करती और प्रभा जो कुछ बताती उसमें मैं मीन-मेख निकालता। उस रात बगीचे के फूलों से महकर बगले के फाटक पर

गोद में रखकर सारी बात बता दी।

उस रात बड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। मेरी कल्पना को तो पंख लग गए थे। बार-बार और ठहर-ठहरकर मैं अपने सपनों का वर्णन करता था। यह ना तय हो पा रहा था कि एम० ए० अगर अच्छे डिवीजन में हो कर लिया तो कहीं-न-कहीं प्रोफ़ेसर हो जाऊँगा। तुम्हारी मौज है' मैं उससे कहने लगा, 'पढ़ने-लिखने के नाम वाला अक्षर भैंस बराबर और आप जाकर प्रोफ़ेसरनी कहलाओगी। जरा कोई प्रोफ़ेसरनी की सूरत तो दिखा आकर!'

प्रभा नाराज हो गई तब ठीक है, कोई पढ़ा लिखा ले आना। पढ़कियों का भी तो पढ़ाओगे, उन्हीं में से किसी को छाँट लेना।'

'और अपनी लड़की को जो पढ़ाएँगे' मैंने खुशामद से कहा।

गुस्सा भूलकर प्रभा बोली "हाँ यह तो मैं अभी से कह देती हूँ बाद में तुम चाँय-चपड़ करो। मैं कालेज जरूर जाया करूँगी।'

'अरे जो चाहो सो करना प्रभा! तुम घर की रानी होगी। कौन तुम्हें रोकने वाला होगा फिर!' मैं फिर सपनों में खो गया और बोला, हमारी एक अच्छी-सी लाइब्रेरी जरूरी होगी। उसमें नयी-से-नयी किताबें लाकर रखेंगे। दो-तीन पत्रिकाएँ मँगाया करेंगे।'

लेकिन रेडियो के बिना तो घर सूना-सूना लगेगा' प्रभा बोली।

'नहीं घर सूना क्यों लगेगा,' मैंने दुष्टता से कहा, उसका भी इन्तजाम कर लेंगे पहले ही। चलता-फिरता रेडियो तब तक तो घर में घूमने लगेगा।'

प्रभा लजाकर लाल हो उठी। और उस समय तो कुछ ना होना कठिन नहीं लग रहा था। प्रभा का माथा बाँह पर टिके हुए मुझे संसार की बड़ी-से-बड़ी मुसीबत छोटी लग रही थी। लगता था मैं हर बाधा को जीत सकने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं एक योजना रखता तो प्रभा उसमें सुधार करती और प्रभा जो कुछ बताती उसमें मैं मीन-मेख निकालता। उस रात बगीचे के फूलों से महककर बगले के फाटक पर

गोद में रखकर सारी बात बता दी।

उस रात बड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। मेरी कल्पना को तो पंख लग गए थे। बार-बार और ठहर-ठहरकर मैं अपने सपनों का वर्णन करता था। यह तो तय ही था कि एम० ए० अगर अच्छे डिवीज़न में ही कर लिया तो कहीं-न-कहीं प्रोफेसर हो जाऊँगा। तुम्हारी मौज है' मैं उससे कहने लगा, 'पढ़ने लिखने के नाम काला अक्षर भैंस बराबर और आगे जाकर प्राफ़सरनी कहलाओगी। ज़रा कोई प्राफ़सरनी की सूरत तो देखो आकर!'

प्रभा नाराज़ हो गई तब ठीक है कोई पढ़ी लिखी न आना। लड़कियों को भी तो पढ़ाओगे, उन्हीं में से किसी को छाँट लेना।'

'और अपनी लड़की को जो पढ़ा लेंगे" मैंने खुशामद से कहा।

गुस्सा भूलकर प्रभा बोली 'हाँ यह तो मैं अभी से कह देती हूँ बाद में तुम चाँय-पाँय करो। मैं कालेज ज़रूर जाऊँगी।'

'अरे जो चाहो सो कर लेना, प्रभा! तुम घर की रानी होगी। कौन तुम्हें रोकने वाला होगा फिर!' मैं फिर सपनों में खो गया और देखो, हमारी एक अच्छी-सी लाइब्रेरी ज़रूरी होगी। उसमें नयी-से-नयी किताबें लाकर रखेंगे। दो-तीन पत्रिकाएँ मँगाया करेंगे।

'लेकिन रेडियो के बिना तो घर सूना-सूना लगेगा प्रभा बोली।

'नहीं, घर सूना क्यों लगेगा" मैंने दुष्टता से कहा, उसका भी इन्तज़ाम कर लेंगे पहले हो। चलता-फिरता रेडियो तब तक तो घर में घूमने लगेगा।'

प्रभा लजाकर लाल हो उठी। और उस समय तो कुछ भी होना कठिन नहीं लग रहा था। प्रभा की बाईं बाँह पर सिर रखे हुए मुझे संसार की बड़ी-से-बड़ी मुसीबत छोटी लग रही थी। लगता था मैं हर बाधा को जीत सकने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं एक बाजना रखता तो प्रभा उसमें गुबार करती और प्रभा जो कुछ बताती उसमें मैं मीन मेख निकालता। उस रात बगीचे के फूलों से भरकर बगल के फाटक पर

गोद में रखकर सारी बात बता दी।

उस रात बड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। मेरी कल्पना को तो पंख लग गए थे। बार-बार और ठहर-ठहरकर मैं अपने सपनों का वर्णन करता था। यह तो तय ही था कि एम० ए० अगर अच्छे डिवीजन में ही कर लिया तो कहीं-न-कहीं प्रोफ़ेसर हो जाऊँगा। तुम्हारी मौज है" मैं उससे कहने लगा, 'पढ़ने लिखने के नाम काला अक्षर भैंस बराबर, और आग जाकर प्रोफ़ेसरनी कहलाओगी। जरा कोई प्रोफ़ेसरनी की सूरत तो देखो आकर!'

प्रभा नाराज हो गई तब ठीक है कोई पढ़ी लिखी ले आना। *लड़कियों को भी तो पढ़ाओगे, उन्हीं में से किसी को छाँट लेना।*'

'और अपनी लड़की को जो पढ़ा लेंगे' मैंने खुशामद में कहा।

गुस्सा भूलकर प्रभा बोली, "हाँ यह तो मैं अभी से कह देती हूँ बाद में तुम चाहे चपड़ करो। मैं कालेज जरूर जॉयन करूँगी।'

'अरे जो चाहो सो कर लेना प्रभा! तुम घर की रानी होगी। कौन तुम्हें रोकने वाला होगा फिर!' मैं फिर सपनों में खो गया और देखो, हमारी एक अच्छी-सी लाइब्रेरी जरूरी होगी। उसमें नयी-से-नयी किताबें लाकर रखेंगे। दो-तीन पत्रिकाएँ मंगाया करेंगे।

लेकिन रेडियो के बिना तो घर सूना-सूना लगेगा' प्रभा बोली।

'नहीं, घर सूना क्यों लगेगा," मैंने दृढ़ता से कहा, उसका भी इन्तजाम कर लेंगे पहले ही। चलता-फिरता रेडियो तब तक तो घर में घूमने लगेगा।'

प्रभा लजाकर लाल हो उठी। और उस समय तो कुछ भी होना कठिन नहीं लग रहा था। प्रभा की मांसल बाँह पर सिर रखे हुए मुझे संसार की बड़ी-से-बड़ी मुसीबत छोटी लग रही थी। लगता था मैं हर बाधा को जीत सकने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं एक योजना रखता तो प्रभा उसमें सुधार करती और प्रभा जो कुछ बताती उसमें मैं मान-मस निकालता। उस रात बगीचे के फूलों से लदकर बगले के फाटक पर

लगने वाल अपन नाम की प्लेट तक, हर विषय पर हम लोगो न बातें की। बीच बीच म जब भी ध्यान आ जाता कि ये बातें कितनी निराधार है या कोई इस बात की याद दिला देता तो खुद ही कहते 'सूत न कपास और हम लोग भी जान कहाँ-कहाँ के कुलाब मिला रहे है ।' थोडी देर चुप रहते लेकिन फिर नये सिरे से बातें चल निकलती । हाँ, सारी बातें यही आकर समाप्त होती 'बस, बीच की ही य थोडी-सी कठिनाइयाँ और मुसीबतें हैं । इसके बाद तो बडा पार ही समझो। इन्ह ही जरा हिम्मत स सह लें फिर तो प्रभा मैं तुम्ह रानी बना दूगा, रानी ।' और जब बदले म वह ससार की सारी कठिनाइया को चुपचाप सह लेने का आश्वासन देती तो मैं कृतज्ञता और विश्वास से गद्गद हो आता । जब मुझ याद आया कि अपने इन सारे नक्शा म हमने अपने घरवालो को तो शामिल ही नही किया तो बोला 'म एक भाई को अपन साथ रख कर पढाऊँगा । अमर को नही वह तो बदतमीज है । कुवर सीधा है वह रह भी लेगा । घर छोडकर अम्मा बाबूजी हमारे साथ तो क्या रहग, हाँ कभी-कभी आया जरूर करेंगे । भाई साहब का भी बोझ कुछ हल्का हो जाएगा । प्रभा कुछ नही बोली ।

उस रात हृदय की कल्पना उन्मुक्त थी और होठो क स्वप्न गीत बनकर फूट पडना चाहत थ । उस रात हम दोना की आत्माएँ एकाकार होकर सतरग पुल-जसी बन गई थी जो इस वतमान स उठाकर हमे भविष्य के सुनहले ससार म ले जाएगा । हम लोग हाथ-म हाथ झुलाते हुए उस पर चलत, अपन को साफ देख रहे थे उस दिन सारा आकाश रोशनी के फूला स दिपदिप कर रहा था ।

निश्चय किया कि कल रविवार है मैं जाकर काम देख आऊँ, समझ लू और तब घरवाला को किसी तरह बता दिया जाए । लेकिन यह साफ कर दूगा कि यह नौकरी दिवाकर ने इसी शत पर दिलायी है कि मैं आग पढूँगा । जब हम लोग सोये तो फिर ध्यान आया कि जिसने नौकरी दिलायी है उसक बारे म तो मन प्रभा से कोई बात ही नही कही ।

शिरीष भाई का बात भी प्रभा को अभी बतानी है।

सुबह उठते ही मन कहा प्रभा, एक दिन तुम्हें दिवाकर के यहाँ जरूर चलना है। वह कई दफा कह चुका है। मैंने तब उसे उस दिन की सिनमा वाली बात बतायी। कैसे तब मन कहा था कि वह तो अपने घर गया है। किरण का बात भी बतायी।

प्रभा किरण के सामने होने की कल्पना से सकुचा उठी। बोली 'देखो मैं कैसे चल सकती हूँ? घर पर तो तुम देख ही रहे हो।'

'तुम हमारे साथ चलोगी। घर का तो यह सब चलता ही रहता है। और फिर इस पर अभी से सिरदर्द करने की जरूरत नहीं है। हाँ चलेंगे जल्दी ही शिरीष भाई की बहन से भी मिल आना एक दिन।

'कौन?' उसने चकित भाव से पूछा।

और मैं देर तक उस शिरीष भाई साहब के बारे में बताता रहा— एम्प्लायमेंट एक्सचेंज से लेकर अब तक की सारी बातें उसे बता दीं। फिर बोला सच प्रभा, कभी कभी तो मैं उस आदमी की इस बात पर आश्चर्य करता हूँ। हर चीज का देखने का उसका अपना अलग ही तरीका है। वह तो जैसे किसी चीज को मानता ही नहीं। जिस दर्शन, उसका खण्डन! कहता है हमारे पास अपना इतिहास है ही नहीं। जो कुछ है वह पुराण हैं जिनमें धर्म, अंधविश्वास और कविताओं का घपला है और वहाँ सचाई का पता ही नहीं चलता। या फिर किसी के भाटों द्वारा लिखे हुए कुछ राजाओं के प्रशस्ति-काव्य हैं जिनमें पाँच गाँव के राजा को धरती का सिरमौर बताया जाता है। कहता था कि शास्त्रों और स्मृतियों के नाम पर हमारे पास वे चीजें हैं जिनमें कहा गया है कि नियम-कायदे पहले बने, और मनुष्य-समाज बाद में आया। बोला, जब मनुष्य ही नहीं थे तो नियम-कायदे पहले बने कैसे, और किसके लिए? इस समय हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, किसी भी धर्म का आदमी को जरूरत नहीं है। इस समय तो एक ही धर्म चाहिए, वह मानवता।

लेकिन मेरी बात बीच में ही टूट गई । किसी ने किवाड़ को ऐसे जोर से धक्का दिया मानो पूरी ताकत से लात मारी हो । हम लोगों पर जैसे बिजली टूट पड़ी । घबराकर, हड़बड़ाते हुए सँभलें सँभलें कि बाहर चीख-पुकार शुरू हो गई । पहले तो समझ में ही नहीं आया कि यह अचानक हुआ क्या ? लेकिन फिर बाबूजी के चीखने का स्वर साफ सुनायी देने लगा । वे मुहल्ले-पड़ोस के सुनने की चिन्ता किये बिना जोर-जोर से दहाड़ रहे थे । प्रभा अपने कपड़े ठीक करने लगी थी और मैं लड़खड़ाते घुटनों के साथ किवाड़ की दरारों से झाँककर देख रहा था । बाबूजी एक तरफ खड़े जोर-जोर से कह रहे थे, "जवानी हम भी आयी थी पर ऐसी नहीं कि न दिन देखें न रात । जब देखो, तब बहू को लिये पड़े हैं । अरे घर में बच्चे हैं बड़े-बूढ़े हैं, किसी का तो लिहाज करो । दस बजने आ रहे हैं और बाबूजी का अभी सवेरा ही नहीं हुआ है । ऐसी भी बेशरमी किस काम की साली ! रात भर ही ही, ही ही ! मस्त हो रहे हैं ! चूर हैं जवानी में ! न दुनिया का ध्यान है न आँखों की शरम । आग लगे ऐसे अंधेपन में । नहीं बोलते थे तो ऐसे डरते थे कि औरत न हो गई कोई शेरनी हो गई और अब बोलने लगे तो जब देखो तब उसीके आस पास मँडरा रहे हैं । सारा घर नहा लिया, धो लिया काम-काज सारा खतम हो गया और यहाँ अभी गुलछर्रे ही उड़ रहे हैं ।'

हम दोनों ने एक दूसरे को इस तरह देखा जैसे वहाँ से अचानक बम आकर बीच में फट गया हो । अब क्या हो ? फिर झाँका । बाबूजी का भाषण निर्बाध जारी था— 'हालत तो यह है और हिम्मत उल्लू के पट्ठों की देखो—ये आगे पढ़ेंगे । लाटसाहब ने खत्ती गाड़ दी है न ? साले नवाबजादे कहीं के ।

हुँ तो रात की धोती की बात, आगे पढ़ने की बात सब बाबूजी के पास पहुँच गई । जब खूब चीख चिल्लाकर बाबूजी चले गए तो जरा-सी किवाड़ खोलकर प्रभा ने डरते डरते झाँका । और दबी-दबी, सिमटी सिमटाई-सी भीगी बिल्ली बनी चुपचाप निकलकर नीचे चली गई । मैं साहस

सचित करन लगा कि कस निकलकर सबकी आंखो का सामना करूंगा।

लगता था जस हम लोग कोई घोर अनतिक और अनुचित अपराध करत हुए रंगे हाथो पकड लिये गए हो।

सात

मगर दो दिन म ही मरे लिए घर की सारी दुनिया बदल गई। हरेक का व्यवहार कुछ नया-नया-सा लगन लगा। इन कुछ-कुछ महसूस ता मैं भी कर रहा था, लकिन सबस पहले इस बताया प्रभा न ही।

उस दिन आते हुए मुझ दर हो गई। आशकाओ स कांपत हुए जस ही घर म पांव रखा कि बाबूजी स सामना पड गया। व मजदूर के सिर पर लकडियां लदवाए चले आ रह थ। झोले म कुछ सब्जियां लटकी थीं। यह उनकी आदत थी। जब भी बाहर लकडियां या गहूं खरीदन जात ता झोला साथ ले जात और किसी सब्जीवाले का आखिरा सामान सस्ता-सा ले आते। व दिन भर खाली रहत, इसलिए लकडी गहूं या घर का अन्य सामान ले आत। अक्सर हम भाइया म इसका लकर भी झगड हो जाते कि य सारा सामान कौन लाय? सबका अपना अपनी पढाइ महत्वपूर्ण लगती थी और सबको डर था कि आत-जात क्लास का कोइ लडका या अध्यापक देखकर क्या सोचगा। जसे ही बाबूजी को दखा कि मेर प्राण सूख गए। पिछले दिना तो मरी यह आदत हो गई थी कि चुपचाप दब पांव ऊपर चला जाता और वहा अलग थला रहता। इसलिए जब भी किसी स मुलाकात होती वह या तो बाहर आत-जाते या नहान खान के लिए नीच उतरत-चढत। सोचा, अब उस दिन का गुबार बाबूजी दुबारा निकालेंगे।

लेकिन मुझे देखते ही वे बोले, बड़ी देर लगा दते हो समर, आखिर बहू खाने को भी तो बठी रहती है। खाना वाना खाकर ही घूमने निकल जाया करो न! फिर ठडा खाना शरीर का लगता भी तो नही है।'

बाबूजी के स्वर के इस वात्सल्य को तो जाने कब स मैं भूल ही चुका था। सुनकर शरीर ऊपर स नीचे तक रोमाचित हो आया। मैं तो डाँट खाने के लिए तयार था। इस अपनेपन के स्वर मे मन डर से दहल उठा। भगवान जाने क्या होने को है! लेकिन प्रभा न जल्दी ही मेरा डर निकाल दिया। उसने बताया, अब तो घरवाला का रवया हमारी तरफ स बडा उदार होता चला जा रहा है।'

मैं चौंका। दोपहर वाली बात याद आ गई। क्या, कोई खास बात हो गई क्या ?" मैंने पूछा।

नही, खास बात तो नही। बस ही हर बात म देखती हू। पहले जिन बातो पर बुरी तरह कलह होती थी अब उनको तुम्हारी अम्माजी और भाभी जान-बूझकर तरह दे जाती है। अब तो अम्मा बात-बात म कहती हैं कि वह सहारा दे देगा तो मुसीबत कुछ कम हो जाएगी। कल पूछ रही थी कि कपडे-वपडे तो है न तेरे पास ? भाभी न बटी को आइस क्रीम ली तो मरे भी पीछे पडने लगी कि तुम भी खा लो।

हूँ मैं चुप हो गया। हाँ, यही तो परिवतन मैं जब से महसूस कर रहा हूँ। और घरवाला का यह नरम व्यवहार ही मन को डर स दहला देता है। काफी देर तक कुछ नही बोला तो प्रभा न झकझोरा, क्यो, क्या सोचन लग ?

गहरी साँस लेकर कहा, कुछ नही, प्रभा, अब तुम बताओ, मैं इन घरवाला को कस समझाऊँ कि मैं अभी घर की कोई मदद नही कर सकता ? ये हैं कि मुझ पर ही सारी आशा लगाए बठ हैं। मैं तो कहता हूँ अपना और तुम्हारा ही खच निकलता चला जाए, यही बहुत है। कम-स-कम हम लोग घर पर बोझ तो नही रह जाएँगे। अपन को अलग कर लेंगे। फिर इस बार बी० ए० की पढ़ाई है। हँसी-खेल तो है नही। उधर

दिवाकर ने साफ़ बता दिया है कि अगर बी० ए० में पढ़ो तभी यह काम लेना। जिस विश्वास पर काम लिया है उसे पूरा नहीं करेंगे तो उसे बुरा नहीं लगेगा ?

खैर, इसमें बुरा लगने की क्या बात है ? प्रभा ने मेरा मन लेने के लिए पूछा।

भाई, मैंने नौकरी करने को कहकर तो यह काम लिया नहीं है। मैंने तो पढ़ाई चलाए रखने के लिए काम लिया था। इस बार पन्द्रह पन्द्रह रुपया की तो एक एक किताब आएगी। किताबें तो खैर, मैं दिवाकर से ले लूंगा। साथ ही पढ़ेंगे तो अलग से उनकी जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन तुम ही सोचो कि पचहत्तर में बचेगा क्या ? बीस तो दिवाकर ही को देने हैं। जैसे ही कॉलेज खुलेंगे एडमीशन वगैरा मिलाकर छब्बीस के क़रीब वहीं देने होंगे। उधर ये कपड़े कॉलेज जाने लायक़ रह गए हैं तुम्हीं बताओ ? तार-तार तो निकला चला आ रहा है। कम-से-कम एक कमीज-पतलून तो हो ही अपने पास। या होने को जूते नहीं हैं कलम नहीं है भाई साहब का रेजर इस्तेमाल करता हूँ एक मुसीबत है ! सारी आफ़तें तो एक साथ इसी महीने आ पड़ी हैं। कागज, कॉपी, अटर शटर में ही पच्चीस-तीस रुपये निकल जाएँगे। फिर सोचता हूँ कि तुम्हारे लिए एकाध धोती-ब्लाउज भी ले आऊँ

'तुम मेरी बात बीच में क्यों ले आते हो ? कह तो दिया कि मेरे पास बहुत हैं। जरूरत होगी तो खुद ही कह दूंगी, समझे ! मेरे लिए कुछ नहीं। अगले महीने आ जाएगा, फिर कभी आ जाएगा। इस बार प्रभा ने मुझे समझाने को नहीं, सचमुच चिन्ता से कहा।

खैर फिर भी हिसाब तो तुम्हारे सामने है ही। अब बताओ, पचहत्तर रुपया में से बचा क्या ? इनमें से कौनसी चीज कम कर दूं और क्या घर वालों की मदद दूं ? बहुत से बहुत, दिवाकर को इस बार नहीं दूंगा। फिर अचानक याद आया तो बोला, 'और कॉलेज तो आठ को ही खुल जाएंगे। मुझे पैसे मिलेंगे पन्द्रह तक। उधार तो और भी

लना ही पडगा, क्योंकि इन चीजा की जरूरत तो पहल पडगी।

फिर हम दोना देर तक अपनी अपनी मुसीबतो को एक-दूसरे से रोत रह। अपने ही विचारा म खाए खोए मन कहा 'प्रभा, यह तो म दख रहा हूँ कि बाबूजी अम्मा, भाई साहब, सभी मुझस उम्मीद लगाए बठे हैं। सभी यह दिखान लग है कि अब उन लोगा के सार कष्ट दूर हो जाएँगे क्याकि समर कमान लगा है। लकिन उन्ह य सारी बात बताया भी ता नही जा सकती। बता भी दा तो समझग नही। सबको पता है कि मिलग वही पचहत्तर रुपय लकिन सोच रह ह जस जान कहाँ की हुडी मिलगी। तुम्ही बताओ, कस समझाऊँ इन लोगा का।' आग गहरी साँस लकर कहा, और इधर यह साला रिजल्ट अलग जान मुसीबत म किये है। पता नही क्या होगा? मालूम नही, कालज भी जायन करन देगा या सार अरमान यो ही मन-क मन म रह जाएँगे? और अपन आगे मुझ अधकार का एसा सागर लहराता दिखायी दिया जिसका कही ओर छोर ही नही था।

उन दिना वातावरण म बस रिजल्ट ही रिजल्ट गूज रहा था। जिधर दखा, उधर ही दो-तीन लडक मिलकर यही बातें करते कि फलाँ पपर कसा हुआ था उसम इतन नम्बर आ ही जान चाहिएँ। उमानाथ नम्बर बढ़वान की कोशिश करन पहुँचा तो परीक्षक न कस उस धक्के लेकर निकलवा दिया और उसी न बालदवर के नम्बर चुपचाप बढा दिए निकल आया कोई ताऊ उसकी गरदन दबान वाला।

म सुनता और कान दबाकर आग बढ जाता। अब तो एक आतम विश्वास आ गया था—जा होगा दखा जाएगा। लडका की अधीरता पर दया भी आन लगी थी। पता नही किसक घर का स्थिति कसी हो!

मैंन अपनी नौकरी पर जाना शुरू कर दिया था। अभी ता स्कूल कालिज नही खुल थ इसलिए साचता था जब तक हो सक प्रभा को कम स-कम कष्ट दिया जाए। फिर ता मजबूरी हा ही जाएगी। अब तो सुबह बिना खाना खाए भी जा सकता था। ग्यारह-बारह बज तक लौट ही

सकता हूँ। जब वहाँ से सीधे कॉलिज जाना पड़ेगा तब तो बेचारी को सुबह साढ़े तीन-चार पर उठना होगा ही। वैसे भी बेचारी चौबीसों घण्टे कल की तरह जुती ही रहती है। सुबह से लेकर रात के ग्यारह-बारह तक मैंने तो उसे कभी खाली देखा नहीं। लेकिन लाख चालाकी बरतने और बड़े बेमालूम तरीके से सुबह उठने के बावजूद उसे जाने कैसे पता चल जाता और वह खुद भी उठ बैठती। मेरे बड़े अनुरोध पर जरा-सी देर या हो जाती या सोने का बहाना करती रहती। मैं जानता था कि मेरे बाहर निकलते ही वह उठकर काम में लग जाती होगी। मुझे बड़ी कचोट होती। अब मेरे जल्दी उठने से उसे भी उठना पड़ता है पहले कम-से-कम छः बजे तक सोती तो थी।

काम पर पहुँचने का तरीका भी बड़ा दिलचस्प था। हमारे शहर में दो स्टेशन थे—एक हमारे घर के पास पड़ता था और एक उधर जहाँ मुझे काम करने जाना होता। सुबह एक गाड़ी जाती थी और बीच में कहीं रुकती नहीं थी। मुश्किल से पाँच मिनट का रास्ता था। गाड़ी के रुकते ही मैं रेल की टूटी तारों वाली बाड़ से फुरती से बाहर हो जाता और शाम से इस तरह सड़क पर चलने लगता जैसे मैं तो सड़क पर ही चल रहा था। पहले दो-एक दिन तो जो हालत थी उसका बयान नहीं कर सकता। प्रभा को मैंने बताया था मेरा दिल ऐसा धड़क रहा था कि कानों में बजता सुनायी देता था। रेल में एक मन घबराता कि चक्कर आने लगते। बार-बार सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो जाता और हर पल लगता कि इधर से टी० टी० आया उधर से काले कोट वाले आदमी ने मेरी बाँह पकड़ी। लेकिन यह तो पहले दो दिनों की हालत थी। इसके बाद तो हिम्मत बढ़ गई और मैंने तरह-तरह के बचाव के पैंतरे सीख लिए। गाड़ी के चलने तक मैं निश्चिन्त हो तटस्थ की तरह घूमता रहता, मानो किसी और गाड़ी का इन्तजार कर रहा हूँ या किसी और काम से यहाँ आया हूँ। टी० टी० पर आँख रखता और जैसे ही गाड़ी चलती उससे सबसे दूर पड़ने वाले डिब्बे में चढ़ जाता। जैसे ही गाड़ी रुकती कि सबसे पहले

प्लेफार्म पर उतरकर फिर इस तरह टहलने लगता माना मैं तो जाने कब का यहाँ टहल रहा हूँ मुझ इस रेल स क्या लना देना !

इस तरह रल का यह सफर एक मनोरजन नीं रहता था और एक भारी मुसीबत स छुटकारा भी इसकी वजह स मिल गया था, वरना सुबह ही जितना पदल चलकर आना पडता उसकी तो कल्पना स ही मैं डर गया था। गर्मियो म तो जस-तस घूमते हुए आया जा सकता था, मगर जाडो म अपने पुराने कपडो म ठण्ड स ठिठुरते हुए आना तो सचमुच मुसीबत होती। उस कल्पना स ही रूह काँप जाती।

लकिन काम शुरू म जितना रोचक लगा, बाद म तबाअत उतनी ही उससे ऊबने लगी। पाँच स ग्यारह तक प्रूफ के गीले खुरदरे कागजो पर फैलती स्याही स छ घण्टे लगातार उलटे-सीधे निशान बनाते-बनाते सिर भन्नाने लगता था। उस समय मैं और भी डर जाता कि अगर यह काम सचमुच इतना ही थका देने वाला और कष्टदायक है तो कालज के दिनो म यहाँ स जाने के बाद पढ लिख क्या पाऊगा ! कुछ समझ म ही नही आएगा। पहले कुछ दिन तो जोश जोश म मैंने इतने सारे पन्नो के प्रूफ एक साथ देख डाले कि सारे प्रेस वाले चकित रह गए। लगता था कि इस जरा-से काम म दिक्कत ही क्या है ! केवल पढना ही तो है जहाँ गलत लगे वहाँ निशान लगा दो। लकिन मनजर ने बाद म सारे पन्ने लौटा दिए क्योकि उनमे ढेरो गलतियाँ भरी पडी थी। मैने तो खूब ध्यान से देखा था ये कैसे छूट गई, मेरी समझ म ही नहीं आया। धीरे धीरे वह सारा जोश समाप्त हो गया और एक-एक अक्षर कॉपी से मिला मिला कर जाँचने के बाद अपना सिर गीली मिट्टी के लोदे-जैसा लगता था। प्रेस की मशीनो की सस्स और खटर खटर चलती रहती और इन आवाजों के ऊपर सारे गले से चीखकर दिये गए हुक्म गूजते रहते—'नोट टाइप उभर क्यों नहीं रहा है ?' 'अबे स्याही ज्यादा मान लगी।' 'अबे देख क्या रहा है मुँह फाड़कर, कागज लगा।' मनजर अपनी स्याही लगी पतलून मे दोनों हाथो को ठूँस पास आकर खडा हो जाता और मुझे प्रूफ

प्रूफ़ दखत हुए दखता रहता तो मुझे एसी घबराहट और बचनी होती जब इम्तहान के दिनो म इन्विजिलटर के पास आकर खड़ हो जान पर होती था। फिर वह चलत-चलत कह जाता बड़ सुन्दर प्रूफ़ दख रहे हैं निस्टर, मशान खाली पड़ी है। अभी तो करक्शन भी टाइन लेगा। जरा ध्यान से देखिए और कई बार दखिए। प्रूफ़ दखन का काम तो झाड़ू लगान का काम है। जितनी बार झाड़ा उतना ही बार कूड़ा कहीं-न-कहीं से दुबारा निकल आता है। इसके अलावा और जिधर दखो उधर ही कालाच स्याही छायी रहती। एक तरफ़ मुमरा बटाबटा पानी म भिगो-भिगोकर कुछ कूटता रहता और दूसरी तरफ़ मशानमन, दो-चार इटा का चूल्हा बनाकर स्याही औटाया करता। सरेस की बदबू से उबकाई आता रहती और मशीना स टपकती काली तलदार कीचड़ मदबदाकर कपड़ों पर लग जाती। सिंधी होटल का लड़का हर-दस मिनट बाद अपने गिलाफ़ा का तारों के लटकन म लगाए कभी किसी को और कभी किसी को चाय दता रहता या मनजर क पास ढलान के लिए आए ग्राहकों की खातिर के वक्त मुमरा उसे आवाजें दिया करता।

लेकिन वहाँ काम करने वाले लोग इतने दिलचस्प थे कि मन ऊबता नहीं था। पहल तो बड़ा अजनबी-अजनबा-सा लगता था, लेकिन जल्दी ही मुझे व लाग अच्छे लगन लगे। टाइपा को केसा म डिस्ट्राब्यूट करत या कम्पाज करत हुए बड़े रस ल-लकर किसी लड़की की प्रम-कहानी या अपन पड़ोसी की व्यभिचार-कथा, काल्पनिक या कई सिनमाओ क घात-मल स तयार किये गए अजाबोगरीब किस्सों का बयान हुआ करता। चाहे बात सिनेमा की हो या अपन जीवन की, सबक पास विषय एक ही था—अपने-अपने सबस अनुभवा का बयान। उनम एक लड़के न मरा ध्यान अपनी ओर अक्सर खींचा। वह अक्सर चुप ही रहता था और उसक चेहरे बाल चाल क ढग का दखत ही लगता था कि वह किसी खराब घराने का है। अक्सर चुप ही रहता था मानो अपन का इन सबक स्तर क साथ मिलाने को तयार न हो। बुड्ढे मशीनमन से बहुत कम सिनमा खोड़

थे। और उन लोगों के सारे किस्से मैं रोज प्रभा को आकर सुनाया करता।

जब बारह बजे की कड़कड़ाती धूप में पसीने से तर-बतर घर आता तो भूख के मारे चक्कर आ रहे होते, लेकिन गरमी के कारण दो गिलास पानी चढ़ा लेता और फिर देर तक खाना खाने की इच्छा नहीं रहती। खाना मैं ऊपर ही मँगा लेता। प्रभा मेरे लिए इतनी देर भूखी बैठी रहे यह बात मुझे खलती थी। इसलिए पहले ही दिन मैंने कहा था, 'यह तुम्हारी क्या बेवकूफी है, प्रभा? इतना पढ़ लिखकर भी तुम हो वही मूर्खा ही। एक बजे तक मेरे लिए बैठे रहने की क्या जरूरत है? वक्त पर खा लिया करो न दिन भर काम करती रहती हो।'

'मैं तो अपने वक्त पर ही खाती हूँ। तुम समझते हो तुम्हारे लिए इतनी देर बैठी रहती हूँ? घर के काम-काज से छुट्टी ही अब मिलती है।' और प्रभा मुँह बनाकर कहती, "बड़े खूबसूरत हो न, जो तुम्हारे लिए इतनी देर बैठी रहूँगी? यहाँ खाने के लिए किसी की राह नहीं देखते।

"नहीं देखते तो पहले क्या नहीं खा लेती?" उसकी चालाकी पर मुझे अच्छा लगा, आई खूबसूरत की बच्ची। मिलाकर देख लो, तुम्हारे घर वालों में सबसे ज्यादा खूबसूरत हूँ। एक-से एक बनमानुस रखे हैं सब!

'ए ऽ ऽ ए, हमारे घर वालों का अगर कुछ कहा तो बुरा हो जाएगा। हाँ तो नहीं, जब तक कोई कुछ कहे नहीं सिर पर ही चढ़ आते हैं।" उसने त्योरियों पर बल डालकर आँखें तरेरीं।

हम भी तो देखें कि कहकर ही कोई किसी का क्या कर लेगा?" मैंने चिढ़ाया।

'तो हम चलते हैं, तुम यहाँ अकेले बैठकर बको।' वह झमककर उठकर चल दी। 'एक तो अम्माजी जिठानीजी की जली-कटी सहकर यहाँ इनके पास बैठो, और यहाँ फिर यह सब बक। हम ही तो फालतू मिले हैं?" और उसका गला भराया ही था कि घूँट भरकर उसने सारी बात को परिहास बना दिया, 'तुम भी तभी ठीक रहते हो, जब बाबूजी हल्ला

मचात हूँ।'

मैंने नजाने क्या सोचकर उसका हाथ पकड़ लिया 'मेरा क्या गया? तुम ही हो रही थीं लाल उस वक्त, जब सिन्दूर न नहला दिया हो।'

'ओहो, अपनी नहीं बताएँगे कि कौन रह थे। गले से आवाज नहीं निकल रही थी और अब शान ऐंठ रहे हैं।' वह उस दिन की बात से हँस पड़ी।

'अच्छा छोड़ो भी, तुम भी क्या बेकार की बात लेकर बैठी हो! आओ, हम लोग खाना खाएँ।' मैं उसका हाथ थाली की ओर खींचकर उससे जबरदस्ती रोटी तुड़वाने की कोशिश करने लगा।

"हाय, तुम मुझे जिन्दा नहीं रहने दोगे। कोई दल तो घर से बाहर ही निकाल दे। हूँ, साथ-साथ खाना खा रहे थे!" उसने डरते हुए बाहर की ओर देखा।

'अच्छा बको मत, आओ चुपचाप!' मैंने उसे डाँट दिया। मन में सोचा, एक तो बेचारी इतनी देर तक बैठा रहे और फिर साथ खाने का सुख भी न पाए। आँखों के आगे भविष्य की वह तस्वीर कौंध गई जब हम और वह मेज पर बैठकर साथ-साथ खाया करेंगे। जाने से झाँकती हुई वह मेज कलिज के खाली पीरियडों के लिए प्रतीक्षा किया करेगी।

एक खोई-खोई-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर भी उभरी। लगा कि कुछ इसी तरह की तस्वीर उसके दिमाग में भी कौंधी। उसने उठकर किवाड़ बन्द कर दिए। 'अच्छा पहले किवाड़ बन्द कर लें' और फिर एकदम बच्चों की तरह कंधे हिलाकर मचलकर कहने लगी "हमें तो शरम लगती है साथ खाते"

'पिटोगी, अगर शरमाने-वरमाने का बहाना किया।" वह उठने की कोशिश करने लगा तो मैंने फिर खींचकर बिठा लिया।

और उस समय सारा घर स्तब्ध रह गया जब सुना कि मैं तो जैसे-तैसे सेकण्ड डिवीजन में पास हो गया, लेकिन अमर का कहीं नाम ही नहीं

निकला। घर की वह तस्वीर अभी भी मेरे सामने है। अमर एक ओर बैठा सुबक रहा था। सारे घर में मुर्दनी-सी छायी थी। इस चोट की गहराई के सामने मेरे पास होने की खुशी को किसी ने महसूस ही नहीं किया था। उसे अब फिर एक साल नये सिरे से पढ़ाना होगा, इस कल्पना की विभीषिकाएँ सबकी आँखों के सामने नाच रही थीं। बाबूजी, पहलवानों की तरह दोनों हाथ छाती पर बाँध उद्वेग से इधर से उधर टहल रहे थे, 'उल्लू के पट्ठों से कहते थे कि पढ़ो, पढ़ो। पर उन सालों को फुरसत कहाँ? एक की शादी क्या कर दी, हाथ से ही चला गया। बड़े छाती ठोककर कहते थे, बाबूजी, आपको क्या है? मैं चाहे जो कहता रहूँ, लेकिन फर्स्ट डिवीजन न आए तो कहना।' अब ले चाट, इस सकण्ड डिवीजन को रखकर। और अमरजी, तुम तो साफ सुन लो बात। मेरे तो बस का है नहीं कि हर बार रुपया तुम्हारे ऊपर पानी की तरह बहाऊँ। तुम्हें अपनी मटरगश्ती से फुरसत हो तो पढ़ने लिखने में भी मन लगे। पढ़ना हो तो अपने बूते पर पढ़ो, वरना भीख माँगो।'

प्रभा ने बताया कि भाभी वैसे तो अपने अमर लालाजी के फेल होने पर बड़ा दुःख प्रगट करती रहीं, उन्हें सान्त्वना बँधाती रहीं, लेकिन भाई साहब से कह रही थीं 'अच्छा अन्धेर है इस घर में। एक तो दिन रात हड्डे पेल-पेलकर इन मुस्टण्डों को पालो-पढ़ाओ, और इनको इतना तक खयाल नहीं है कि अगले के भी तो बाल बच्चे हैं। उसके आगे भी तो जिन्दगी पड़ी है।' तब फिर भाई साहब ने समझाया, 'चुप रहो, हमारी जिन्दगी तो सिर्फ इसी काम के लिए बनी है कि बैल की तरह कमाएँ और इस गड्ढे में डालते रहें" और इसके बाद वे रो पड़े थे

भाई साहब का दुख मुझे बहुत गहराई तक मथ गया।

सारे घर वालों के ताने और विरोधों के बावजूद मैं दिवाकर के साथ जाकर बड़ी मुश्किल से अपना नाम कॉलेज में लिखा आया। कॉलेज में भरती होने के लिए लड़कों की जो धक्कम-पेल थी, जो सिफारिशें और

सिक्डमें यों उन्हें देखते हुए तो कहना चाहिए कि इस सबके मुकाबले पास होना कतई कठिन नहीं है। उस समय तो यही लगता था कि किसी तरह एडमीशन की यह 'वतरणी' पार हो जाए तो जीवन सफल हो। कोई पूछने वाला नहीं था और बड़े-बड़े फर्स्ट क्लास लड़के प्रिंसिपल के कमरे से वाइस प्रिंसिपल के कमरे में टकरा रहे थे। कोई किसी एम० पी० की सिफारिश लिये चला आ रहा था और किसी के साथ कोई मजिस्ट्रेट खुद अपना आदमी भेज रहे थे। मेरी भी उम्मीद यही ला रही थी कि एक-एक क्लास में साठ-साठ लड़के होंगे और इस तरह के हर क्लास में चार-चार सेक्शन तो कम-से-कम होंगे ही। शैतान की आंत की तरह सिलसिला बढ़ता ही चला जा रहा था। साइन्स आर्ट्स के हिसाब से पहले क्लासों को बाँटो, फिर ए, बी, सी, डी सेक्शन्स। मुझे भी अपने भरती होने में पूरे तीन दिन बिताने पड़े। कालेज का पुराना विद्यार्थी होने के कारण हो भी गया। मुसीबत तो बेचारे फर्स्टइयर वालों की थी।

लेकिन ताज्जुब यह था कि घर में एडमीशन के पहले छटा हुआ बवण्डर और विरोध दो दिन में जैसे जादू के जोर से कहीं उड़ गया। सबसे ज्यादा असर के शिकार में दिक्कत हुई।

अब प्रभा के लिए असली मुसीबत आई। प्रभा से ग्यारह बजे छूटते ही मुझे कालेज जाना पड़ता था और वहाँ से तीन बजे छुट्टी मिलती थी। हमारा आखिरी पीरियड तीन बजे ही पड़ता था। वह तो कहो कॉलेज में अभी एम० टी० (मिलिटरी ट्रेनिंग) शुरू नहीं हुई थी वरना साढ़े-चार से लेकर साढ़े सात तक वहीं पिसना पड़ता। न जाओ तो आठ आने फाइन दो। तब तो मुझे साढ़े चार बजे घर से निकलकर बड़ी मुश्किल से रात को साढ़े सात या आठ बजे घर पहुँच पाया करूँगा। खाने की समस्या फिर बुरी तरह सामने आ गई। प्रभा ने कहा तुम क्यों बेकार सिर खपा रहे हो? मैं कहे तो रही हूँ कि मुझे तीन बजे ही उठकर कुछ बना दिया करूँगी।

'एक तो तुम यों ही सारा दिन काम में जुती रहती हो फिर अगर

से यह ? साढे ग्यारह बजे सोकर ढाई-तीन बजे सुबह उठोगी ? आखिर तुम्हारा इरादा क्या है ?" मैंने नकली गुस्से से कहा, "साफ ही कह दो न, मैं तुम्हे यो ही मार दू ।

'ओहो जरा सा काम करन म नही मरी जाती हूँ । और काम क्या मुफ्त करूँगी ? कह देती हूँ सारा बदला चुकाना पडेगा ।"

मैं उसके इस ढग और अदा पर रीझ गया । गदगद् कण्ठ स बोला, "दखा जिदा रहा तो पाई-पाई चुकाऊँगा। सब कुछ इसीलिए तो कर रहा हू कि तुम्हे ठीक से रख सकू नही तो चार बजे से रात के दस बजे तक जुता रहूँ, मुझे क्या दौरे आते है ?" फिर अचानक सँभलकर कहा, 'नही, जो कुछ भी हो, तीन बजे तुम्ह किसी भी हालत म नही उठने दूगा । अच्छा एसा क्या नही करती कि रात को बनाकर रख दिया करो '

'लकिन सुबह तक बासी जो हो जाएगा '

'नही होगा बासी । और सुबह दस बजे प्रेस म तो खा ही लिया करगा । इतनी दर म क्या बासी हो जाएगा ?'

मुझे लगा प्रभा जस राजी हो गई । बोली, "और दिन भर उस बरतन को साथ लिये घूमा करागे ?"

'साथ लिये तो बहुत घूमा ! वही कही प्रेस म रख दिया करूँगा । लौटते वक्त उठा लाए । एकदम पास ही तो है ।

लेकिन उमन एकदम टालकर कहा, 'अर जी, कुछ नही होना । सुबह ही बना दिया करूँगी । गरम-गरम खाना खाकर जाया करोगे तो जरा स्माट भी लगोगे । कहत हैं बासी खाना खान स दिमाग ठस हो जाता है । सारा दिन आलस्य रहता है । फिर एकदम याद करके जरा उमगे स्वर म बोली और हाँ, एक बात बताएँ अम्मा न कह दिया है कि अगर खाना ल जाओ तो ढग के चार पराँठ सेंक दिया करूँ । बाहर कोई दोस्त ही साने बठ जाए या देख भाले तो रोटी अच्छी नही दीखती ।

"अच्छा ! यह मुझे नहीं मालूम था। मैंने चिन्ता भरे स्वर में कहा "प्रभा, मैं सारा घर को जानता हूँ। यह सब इसलिए है कि मुझे दस-ग्यारह को तनखा मिलेगी। नहीं तो मैंने जो कलिज के लिए कपड़े बनवाए हैं वे या किताबें-कापियाँ और फ्रास—तुम समझती हो सब यों ही चुपचाप हो जाता ? एक-एक चीज पर हत्या हो जाती हत्या ! अब तुम्हीं बताओ, इन्हें उनसे क्या दूंगा ? अच्छा एक काम करें तुम किसी तरह भाभी को इस महीने के हमारे सारे खर्चे का हिसाब दे सकती हो ?

सो मेरी खोपड़ी पिट और तुम अपने अलग खड़े तमाशा देखो। तुम्हीं तो अकेले चालाक हो न ? अम्मा दाँत किटकिटाकर कहेंगी खसम की कमाई का हिसाब दे रही है।

'तो फिर तुम्हीं बताओ कैसे समझाया जाए ? बस तो मैंने अब जान लिया है कि ज्ञान के सिवा घर वाले पर बहुत ही कम खर्च रखेंगे। लेकिन दर्द आ क्या होता है !' और एक बड़ी गहरी साँस इस तरह अपने आप फूट पड़ी कि सारा वातावरण आर्द्र हो आया।

कुछ देर की चुप्पी के बाद मैंने सिर झटककर कहा प्रभा मेरे तो जी में आता है कि छोड़ो इस सारे झंझट को और सारी इस मुसीबत को गोली ! किस चक्कर में जाकर उलझ गए ? न दिन को चैन न रात को आराम। झिक झिक मार दिन रात की परेशानी। सुबह चार में उठकर रात के दस बजे तक पागलों की तरह कभी इधर और कभी उधर भाग रहे हैं। कहीं अपने आनंद से बैठकर दो घड़ी आठ-सतर रुपये महीने में मस्ती से फटकारें। सुबह दस बजे जाएँगे और पाँच बजे घर हाजिर हो जाया करेंगे। ज्यादा-से-ज्यादा छुट्टियों ही तो लेना पड़ा करेंगी '

प्रभा ने हमदर्दी से मेरा चेहरा देखा लेकिन मुसीबत सिर्फ रुपये की ही तो नहीं है। उतना तो तुम्हें अम्मा भी भेजता है। असली मुसीबत तो यह है कि हमारे सपने बहुत ऊँचे हैं। भविष्य के नक्शे बिलकुल अलग हैं।

'यही तो सारी मुसीबतों की जड़ है। लेकिन वे सपने मेरे अकेले के ही तो नहीं हैं,' मैंने परेशानी से कहा। अब तुम्हीं बताओ कि इन सपनों को कहाँ ले जाएँ? दिल है तो सपने भी हैं।'

"आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ये सब?' प्रभा प्यार से झिड़क-कर बोली, 'अरे, जरा सी मुसीबत है, दूर हो जाएगी। सपनों का सुख भी तो हम ही उठाएँगे। उनके लिए जरा सी तकलीफ भुगत लेने में हर्ज ही क्या है? और चाहे तुम्हारे साथ कोई हो या न हो, मैं तो हूँ ही।' उसने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया।

और मेरा हृदय इस तरह गद्गद् हो आया कि मन हुआ उसकी गोद में सिर रखकर रो पड़ूँ। यह किस स्वर्ग की शाप भ्रष्टा देवी है जो अपना समय गुजारने यहाँ चली आई है। अगर यह मेरी हिम्मत को न ललकारती रहती तो क्या मैं इस सबको पार कर पाता? कभी नहीं, कभी नहीं। मैं तो जाने कब का टूट चुका होता। भर्राए गले से मैंने पूछा, अच्छा प्रभा, एक बात बताओ, इतने कष्टों, मुसीबतों और निराशाओं में भी तुम्हारा दिल नहीं घबराता? जिन दिनों मैं बोला नहीं करता था और तुम्हें तंग किया करता था, उन दिनों जरा देर को भी तुम्हारे मन में पराजय की भावना नहीं आयी थी?'

"मैं?' उसने निहायत ही आत्म विश्वास भरे लहजे में कहा, 'मुझे तुम अभी नहीं जानते। मुझमें बहुत ज्यादा जीवनी-शक्ति है। इससे भी ज्यादा मुसीबतों में मैं विचलित नहीं हो सकती। विवाह से पहले बड़ा डर लगा करता था कि आगे जाने कैसे होगा। लगता था कि किसी भी मुसीबत को मैं सह नहीं पाऊँगी। अब जब देख लिया है कि तकलीफ़ किसे कहते हैं तो लगता है कि बस, इसी के लिए इतना डरना था?' और शायद अध्यापिकाओं-जैसी अपनी इस भाषा पर वह खुद ही लजाकर नीचे देखने लगी। मुझे लगा, जैसे उसके चेहरे से एक तेजोज्ज्वल अरुणाभा फूट फूटकर ज्योतिमण्डल-सा बना रही है।

'नहीं प्रभा, मैं कोई हारा थोड़े ही हूँ! मैं तो यों ही कह रहा था।

तू देखती रहना मैं सब करूँगा। मैं तेरे लिए क्या करता हूँ, क्या कर सकता हूँ, अभी तुझे पता ही नहीं है 'और अपने रोमांचित हाथों से मैंने उसके दोनों कंधे पकड़कर उसका सिर उठा दिया। उसकी झुकी पलकों वाले चेहरे को देखकर एक अजब-सा खयाल मन में आया मान लो, इस बीच ही यह माँ बन गई तो ? और मुझे लगा, मेरी बात का जाने कैसे वह समझ गई है और उसका चेहरा पहले से भी ज्यादा गुलाबी हो आया है।

आठ

थकान का भी अपना एक अजब नशा होता है। अपनी कोठरी के सामने वाली छत पर, मैं एक छोटे-से खटोले पर इस तरह पड़ा था जैसे पानी पर रखी नाव पर पड़ा हूँ। सिर नीचे लटक रहा था, हाथ ढीले पड़े थे और पाँव जमीन पर टिके थे जैसे सारे अंग निर्जीव होकर झूल रहे हों नीचे सब लोगों के बातें करने की आवाज आ रही थी हूँह, अब अमर की शादी होगी।

जैसे ही घर में कदम रखा कि एक परिचित आवाज को सुनकर चौंक गया। बैठक में जरा-सा झाँककर देखा, मामाजी थे। आश्चर्य हुआ। मेरी शादी के बाद वे अब आये थे। नाराज हो गए थे। जरा-सा खिसका और ऊपर चला गया।

तभी नीचे से आवाज आयी, 'अरे समर, तू तो हमसे मिला ही नहीं बेटा।' उनको शायद मेरे आने की खबर मिल गई थी। बड़ा अनिच्छा से उठकर नीचे आया। वे बैठक में ही बैठे थे, शायद नाराजी के कारण भीतर नहीं आये थे। मैंने चरण छुए तो उन्होंने बाँह में भर

कर पास ही बिठा लिया और बाबूजी से बातें करते रहे।

समझो ठाकुर साहब, जो कुछ आपको करना धरना है, सो खुद ही देखिए भालिए। लड़की मेरी निगाह में थी सो मैंने बता दी। क्योंकि बात ऐसी है जी, आदमी करता अच्छे के लिए है और समझा बुरा जाता है। समर की शादी में जीजी ने जो कुछ कहा, मेरे लिए तो डूब मरने को उतना ही काफी है।" वे बाबूजी की बात का गुस्से से जवाब देते हुए बोले।

बाबूजी मूढ़े पर बैठे बैठे तरह-तरह के मुंह बनाते दियासलाई से कान का मल निकाल रहे थे। लगता था बलपूर्वक अपने को व्यस्त बनाए रख रहे हों। आखिर उंगलियों से कान झाड़कर बोले, अरे छोड़ो, तुम भी क्या औरतों की बातों पर ध्यान देते हो चन्दन जी! इन लोगों को कुछ और काम तो है नहीं, उठाई जबान इधर दे मारी, उठाई उधर दे मारी।' फिर मुलायम स्वर में समझाते हुए-से बोले 'लड़की तो तुमने देख ही ली होगी? कुल-खानदान कैसा है? जरा खुलासा तो करो।"

हूँ, तो फिर किसी लड़की के बारे में बातें हो रही हैं! मैं चुपचाप सुनने लगा।

सो बात झूठी है," दोनों हाथ कन्धों के ऊपर मोर के पंखों की तरह फैलाकर वे बोले, "लड़की तुम देख लो, अमर को दिखा लो, और दो-चार मुहल्ले पड़ोस वालों को दिखा लो। सारी बातें आप खुद ही करो साब। मुझसे तो उन्होंने बातचीत करने को कहा तीन दिन पड़े रहे। मजबूर कर दिया तो आ गया-हूँ। और कुछ मुझसे नहीं होगा।

च्च् भई वो तो सब ठीक है। लेकिन '

अब मुझसे नहीं रहा गया। बोला बाबूजी तुम्हें जल्दी क्या पड़ रही है? अभी वह फेल होकर चुका है और अब शादी कर दो ऊपर से, सा और फेल हो

चुप रहो जी तुम, समझते तो कुछ हो नहीं और बीच-बीच में

अपनी छोकत हो,' बाबूजी ने डाट दिया। "अरे, अभी शादी हुई जा रही है ? साला तो बातचीत चलती है। मरी आंखों के आगे सब हो-हवा जाए तो लगा नहाऊँ। पता नहीं फिर क्या हो ? उनकी आवाज भर्रा गई और उसे नयत करने के लिए वे सामने रखा हुक्का पीने लगे। मामाजी ने गुडगुडाकर उनकी तरफ़ बढा दिया था। एक कश लगाकर बोले, 'पास-पड़ोस तो लगा ही रहता है। इसके लिए कोई जिन्दगी रुकती है ? हाँ तो चन्दनजी भाई बुरा मानने की बात तो है नहीं, समर की शादी की तरह गोल-मोल बात हम इस बार नहीं रखना चाहते। लेन देन की बात साफ होगी '

बाबूजी के यों डांट देने से अपमान की कडवाहट दिल में उमड उठी और आंखें भर आईं। मुझसे तो तबीअत भर गई, अब अमर की शादी और कर दो ! अभी तो घर में चख चख कम है न, सो एक आदमी का खर्चा और बढा लिया जाए। अरे, ठीक है शादी किसी की नहीं रुकती, लेकिन जरा उसे अपने पैरों पर खडा होने लायक तो हो जाने दो। लेकिन, नहीं। यहाँ तो बीच में बोलना गुनाह है। अब लेन-देन की बातें साफ़ होंगी फिर लेन देन पर झगडा होगा। कोई मना करे, या कुछ कहे, अब मानेंगे थोडे ही। इन बारे में बात करने का अधिकार तो सिर्फ इन्हीं लोगों को है। हम या तो बेवकूफ़ हैं या बलि के बकरे। अभी तक तो मैं मरता था, अब बेचारा अमर । और मुझे लगा कि मेरा यहाँ बैठना बेकार है। अच्छा-खासा आराम कर रहा था।

उठने लगा तो फिर मामाजी ने हाथ पकडकर बिठा लिया 'अरे अरे बडो भाई, चल कहाँ दिए ? हम तो जाने कब से तुम्हारी राह देख रहे थे ! चले कहाँ गए थे ?'

घूंट लीलकर बोला, 'कालेज चला गया था मामाजी ! अमर ने भाई साहब का चिट्ठियों का लाकर बाबूजी की गोद में रख दिया और निहायत तटस्थ की तरह चला गया, मानो उसे इन सारी बातों से कोई मतलब ही न हो।

मामाजी बोले, 'अच्छा अच्छा, कालेज जाने लगे ?" फिर प्रसन्नता से सिर हिलाकर कहा, "बड़ा अच्छा है। खूब पढ़ो बेटा ! विद्या ही सच्चा धन है।"

मैं चुप रहा।

'कहो, और तो सब ठीक ठाक है ? बड़े कमज़ोर दिखायी दे रहे हो। क्या बात है ? तन्दुरुस्ती की तरफ ज्यादा ध्यान व्यान नहीं देते ?' फिर बहुत अर्थ भरे ढंग से हँसे, "आजकल सुबह सुबह में सुबह परेड करने नहीं जाते ?

'नौ बजे से पहले कँवर साहब का सवेरा ही नहीं होता। परेड क्या दोपहर में जाएँगे ?" बाबूजी ने बच्ची को खिलाते हुए धीमे स्वर में कहा, लेकिन उनकी बात के तीखेपन से मैं तिलमिला उठा। वे उस दिन की याद दिला रहे थे।

मन में आया कि झटके से सिर उठाकर कह दूँ कि हाँ, सुबह दस बजे से पहले मेरी आँखें नहीं खुलतीं, कहिए क्या कहना है ? लेकिन किसी तरह अपने पर जब्र करके बोला "नहीं मामाजी, ऐसी कोई खास बात नहीं है। गरमी इस बार इधर ऐसी ज़बरदस्त है न, कि कुछ भी करने को हिम्मत नहीं पड़ती।'

हाँ सो तो है ही। सो तो है ही।' फिर बाबूजी की तरफ से मुँह खींचकर होठों की तरफ बढ़ाते बोले अब कुछ थोड़ा घर की तरफ़ भी ध्यान दो, बेटा ! यहाँ भी कुछ मदद करने की बात सोचो। माँ-बाप का फ़र्ज़ सबसे बड़ा है। अब तुम बड़े हो गए गृहस्थ हो गए अपने छोटे भाइयों को पढ़ाओ। अकेला बड़ा कहाँ तक करेगा ?"

इस बार बाबूजी फिर बीच में बोल पड़े, इन्हें क्या चिन्ता है ? ये बने रहें, और इनकी बहूरानी बनी रहें। बाक़ी सारी दुनिया भाड़ में चली जाए इनकी बला से !

कोई कड़ी बात कहने ही जा रहे थे कि मामाजी ने उन्हें रोक दिया मैंने कहा तुम चुप रहो ठाकुर साहब, बात मैं कर रहा हूँ और

बोल आप रहे हैं। एकदम बच्चा तो वो है नहीं जो समझता न हो। और बेटा, तुम्हारी शादी कर दी तुम्हें पढ़ा लिखा दिया, आखिर अब कब तक तुम माँ-बाप के सहारे रहोगे ? खुद दुनिया भर की सुनी-बातें सहकर यह जो मा-बाप बच्चा को पढाते लिखाते हैं वह किसी उम्मीद से ही तो करते हैं न ?' उन्होंने मुझे फिर बगल में भींच लिया।

जरूर बाबूजी बैठकर मामाजी के सामने रोए होंगे, वरना मामाजी को पता कैसे हुआ ? इन्होंने कहा होगा कि मैं समझाऊँगा। सब-कुछ पहले से पका-पकाया है। पूरी योजना मेरी समझ में आ रही थी। लेकिन शायद दो वर्ष में पहला बार कोई घर वाला मुझसे इस प्यार से बोल रहा था, घर की बातें समझा रहा था। सारा आशय समझते हुए भी यह अपनापन मुझे पिघलाए दे रहा था, आँखें गीली हो आईं और मैं चुपचाप पाँव का अंगूठा मोड़ता-सीधा करता सुनता रहा।

"शादी-ब्याह तो सभी के होते हैं भाई लेकिन इसके लिए कोई अपने भाई-बहन, माँ-बाप को थोड़े ही छोड़ देता है ? जहाँ चार बरतन होते हैं, खटकते ही हैं। औरतों का क्या है, पल में इधर, पल में उधर। समझदार आदमी को तो उनकी बातों में आना ही नहीं चाहिए। तुम खुद हमसे ज्यादा पढ़े लिखे हो, अच्छी तरह समझते हो। वो तो अलग घर, अलग खानदान से आयी हैं, उन्हें किसी के आपसी रिश्ते से क्या लेना देना ! खून का रिश्ता तो तुम्हारा आपस में है। वो अलग थोड़े ही हो जाएगा। सो बेटा, ये सब तो घर गिरस्ती के मामले हैं। खूब फूंक-फूंक-कर कदम रखना चाहिए।' मामाजी मेरे कन्धे पर हाथ फेरते रहे।

और तब मेरे भीतर कोई चीत्कार कर उठा—मामाजी तुम नहीं जानते ! तुम नहीं जानते, इस घर की हालत क्या है ? अगर जानते होते तो यों अमर की शादी कराने नहीं चले आते। सोच सब गया, लेकिन यों ही अपराधी की तरह आँखें धरती में गड़ाए सुनता रहा।

'तुम कहो, सास-बहुओं की कहन-सुनन ? सो भैया मेरे, किस घर में यह नहीं होता ? बड़े-बड़े लखपतियों के घरों की हालत तो मैं जानता

हूँ। घर घर मिट्टी के चूल्हे हैं, समझे !" मामाजी मेरी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते रहे।

जाने क्यों न चाहने पर भी मेरे हृदय में रुलाई उमड़ रही थी। ज़ोर से मन में आ रहा था कि दौड़कर बाबूजी के चरणों में गिर जाऊँ, खूब रोऊँ क्षमा माँगू कि मैंने बहुत ज्यादतियाँ और अशिष्टताएँ की हैं। आज तक कभी इस निगाह से सारी चीज़ को देखा ही नहीं। मेरा व्यवहार उनके प्रति सचमुच कितना उपेक्षापूर्ण और गलत रहा है। बड़ी ही कठिनाई से केवल इतना ही कह पाया, "मामाजी मैं आगे पढ़ना चाहता हूँ।'

'पढ़ने को कौन नहीं पढ़ना चाहता, बेटे ! लेकिन भैया सब कुछ अपने घर की हालत देखकर होता है। तते पाँय पसारिये जेती लाँबी सौर। तुम्हारा भैया भी है वो भी तो अपना फ़र्ज पूरा कर रहा है या नहीं ? घर में रहकर सब सोचना पड़ता है मेरे मुन्ना ! अब तुम गिरस्ती में आये हो, समझने की कोशिश करो कि दुनिया चलती कैसे है ? बहू को ज़रा दबा के रखो उसे अदब-क़ायदा सिखाओ। और अगर दो ही दिनों कहीं प्यार में आकर तुमने सिर चढ़ा लिया तो उसकी सीखती है बलाय। लड़कियों को तो सभी कुछ ससुराल में सीखना पड़ता है, घर पर उछलने-कूदने के सिवा कोई काम करती होगी वो ?' और मामाजी अपने मक्खन-जैसे मुलायम और शहद से मीठे दावों में 'औरत को सँभालकर रखने' के गुर देते रहे। मैं जानता था कि सब सलाह नहीं दी जा रही, बल्कि मेरे और प्रभा के ऊपर लगाये गए आरोपों का पुनः कथन मात्र है। कई बार मन में आया कि उनकी बात का विरोध करूँ।

'और तुम्हारे बाबूजी कह रहे हैं कि तुम पूजा पाठ, धरम-करम सब छोड़ते चले जा रहे हो। ऐं ? कहीं पढ़ना लिखना इसलिए होता है बेटा ? लोग सारे धरम-करम को छोड़ देंगे तो दुनिया रहेगी कैसे ? देखो, अपने पुरखों को देखो। कितनी कितनी मुसीबतें आयीं कैसे-कैसे संकट पड़े, लेकिन वाह रे मेरे शेरो, जान छोड़ दी पर धरम नहीं छोड़ा। हक़ीक़त

राव, बक्तावहादुर पर क्या-क्या जुल्म नहीं ढाये गए ! भया, अपने धम का तो प्रताप ही है कि हम-तुम यहां या बठे हैं, वरना जाने पाकिस्तान मे होते या किसी गिरजे म प्रायना कर रहे होते। तुमने तो हमसे ज्यादा पढा है। तुम तो खुद ही जानते हो जमनी हमारे यहा से वेद न चुरा ल गया होता तो ये एक-से-एक नायाव चीजें आज कहां से ईजाद कर लेता ? अरे, चोरी करके तो तुम जो चाह सो कर लो, अकल तो हम तब मानत कि खुद अपन आप ये हवाइ जहाज, रेडियो निकालते।" और अपन अतीत के गौरव की याद म उनकी आंखों म आसू भर आए।

इन सारी बातो का जवाब मैं क्या दूं, मैं सोच ही रहा था कि अचानक तेज आवाज म कही गई बाबूजी की बात ने सारा जादू एक झटके म छिन्न भिन्न कर डाला, "तुम किस पत्थर को समझा रहे हो, चन्दन ? कहा है, सीख दीजिए ताहि को, जाको सीख सुहाय सीख न दीज बांदरा घर बया को जाय। वहां कोई असर नही है भया ! पानी की बूद नही टिकन वाली। सब चुपचाप सुन लेगा लेकिन करेगा वही जो उसके जी म आएगा, जो बहू कहगी। क्या अपना वक्त बिगाड रह हो तुम ? उस मा बहू के पास जान को देर हो रही होगी। फिर एक पल चुप रहकर बाबू, मैं तो कहता हूँ जो इनके जी मे आये सो खूब कर लेने दो। हमारी तकदीर म होगा सो भुगत लेंगे। अब तक भी तो भुगता है।

मामाजी भी बाबूजी के इस अप्रत्याशित विस्फोट से हतप्रभ हो गए। लगा यह उनके कार्यक्रम म नहीं था। पीठ ठोंककर बोले, नहीं जी, कोई बच्चा थोड ही है हमारा समर बटा। समझता तो सब है, जरा-सा लडकपन है। क्यों है न बेटा ? बाबूजी स माफी मांग लेना, बेटा ! बा बड हैं।

खट् स स्विच दबाकर जैसे किसी ने नम्रता, शील, हृदय म उमड आई कातर आर्द्रता एक साथ सब समेट ली। बाबूजी की बात दिल को चीरती चली गई। सारी शिष्टता और तमीज को ठोकर मारकर कोई

कडी सी बात कह देने को जी कसमसाता रहा और जबान तडपती रही। अपना नम्रता से झुका सिर मैंने उद्दण्डता से ऊपर उठा दिया और तना हुआ, बिना एक भी शब्द बोले ऊपर चला आया—हाँ, मैं जसा हूँ वसा हूँ। करो क्या करते हो ?

बीच छत पर खडा-खडा सोच रहा था कि बाहर भटकने निकल पडू या फिर अपनी खाट पर जा लेटूँ। तभी कोठरी के भीतर से बदले हुए ब्लाउज के सामने वाले बटन लगाती प्रभा निकल आई। कुछ देर खडी खड़ी यो ही देखती रही, फिर पास आकर पूछा, 'क्या हुआ ?" अनपटी के पास आकर मेरा गला छूकर देखा, 'तबीअत तो ठीक है न ?"

मैं कुछ नही बोला और बिना कोई प्रतिक्रिया दिखाए खडा रहा। वह फिर बोली, "क्या कहते थे मामाजी ?'

कहते थे मेरा सिर !" जसे ही झुझलाकर कहा कि मेरी निगाहें उसके चेहरे पर जा पडी। सोचा, इस बेचारी ने क्या किया है जो उस पर झुंझलाहट निकाल रहा हू ? इस तो पता भी नही है। थोडा नरम पडकर बोला 'समझा रहे थे कि बहू को कस दबाकर रखना चाहिए। मुझे पता है बाबूजी ने कहा होगा सब। रोए होंगे बैठकर। वरना वो कोई ज्योतिषी हैं कि सूरत देखते ही पता चल जाए ? आते ही उन्हें ये सारी बात मालूम कसे हो गइ ?

प्रभा ने स्नेह से कन्धा छूकर कहा, 'अरे कोई बात कह ही दो ना ऐसा क्या हो गया जो यो मन खराब करते हो ? जाओ, जरा घूम आओ तबीअत ठीक हो जाएगी। बडे हैं समझाना उनका फज है।"

बड़े आए समझाने वाले ! दूसरो को क्या नही समझाते ?' फिर थोडी देर सोचकर कहा "नही प्रभा, सारी कमजोरी यह है कि मैं बहुत कच्चे दिल का आदमी हूँ सो जिसका मन होता है दबाता चला आता है। जरा उन्होंने प्यार की बात कह दी और पिघल गए। तुम्ही बताओ एसा मैंने क्या कर डाला कि बाबूजी से माफ़ी माँगने को कहते थे ? आखिर मेरा कुछ कसूर भी तो बताओ जिसका नाम लेकर कहूँ बाबूजी

ग़लती हो गई, माफ कीजिए। मैंने आज तक उनसे कोई बदज़बानी नहीं की, उनके सामने नहीं आया। कभी उनके बारे में कोई ऐसी-वैसी बात नहीं की। जब देखो तब सुन लो, बहू सिखाती है बहू सिखाती है। आखिर तुम मुझे क्या सिखाती हो, बताओ न? कोई कुछ न बोले तो उसके ऊपर कौवे-कौवे ही किये जाओ, यह कहाँ की नीति है? बहू ने ऐसा किया, बहू ने वैसा किया। सुबह तीन बजे से उठकर काम में लगती हो, आखिर तुम भी कहाँ जाकर मर जाओ? रात को बारह से पहले सोना नहीं मिलता आखिर किसी को सोचना भी तो चाहिए कि औरों की भी कुछ इच्छाएँ हैं। तुम्हीं बताओ यहाँ कोई सोचता है कुछ किसी के के लिए?" मैं कहता रहा।

'सब ठीक है। इस वक्त तुम यह सब सोच-सोचकर क्या भुनभुना रहे हो? थोड़े दिन की ही तो बात है। कोई हमेशा तो चलता नहीं है।' प्रभा ने फिर समझाया।

मैं अपनी ही रौ में कहता गया 'बड़े आए हमें धर्म समझाने वाले! पहले खुद तो समझ लो। धर्म का नाम ले-लेकर मार दो आदमी को। दुनिया किधर जा रही है, उसे देखने मत दो। बस मन्दिर में बैठकर खरताल बजाया करो सारे काम खुद हो जाएँगे। भगवान् कर देगा। कोई भी अक्ल की बात कहो तो नास्तिक कह-कहकर काटने को दौड़ो।

प्रभा भी शायद खीझ उठी तो फिर हो क्या गया, कह ही दिया तो? जाकर अपना काम देखो न। बड़े-बूढ़े हैं, उन्हें सब कहने का हक है। और तब शायद हल्की चुहल से बोली, उन्होंने तो तुम्हारी शादी कराई है। इतना भी हक नहीं है उन्हें कहने का?

बहुत अच्छा किया, मैं बिफरकर बोला। अभी घर की हालत बहुत अच्छी है न, सो दूसरी शादी कराने आ पहुँचे हैं? अब अमरसाहब पर निगाह है। न कमाना न धमाना। आकर वह भी तरसा करेगी तुम्हारी तरह एक-एक पैसे के मुई-चाय को, कि हो तो फटी धोती सिले।

एक ने कमाना शुरू किया तो मेरी शादी कर दी और अभी मैंने कुछ किया भी नहीं है कि तीसरे को फाँस दो। पीटेगी तो अपनी किस्मत वह पीटेगी।

इस बार प्रभा खुलकर हंस पड़ी, "तुम्हारा अभी से जब यह हाल है। बूढ़े होकर तो तुम सचमुच इन लोगों से भी खतरनाक साबित होगे।'

बात उसने कुछ ऐसे ढंग से की कि मैं भी गुस्सा भूलकर हंस पड़ा। मन हुआ गाल पर चपत मारकर कहूँ, 'दुष्ट!' लेकिन फिर अपनी उसी गम्भीरता को खींच लाया नहीं प्रभा, असली बात मैं जानता हूं। आज हो गई ग्यारह तारीख। अब इनके हिसाब से मुझे अपनी तनख्वाह के रुपये मिल गए होंगे। मैंने एक टका नहीं दिया। और जब आज भी इस बारे में कुछ नहीं बोला तो सारा धीरज छूट गया।

"अरे हां वह तो मैंने पूछा ही नहीं। रुपये तो तुम्हें कल मिल गए होंगे। क्या किया? इस बार उसकी आवाज में सचमुच गृहस्थ नारी की बुजुर्गी आ गई।

मेरी जबान फिर तीखी हो गई, 'उस साले प्रेस वाले ने कुछ दिया ही नहीं। उससे अच्छा तो कोई ट्यूशन ही कर लेते। मर जाएं उसके सारे बाल-बच्चे! न मालूम क्या जी में है उल्लू के पठ्ठे के! यहां इक सठ रुपये तो यों ही उधार हो गए हैं। अब बाकी आठ बाबूजी को थमा दो तो मूंगफली तक खरीदने को तरसो। अच्छी आफत है। कल अगर नहीं दिये तो साफ कह दूंगा—तू जा भाड़ में मुझे मेरे रुपए दे। मेरे यहां क्या कोई खजाना गड़ा है? तुझे क्या चिन्ता है तेरे यहां तो अनाप शनाप चला आता है। अगर इसी तरह देने हैं तो रख ले यह अपनी मूफरीडरी। अरे हां, हम कुछ और कर करा लेंगे। बाज आए ऐसी नौकरी से। बकस मेरी खाला मैं तो लंडूरा ही भला! रुपय ही नहीं निकलत जेब से साले के"

प्रभा इस बार मुंह पर पल्ला रखकर देर तक हंसती रही। मुझे लगा मेरा दर्द भुलाने के लिए नकली हंसी हंस रही है। बोली, 'तुम तो सत्तर

साल की बूढ़ियों-जैसी गाली देने लगा। कोई सुन ले तो क्या समझे।' और उसने जबरदस्ती मुझे धकेल दिया, जाओ-जाओ, ज़रा खुली हवा में टहल आओ। लेकिन लौटते जल्दी आना। मैं खाना लिये बैठी रहूँगी।'

अपनी बेवकूफ़ी और प्रभा की बातों पर उस समय तो हँसता चला आया लेकिन शीघ्र ही बाबूजी और मामाजी की बातें नये सिरे से दिमाग़ में घुमड़ने लगीं। एक बात सोचकर सचमुच आश्चर्य हुआ कि चाहे बाबूजी ने डाँटकर कहा हो या मामाजी ने सहृदयता से लपटकर, बातें तो दोनों ही एक कहते हैं। दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं है जबानें दो हैं।

सोचता हुआ मैं सड़कों पर भटकता रहा।

अपने आपमें डूबे चलते हुए अचानक मुझे लगा जैसे मेरे पीछे पीछे कोई चला आ रहा है। मुड़कर देखा तो दिवाकर सचमुच ही खिल खिलाकर हँस पड़ा। उसके साथ कोई और भी था। जब तक मैंने उसे पहचाना नहीं था, मैं एकदम डर गया था। दिवाकर बोला, तुम्हें चलते वक्त ध्यान रहता है कि कहाँ जा रहे हो किसलिए जा रहे हो? दो फ़र्लांग से हम लोग साथ हैं। जाने क्या आप ही आप बड़बड़ाते हो आप ही आप हाथ चलाते हो। खुद ही नाराज़ होना, खुद ही मन जाना यह सब क्या है?

मैं झेंपकर सकपका गया। ध्यान से देखा, अँधेरे में तटस्थ की तरह विनोद भाई खड़े-खड़े सिगरेट पी रहे थे। जब कश खींचते थे तो आग का फूल उनकी आँखों के नीचे चमक उठता था। मन झट उन्हें नमस्कार किया। अब यह सोच-सोचकर बड़ी झेंप लग रही थी कि जाने कितनी दूर से ये लोग पीछे-पीछे चले आ रहे होंगे। इस बीच मैंने जाने अपने आप से क्या-क्या बातें की होंगी, किस किस तरह की हरकतें की होंगी। उन सबको देख-सुनकर जाने क्या सोचा होगा इन्होंने! किसी तरह बोला, आप लोग किधर से आ रहे हैं? मुँह पर खिसियानी मुस्कराहट आ गई थी।

'बता तो दिया कि आधे घण्टे से तुम्हारे ही साथ आ रहे थे" घण्टता से दिवाकर ने अपनी बात दुहरायी। 'सुनते आ रहे थे कि तुम अपने आप से क्या क्या बातें करते हो।

हाँ, यह तो हमें भी लगा कि किसी बहुत ही भारी समस्या पर विचार हो रहा था। क्या बात है? भारतीय संस्कृति की कोई गुत्थी उलझ गई क्या?' और शिरीष भाई खुद ही बड़े जोर से हँस पड़े। फिर मेरे संजीदा चेहरे की ओर देखकर हमदर्दी से पूछा, ऐसी क्या विकट समस्या आ गई?"

दिवाकर होता तो शायद मैं उसे उस समय झिड़क देता या दूसरी तरफ बताता। उनकी मैं इज्जत करता था, इसलिए कुछ सकुचाकर बोला, 'कोई ऐसी खास बात नहीं थी शिरीष भाई! मेरे मन में कोई बात आ जाती है तो देर तक फिर निकलती ही नहीं।"

'देखिए जो बात मन और आत्मा को कष्ट दे उसे हमेशा किसी-न-किसी से कह देना चाहिए। इससे अपने ऊपर उसका बुरा प्रभाव कम हो जाता है। ईसाइयों में पादरी के सामने अपराध स्वीकार कर लेने की परम्परा के पीछे शायद यही भावना है कि इससे मन हल्का हो जाता है।' पास आकर मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए वे बोले, "लेकिन यह मैं आपसे व्यक्तिगत बात पूछने का अनुरोध नहीं कर रहा।"

"और अगर कोई व्यक्तिगत बात भी पूछ ही लें, या यह बता ही दें तो कौनसी मुसीबत हो जाएगी?" दिवाकर ने मेरे दूसरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा।

'लेकिन अपराध स्वीकार कराने का यह पुलिस वाला तरीका मुझे पसन्द नहीं है' शिरीष दिवाकर की बात पर हँस पड़े।

शायद दोनों मेरी बातों का बुरा न मान जाएँ। मैंने बताया, 'नहीं ऐसी कोई खास बात नहीं है भाई।' फिर एक क्षण सोचा और आगे बता ही दिया, तुम तो जानते ही हो दिवाकर, हमारे यहाँ कितने घरेलू झंझट हैं। एक-न एक चक्कर रोज निकलता ही आता है। मेरी शादी

होकर चुकी नहीं कि अब अमर की शादी हो रही है। कुछ कहा तो दुनिया भर के उपदेश।'

शिरीष भाई ने पूछा "आप लोग तो सब साथ ही रहते हैं न ?"

'चाचाजी वगैरा सब अलग हैं। हम लोग सब साथ ही हैं' मैंने बता दिया।

माफ़ कीजिए, आपके परिवार की कुछ व्यक्तिगत बातें पूछ रहा हूँ। और फिर चलते चलते शिरीष भाई देर तक घर परिवार के बारे में, लोगों के बारे में पूछते रहे और मैं बिना कुछ छिपाए बताता रहा। बात घर के लड़ाई झगड़ा पर आयी तो मैंने दुखी स्वर में स्वीकार कर लिया कि मेरे घर में लड़ाई-झगड़े शादी के पहले ही दिन से शुरू हो गए थे। फिर प्रभा के बारे में पूछा कि वह कितनी पढ़ी है स्वभाव कैसा है, उसके क्या-क्या सपने हैं और घर पर मुसीबतें क्या क्या हैं। उनके इन डायरेक्ट जैसे सवालों में मैं परेशान मन-ही मन जरूर था, लेकिन प्रभा की समझदारी, शिक्षा और सपनों के बारे में बताते हुए अच्छा भी बहुत लग रहा था। मगर अन्त में उन्होंने एक ऐसा सवाल कर दिया कि सचमुच मैं उसका जवाब नहीं दे पाया।

"ठीक है आपकी इच्छा से शादी नहीं हुई, लेकिन अब एक सवाल का सच-सच जवाब दीजिए। क्या अब आप अपनी पत्नी को सचमुच प्यार करते हैं या सिर्फ़ पति होने से फ़र्ज के कारण उनके बारे में ऐसा सोचते हैं ?' उन्होंने सिगरेट पीने की व्यस्तता में पूछा।

मैं मैं ? मैं हकला गया। सचमुच उस क्षण मैं निर्णय नहीं कर पाया कि प्रभा के प्रति मेरे मन में जो भावना है, वह प्यार है, या अपने किये का पछतावा है या उसकी मजबूर स्थिति के प्रति दया भर है। मुझे कोई जवाब नहीं सूझा। फिर भी अपने को जैसे-तैसे सँभालकर बताया, मैं उसी की इच्छा से पढ़ रहा हूँ। वह न होती तो शायद मैं भी न जाने कब से कहीं सौ-सवा सौ का क्लर्क हो गया होता। उसका बड़ा मन है कि मैं खूब पढ़ूँ और तब कोई अच्छी-सी नौकरी करूँ। मेरे

लिए उसने कितनी मुसीबतें उठाई हैं, शिरीष भाई, मैं आपको बता नहीं सकता। अब भी सुबह तीन बजे उठकर खाना बनाती है और रात को बारह बजे तक पिसती है ।'

हम तीनों चुप हो गए और मैं सिर्फ अपनी बात का जवाब खोजता रहा। सहसा तब एक बात कौंधी तो मन में आया कि इसे भी शिरीष भाई को बता डालूं। उसने अपने आपको मेरे लिए बिलकुल भुला दिया है जैसे उसके अपने दुख-सुख, आकांक्षाएँ इच्छाएँ कुछ हैं ही नहीं। पर फिर सोचा कि यह तो बात उसकी तरफ से हो हुई न। मेरे मन में उसके लिए वास्तव में भावना क्या है इस बात का जवाब तो यह नहीं है। फिर भी मेरा दिल प्रभा के लिए पसीज उठा। अपने भीतर की छटपटाहट को किन शब्दों में या किस तरह प्रगट करूँ इस बेचैनी से मैंने शिरीष भाई की तरफ देखा। वे चुपचाप कुछ सोचते-से एक एक कदम चल रहे थे। कुछ कहेंगे जरूर, यह मैं जानता था। शायद उसी की राह देख भी रहा था।

सड़क सूनी-सूनी थी। पता नहीं हम लोग किधर निकल आए थे। ज्यादा गौर करके मैं जगह को पहचान भी सकता था लेकिन साथ चलती ऊंची सी दीवार पर बड़े-बड़े काले अक्षरों में जूता और कपड़ों के विज्ञापन पढ़कर ही रह गया। लगा, जैसे मैं एक धुंध में लिपटा चला जा रहा हूँ। शायद साढ़े आठ या नौ बजे होंगे। बरसती चाँदनी के दूध से धरती और आकाश धुल गए थे। शायद इसीलिए बत्तियाँ नहीं जली थीं। शुक्ल पक्ष में बत्तियाँ प्राय बन्द रहती हैं। अजब बात थी। चाँदनी रात में मैं रहूँ कहीं भी, लेकिन जब भी प्रभा का ध्यान करता हूँ तो वह मुझे छत पर सिमटी सिमटाई बैठी—या ज्यादा ठीक कहूँ तो रोती हुई—दिखायी देती है। इस समय भी अपनी छत का दृश्य ही सामने आ गया।

भाई समरजी, आखिर शिरीष भाई जैसे कहीं बहुत दूर से बोले आपकी अपनी या दिवाकर की सबकी वास्तविक स्थिति जानकर एक बात मेरी समझ में आती जा रही है—इस संयुक्त परिवार की परम्परा

को तोड़ना ही होगा। अब आपके लिए ही कहूँ कि अगर आप खुद जिंदा रहना चाहते हैं या चाहते हैं कि आपकी पत्नी भी जिंदा रहे तो इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है कि अलग रहिए। जैसे भी हो अलग रहिए।'

यह बात (या कहूँ कि सलाह) इतनी अप्रत्याशित थी कि मैं चौंककर स्तब्ध रह गया। अचकचाकर पूछा, 'मैं आपका मतलब नहीं समझा, विनोद भाई!'

आप बुरा न मानिए, लेकिन समर भाई, सचाई यही है कि आपकी पत्नी की सारी आकांक्षाएँ और आपके सारे प्रयत्न इस वातावरण में बिलकुल बेबस होकर घुट घुटकर मर जाएँगे। एक के बाद एक मुसीबतें निकलती आएँगी और आप लोग शायद सुख की उम्मीद में ही जिंदगी बिता देंगे।'

'यानी संयुक्त परिवार के आप बिलकुल पक्ष में नहीं हैं?' व्यक्तिगत रूप से शायद उनकी बात सच हो, क्योंकि अपनी मुसीबतें मुझे अनंत लगती थीं, लेकिन परिवार की एक पूरी-की-पूरी व्यवस्था के लिए वे ऐसा सोचें यह बात गले नहीं उतर रही थी।

'हाँ आप ऐसा ही समझिए।' उन्होंने अपनी बात पर जोर देकर कहा, आज की आर्थिक स्थिति में संयुक्त परिवार चल नहीं सकता। अगर चलता भी तो ऊपर से देखने में चाहे जो हो लेकिन अन्दर से उसमें छोटे-छोटे परिवारों की कई इकाइयाँ बन जाएँगी। आप सोच नहीं सकते कि यह जरा-सी भावुकता कितने भयंकर परिणामों को जन्म दे रही है। रात दिन हैरान-परेशान रहेंगे, लड़ेंगे-मरेंगे, सब होगा, लेकिन रहेंगे साथ ही। इज्जत का सवाल, अलग चूल्हा न जलने का हठ, झूठी भावुकता के पीछे स्वार्थ की खींच-तान इन सबके कारण कितनी हत्याएँ आत्महत्याएँ रोज होती हैं, इस बात को जाने भी दीजिए तो भी इसका एक परिणाम ही इतना भयंकर है कि उसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती।"

'क्या?" उन्होंने बात को कुछ ऐसे ढंग से तोड़ा कि मुझे पूछना पड़ा।

यह जानकर कि हम लोग उनकी बात ध्यान से सुन रहे है, उन्होंने बताया सयुक्त परिवार का शाब्दिक आदश चाहे जितना महान् हो उसका सबसे बडा नुक्सान यह होता है कि परिवार का कोई भी सदस्य अपने व्यक्तित्व का विकास नही कर पाता। सारा समय या तो समस्याएँ बनाने म या बनी-बनायी समस्याओ को सुलझाने म जाता है। लडाई झगडा खीचतान बदला ग्लानि, सब मिलाकर वातावरण ऐसा विषला और दमघोटू बना रहता है कि आप सास न ले सक। कारण आर्थिक ही है, यह आप भी जानते हैं। नतीजे म हम दो हिस्सो म बँटे रहते हैं—बाहर अपनी आर्थिक लडाई लडी और भीतर अपना पारिवारिक उलझनें सुलझाओ। सीधे सरल दिल दिमाग का आदमी इन्ही झझटो म पिसा जाता है।"

इतनी दर बाद दिवाकर ने अचानक मुडकर सवाल रखा 'लेकिन यह तो स्थिति हुई, परिणाम कहाँ हुआ ?"

'मैने बताया न, परिणाम यही होता है कि आप अपने व्यक्तित्व का विकास ही नही कर पाते। अपनी शक्तियो और प्रतिभा को सही दिशा म बढ़ाने का आपको अवसर ही नही मिलता। या कह आप अपने आपको ऐसी बातो म उलझाकर थका डालते हैं कि आपका दिल दिमाग अपने सपने पूरे करने लायक ही नही रह जाता। पढाई लिखाई या किसी भी बौद्धिक और मानसिक विकास क लिए आपके पास शक्ति बच ही कहाँ पाती है ? हमारे यहाँ बहुत अच्छे अन न आने का बहुत बडा कारण यह भी है। उलटा सीधा रट रटाकर पास हो गए तो समझ लिया कि बहुत बडा काम कर डाला। जिस रटते हैं वह खुद ही किसी की जूठन होती है। ससार के ज्ञान विज्ञान साहित्य दशन को कुछ देने की बात तो दूर रही, आप उसके विकास तक स परिचित नही हो पाते। वहाँ भी जो कुछ जानते हैं वह किसी की उगली निगली जूठन या पचास साल पुरानी बातें। अपनी इस मजबूरी या असफलता को तब हम यह कह-कहकर छिपाने लगते हैं कि हम ससार के ज्ञान विज्ञान को जानने की जरूरत ही क्या ? हम ससार की सबसे ज्ञानी जाति के अलमबरदार हैं, हमने ससार को

बहुत दिया है। और या रूढ़िवादी बुद्धुओं की एक के बाद एक पलटन तयार होती चली जाती है।' अपनी बिखरी बात को समेटकर व बोल गया मेरा सीधा-सादा हल यही है कि आप अलग रहिए और घर के लिए जो जिम्मेदारी महसूस करते हैं वह पूरी कीजिए।'

मैं इस व्यक्ति की विश्लेषण प्रतिभा पर चकित था। सारी बातें मेरी समझ में ऐसी आसानी से आती चली जा रही थीं कि आश्चर्य हो रहा था। इतनी सीधी बात आज तक मेरे अवचेतन में क्यों नहीं आयी? अचानक एक सवाल सूझा। पूछा, 'लेकिन दिनेश भाई, यह तो घोर स्वार्थ की बात हुई न? मां-बाप जाने किन किन आशाओं से बच्चों को पालते, पढ़ाते-लिखाते हैं। सोचते हैं कि बुढ़ापे में वे उन्हें सहारा देंगे, हारी-बीमारी में मदद करेंगे, वंश का नाम बढ़ाएंगे और बच्चे समर्थ होते ही अलग हो जाते हैं तो यह स्वार्थ नहीं है?'

'यों देखने में स्वार्थ जरूर है,' मेरे सवाल से वे एक क्षण को हिचके लेकिन बच्चों के व्यक्तित्व का विकास न देकर, उनको उन्नति का अवसर न देकर और बाप इस मकसद के लिए उन्हें अपने में बांध रखें, इसकी जगह क्या यह अच्छा नहीं है कि उन्हें स्वयं विकसित होने दें और आपकी इस बात को फर्ज की तरह उनके मन में डाल दें। जहां तक मैं समझता हूं एक-दो संतानों के साथ इस तरह का संकट आता भी नहीं। संयुक्त परिवार अभिशाप बन जाता है वहां, जहां कई संतानें हों, आर्थिक रूप से परिवार समर्थ न हो और आय के साधन बहुत ही कम हों। अब ऐसा जोड़ा मां-बाप सोचते हैं कि बेटे पर मेरा हक है और पत्नी सोचती है वह किसी का बेटा हो या न हो उसका पति जरूर है और उसकी कमाई पर सबसे पहला हक उसी का है। फर्ज ही अदा करना है तो अलग रहिए और अपने साथ एकाध अपने और छोटे भाई-बहन को रखिए। इस तरह आप अपने मां-बाप को अपने बाकी और परेशानियों से काफी हल्का कर सकेंगे। साथ ही व्यावहारिक अनुभव कहता है कि इसमें सम्बन्ध [illegible] में अच्छे ही बने रहते हैं। भाई भाई अलग

अलग होने पर एक काण्ड होना है, दुर्घटना होनी है और अक्सर बोल चाल भी बन्द हो जाती है। मा-बाप को खुद चाहिए कि बच्चों को समर्थ बनाकर उन्हें अपनी अपनी शक्तियों का परीक्षण करने छोड़ दें, उनकी मदद करें। उनका जरा सी यह भावुकता कि सब साथ ही रहें, कितना बड़ा नुकसान करती है, इसे वे नहीं जानते।'

काश इस सबको सुनने प्रभा भी होती!

रास्ते भर सोचता आया कि सारी बातें प्रभा को बताऊंगा। बाबूजी को समझाऊं तो शिरीष भाई को गालियां और मिलें, 'हम भी तो देखें कौनसे तुम्हारे दोस्त हैं जो ऐसी अच्छी सीख दे रहे हैं? इन लफंगे दोस्तों के साथ यही तो सीखोगे।"

मामाजी ने सचमुच हमारे यहां खाना नहीं खाया।

नौ

प्रभा के प्रति मेरे मन में प्यार है, उसकी मजबूरियों और तकलीफों के प्रति दया है, या सिर्फ अपने किये पर पछतावा है? उस क्षण उठा हुआ यह सवाल जाने कब तक मेरे मन को मथता रहता। मगर तभी एक ऐसी बात हो गई कि मेरा पोर पोर सिहर उठा। और तब मुझे लगा जैसे मैं जाने कब से यों ही अकेला पड़ा हूं, मेरे आस-पास कोई नहीं है।

'आज तुमने बहुत काम किया है, लाओ तुम्हारे पांव दबा दूं' कहती हुई प्रभा जैसे ही पाटी पर मेरे पैताने की ओर बढ़ी, नींद की खुमारी से जागकर मैंने पांव समेट लिए।

'नहीं, मुझे हाथ-पाँव कुछ नहीं दबवाने, तुम आराम करो। आज जरा-सा काम कर दिया तो क्या हो गया ? तुम तो सारा दिन इतना काम करती हो।' आसमान की ओर देखकर पूछा, साढ़े दस ग्यारह बजे होंगे। इतनी देर में खतम हुआ है चौका-बरतन ?"

'क्या करती, जेठजी ने अब खाया खाना। कहीं चल चला गए थे किसी के साथ। मुझे तो सच उन पर बड़ी दया आती है। गऊ आदमी हैं। न किसी से बोलते हैं, न चालते हैं। सारा दिन लेटे रहते हैं।' पाटी पर बैठे-बैठे अपने लटके पाँव हिलाती हुई प्रभा बोली, उन्हें खिलाया चौका-बरतन साफ किया। सुबह की तयारी की। बहुत गरमी थी, इस लिए जरा-सा नहायी "

'ओह, तभी आज एकदम साफ़ कपड़े-वपड़े पहनकर रानी-मुन्नी बनी बैठी हो। मुझे भी आज लग रहा था कि कोई नयी बात है। बड़ी खुशबू आ रही है। कौनसा इत्र लगा आई ?' मैंने प्रभा को अपने पास खींच लिया।

प्रभा लजा गई। दूसरी ओर देखती हुई बोली जरा-सा खस पड़ा था सो मन नहीं माना। फिर अपने को छुड़ाकर बोली "आज तो सच, तुम्हारे पाँव दबाने को बड़ा मन कर रहा है। जब तुम ऊपर बाल्टियाँ भर भरकर ला रहे थे तभी मेरे मन में आ रहा था कि अब ये जिद में बाल्टी-पर-बाल्टी लिये चले जा रहे हैं रात को भड़कन होगा।'

कितना खयाल रखती है प्रभा ! मैं गद्‌गद हो आया। पीठ पर हाथ फेरकर प्यार से कहा, नहीं प्रभा इस उम्र में जरा-सा काम करने से ही भड़कन होने लगे तो बाबूजी की उम्र में जाकर मैं क्या कर पाऊँगा ? देख तो, आज भी बीस-बीस सेर गेहूँ दोनों तरफ़ की थैली में लटकाकर बाजार से ले आते हैं। और आज गरमी कितनी थी !"

आज मुझे साँझ से ही लग रहा था कि बहुत गरमी है, सो मैंने नीचे से पानी की बाल्टियाँ ला-लाकर पूरी तरह सारी छत पर छिड़काव किया था। हम लोगों ने अपने सोने की जगह जरा आड़ में रखी थी। मगर

कोठरी और गली की ओर वाली मुंडेर के बीच में जो छोटी-सी खुली जगह बची थी वही हमारा सोने का स्थान था। यह जगह कुछ ऐसे कोने में दूर हटकर पड़ती थी कि अगर खास तौर से ही कोई इधर न आये तो प्राय छत पर आने जाने वालों से वास्ता नहीं होता था। भैया और भाभी दूसरी तरफ थे, लेकिन उन्हें आड़ करनी पड़ती थी। अम्मर-कुंवर और अम्मा बाबूजी सब एकदम खुले में सीढ़ियों की तरफ सोते थे। आज मैंने सारी छत को पानी से भिगोया ही नहीं था बल्कि दिन भर की धूप में अकड़ी जलती खाटों पर भी एक एक बाल्टी पानी डाल दिया था। इसलिए इस वक्त जरा ठण्ड हो गई थी। गीली चारपाई पर सिर्फ एक तकिया लगाए मैं लेटा लेटा खुले आसमान को देखता रहा। सारे आकाश पर तारों की नक्काशी की हुई थी और कभी कभी एक तारा लपककर जलती लकीर खींचता हुआ दूसरे दल में जा मिलता था। उसे देखकर मैं साश्चर्य अपने मन को समझाता कि देखने में इस जाते हुए एक पल भी नहीं लगा लेकिन हो सकता है वास्तव में इसे हजारों प्रकाश वर्ष का समय लगा हो, अपना सौर मंडल बदलने की इस यात्रा में। क्या कोई ऐसा तरीका नहीं हो सकता कि इसी जीवन में आदमी इन सारे नक्षत्रों की यात्रा करके देख सके—आखिर वहाँ लोग किस तरह रहते हैं? फिर मन में झुंझलाता—हम अपनी दुनिया के बारे में तो जानते नहीं हैं, सारे नक्षत्र मंडल के बारे में जानेंगे! उस दिन शिरीष भाई कहते थे, दुनिया के ज्ञान विज्ञान को आगे बढ़ाने या उसमें कुछ नया करने की बात तो दूर जो कुछ दूसरों ने कर लिया है हम उसके बारे में ही अभी नहीं जानते।

और यही सब सोचते-सोचते मेरी आँख लग गई। अवचेतन मन में नीचे के बरतन खनकने की आवाजों तथा बातचीत से मैं अंदाज लगाता रहा कि कौन आया कौन गया या घर का कितना काम हो गया। छत के कोने से भाभी और बच्ची की आपस में कुछ बातें करने की भनक भी आती रही। दूर कहीं बजते सिनेमा के गीतों की लहरी भी कभी-कभी

सुनायी दे जाता थी। जब हम लोग अलग मकान लेकर रहेंगे तो उसकी छत पर किस तरह सोया करेंगे ? लेकिन वहाँ तो लान होगा ।

'क्या सोचने लगे ?' प्रभा ने कुहनी से ज़रा सा टहोका लगाकर पूछा। धीरे-से कब उसका हाथ मेरी पिंडलियों पर आ गया मुझे पता नहीं।

उसकी आवाज़ से चौंककर मैं फिर लौट आया। जँभाई लेकर पूछा 'तुमने खाना वाना खा लिया ?'

खा ही लिया होगा, तुम्हें क्या है ?' उसने शिकायत के लहजे में कहा।

स्वर की असहाय शिकायत और अपनेपन से पिघलकर मैंने कहा नहीं प्रभा, ऐसा क्यों सोचता हो ? यहाँ की मजबूरियाँ तुम भी जानती हो मैं भी जानता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि हम लोग हमेशा साथ ही खाना खाया करें। प्रोफ़ेसर होने के बाद जब हम अलग से मकान मिल जाएगा तो देखना तुम्हें कभी कोई शिकायत करने का मौका नहीं दूंगा। अब यहाँ हर बार आकर यह भी तो नहीं पूछ सकता कि तुमने खाना खा लिया या नहीं। कल को इसी बात पर एक हंगामा और मच जाएगा ।

प्रभा खिलखिलाकर हँस पड़ी, अरे मैं तो यों ही मज़ाक कर रही थी। मैंने तो आज आपसे अच्छा खाना खाया है—खीर-पूरी, हलुआ। आप लोगों को आज जो थोड़ा-थोड़ा मिला था, वह क्या आप समझते हैं आपके लिए ही बना था ?'

उसकी खिलखिलाहट रात के सन्नाटे में मुझे बड़ी भली लगी, जैसे छोटी-छोटी चाँदी की घण्टियों को झालर हवा के झोंके से झनझनाती दूर तक चली गई हो। साथ ही शायद दोनों को उस दिन की बाबूजी की दहाड़ का भी स्मरण हो आया और उसकी हँसी बीच में ही टूट गई। बात को भुलाने के लिए मैंने पूछा, 'क्या भाई ऐसी आज क्या खास बात थी ? मैंने तो समझा कि किसी के शादी-ब्याह से आया

होगा।

तभी ध्यान गया धीरे धीरे मेरी पिंडलियों को सहलाती हुई प्रभा सचमुच पाँव ही दबाने लगी थी। उसका हाथ रोककर पूछा, 'आज आखिर तुम्हें यह हो क्या रहा है? मैंने कह दिया न, मुझे अच्छा नहीं लगता। पाँव तो मुझे तुम्हारे दबाने चाहिएँ दिन भर बैल की तरह जुती रहती हो।' फिर एकदम बात पलटकर कहा 'हाँ तो आज किस खुशी में यह सब हुआ था? मामाजी कहीं बात पक्की कर आए क्या अमर के लिए?

'नहीं यह बात नहीं जी, समझदारी से प्रभा बोली, "आज हम लोगों ने व्रत रखा था। मैं, भाभी और पड़ोस के अवस्थीजी की बीवी ने "

अच्छा। तभी आज इतनी पति सेवा सूझ रही है" मैं परिहास से बोला। किस सिलसिले में, देवी?'

अरे किसी सिलसिले में रखा हो, आपका मतलब? ये सब औरतों के मामले हैं।" मैं बुरा न मान जाऊँ इसलिए समझाकर बोली, 'तुम खूब पढ़ो अच्छी सी नौकरी करो उसके लिए मुझे भी तो कुछ करना चाहिए न?'

उसके हाथ पाँव दबाने का काम करते रहे। मुझे भी अब कुछ-कुछ सुख मिलने लगा था इसलिए हटाने की ज्यादा जिद नहीं की। सिर के नीचे मुड़ी कुहनी लगाकर प्रभा की ओर करवट बदलते हुए कहा, पहले ही तुम कौनसे कम काम कर रही हो, प्रभा जो यह व्रत, पूजा-पाठ और शुरू कर दिये ऊपर से? कभी-कभी अपनी तन्दुरस्ती की ओर भी देख लिया करो। इस तरह बीमार-वीमार पड़ गई तो मेरे पास दवा का इंतजाम भी नहीं हो पाएगा।'

प्रभा ने सिर झटक दिया अरे तो व्रतों से भी कहीं कोई बीमार पड़ता होगा? इससे तो और भी तबीयत ठीक हो जाती है। तुम्हें कुछ पता भी है, उपवास रखने के कितने फायदे हैं?

कुछ रुखाई से मैंने कहा, 'होंगे। मेरा इन सबमें विश्वास नहीं है और मुझे सुनकर भी अच्छा नहीं लगता।" अपनी इस रुखाई से खुद ही चौंककर मैंने बात सँभाली, व्रत के लिए चाहिए खाना-पीना, फल, दूध, मेवा-मखाने तब उससे फ़ायदा भी होता है। दिन भर पानी की सूरत भी न देखो, यह व्रत हुआ या सजा हुई ''

प्रभा ने टालने के लिए कहा, 'तो रोज रोज कौन व्रत करता है ? कभी साल छः महीने में एकाध बार हो गया तो हो गया।

"बात, साल-छः महीने की नहीं है' मैंने कहा मेरा तो इन् सब ढकोसलों में विश्वास ही नहीं है। तुमने भी कभी नहीं बताया कि तुम इन सबमें विश्वास करती हो। मैं खुद कभी इन सारी चीजों में विश्वास किया करता था मन्दिर जाया करता था, व्रत मानता माना करता था। लेकिन अब इन सब बातों पर कतई विश्वास नहीं रह गया है। और मन में सोचा कि शायद गिरीप और दिवाकर के सम्पर्क में आने के कारण।

प्रभा का गला भर आया— विश्वास तो मेरा भी नहीं है, लेकिन एक घर में रहने पर बिना इच्छा के भी बहुत-कुछ करना पड़ता है। भाभी ने रखा था। मैं नहीं रखती तो कितना ऊधम मचता ! चलो किसी अच्छी ही भावना से रखा था, अब तुम उसके लिए लड़ो तो मत।' फिर मुझे मनाती हुई-सी बोली, 'व्रत तो एक संकल्प की याद दिलाए रखने का बहाना होता है।

'बहाना होना है मेरा सिर" मुझे गुस्सा आ गया। एक तो वह काम किया जो मुझे पसन्द नहीं है और फिर मुझे समझा रही है। मैंने कह दिया कि मेरा इन सारी बातों में विश्वास नहीं है। एक तो दिन भर इतनी हाड़-तोड़ मेहनत करो ऊपर से ये

तब दो-तीन आँसू उसके गालों में ढुलककर मेरी पिंडलियों पर चू पड़े, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। आज कुछ मत कहो कल डाँट लेना।

उसके इस याचना भरे लहजे इस स्वर और रोने से अचानक मेरे

भीतर एक ऐसा ज्वार-सा उमड़ा कि मैंने उसे खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। ग्लानि से तन मन भर गया कि देखो वह बेचारी तो मेरे लिए मेरे और अपने भविष्य के लिए सारे दिन भूखी मरी और मैं हूँ कि अब उसे डाँट रहा हूँ। किसी बुरे उद्देश्य के लिए तो उसने किया नहीं है। मान लो कोई सचमुच विश्वास ही करता हो, तो क्या इतनी छूट नहीं दी जानी चाहिए? किसी को नमक पसन्द है और किसी को मीठा। क्या यह उचित है कि मैं जबरदस्ती किसी से मीठा ही पसन्द कराऊँ? मैं भी सचमुच कभी कभी अति कर देता हूँ।

प्रभा जाने क्या देर तक रोती रही और मैं उसे समझाता रहा, मैं तो तुम्हें यों ही तंग कर रहा था। यों जरा-जरा सी बातों का बुरा मत माना करो प्रभा! मैं क्या इस बात को समझता नहीं हूँ कि बहुत सी बातें लोक दिखावे के लिए भी करनी पड़ती हैं? लेकिन मेरी छाती पर रखी उसकी कनपटी से आँसू की बूँदें बह-बहकर छाती पर आती और पसलियों के नीचे गुदगुदी पैदा करती रहीं। नहीं यह नाराजी या दुख के आँसू नहीं यह जीवन की सार्थकता और कृतार्थता के आँसू हैं। वे उच्छ्वास हैं जो प्रभा अपने मुँह से नहीं व्यक्त कर पा रही। अपने जीवन और अस्तित्व की हर साँस इसने मेरे लिए ही तो समर्पित कर दी है। मेरी भी आँखें गीली हो आईं। प्रभा के शरीर से उठती खस की खुशबू मेरी नस-नस में तरती चली गई। उस क्षण मुझे लगा ऐसी पत्नी पाकर संसार में कौन सुखी नहीं होगा? धुंधली आँखों से ऊपर देखा, सारा आकाश तारों की झीलों से झम झम कर रहा था। पल भर को मन में आया मेरे इस सुख के साक्षी ये तारे मन में जाने क्या सोच रहे होंगे। हो सकता है कि इनमें से भी किसी नक्षत्र में इस समय किसी ऐसे ही घर की छत पर कोई दिन भर का हारा-थका जोड़ा आपस में गुथा एक-दूसरे के श्रम का परिहार कर रहा हो, उसे भी जो नक्षत्र अपने आसमान पर दिखायी दे रहे हों उनमें एक हमारी यह धरती भी हो और ठीक इसी समय उनके मन में भी यही बात आ रही हो। तब

अचानक एक चमक के साथ लगा—ये तारों भरा आसमान ये दिशाएं सब-कुछ अपनी ही आत्मा के, अपने ही अस्तित्व के एक हिस्से हैं हम खुद हैं। और मैं प्रभा की कनपटी थपथपाता हुआ धीरे धीरे उसके हाथ और आंखों को चूमता रहा, नहीं प्रभा यह रात नहीं है सुनो देखो अब मत रोओ।

बच्ची को जाने क्या तकलीफ़ थी कि रात को जागकर रोती रही। अचानक भाई साहब की दहाड़ से मेरी भी आंख खुल गई। वे भाभी को डांट रहे थे, "नहीं चुप होती तो फेंक दो गली में। ले जाओ उधर, मुझे सोने दो।' शायद बाबूजी भी जाग आए। भाभी अम्मा के पास आकर बच्ची को चुपाने लगी। थोड़ी देर सोने की कोशिश की जब नींद नहीं आई तो अपने आप ही पूछा, 'क्या बजा होगा?'

प्रभा भी जाग गई थी। मुझे सुबह जल्दी जाने के लिए उसे जल्दी जागना होता था। तकिये के गिलाफ़ के भीतर से अपनी घड़ी निकालकर उसने बताया, अभी तो डेढ़ ही बजा है।'

"अच्छा सो जाओ। और मैं चुपचाप फिर आसमान को देखने लगा। अन्दाज से सप्तर्षियों और ध्रुव तारे को पहचानने लगा। आसमान के एक कोने में ऐसा प्रकाश हो रहा था जैसे कहीं बहुत तेज रोशनी हो रही हो और उसका छाया ही ऊपर दिखायी दे रही हो। मुझे याद आया, पहले यहां एयरोड्रोम की सर्च-लाइट घूमा करती थी। तब रह रहकर तेज रोशनी की जीभ सारे अंधेरे को लीलती-लौटती चली जाती थी। रेल के इंजन की दहाड़ और दूर जाती छक-छक में मुझे वह दिन याद आ गया जब कोठरी में लालटेन जलाए मैं साहूकार और रेलगाड़ी पढ़ रहा था और नाराज होकर प्रभा एक कोने में पड़ी थी लगता था उन दिनों को जाने कितना पीछे छोड़ आया हूं! अगले साल इन्हीं गर्मियों में जाने कहां लटा हूंगा! हम लोग जब अलग रहेंगे तो पता नहीं हमारी जिन्दगी का घेरा किस तरह होगा। शिरीष की बातें प्रभा

को बताने का बहुत मन होने लगा।

प्रभा की बाँह छूकर कहा, 'हम नींद नहीं आ रही, प्रभा!'

प्रभा भी शायद जागी पड़ी थी। बोली 'तो बातें करो। लेकिन फिर सो मत जाना कि सुबह आँख ही न खुले। बहुत दिन से उन दोस्त की तुमने बातें नहीं बताई।'

'किसकी? दिवाकर की?" मैंने उत्साह से कहा, तुम्हें उसकी वाइफ कितना बुलाती है, तुम चलती ही नहीं। एक दिन चलो न! और देखो आजकल गिरीप भाई भी यहीं हैं।"

कौन गिरीप भाई? वह तो नहीं, जिनकी एक बहन

"हाँ-हाँ वही। बेचारे बड़े परेशान हैं। डाक्टरों ने उनकी बहन को असाध्य बता दिया है। कल उन्होंने जो बातें मुझे बतायीं उनसे तो मेरी आँखें खुल गईं।' चलो नींद नहीं आ रही तो प्रभा को उनके बारे में ही कुछ बताता रहूँ, इस भावना से मैंने बताना शुरू किया। "रास्ते भर पहले तो हम लोग संयुक्त परिवार के बारे में बातें करते रहे। वे साथ रहने के बहुत ही खिलाफ़ हैं। कहते हैं, इससे व्यक्तित्व का विकास नहीं होता। आदमी अपनी प्रतिभा और शक्तियों का प्रसार नहीं कर पाता। यही नहीं, आपसी लड़ाई झगड़े और बदले की भावना से वह अपना फ़र्ज भी भूल बैठता है। अलग रहकर अपने को बनाने के साथ साथ क्या वह फ़र्ज को नहीं निभा सकता? अच्छा तुम्हीं बताओ हम लोग साथ रहकर क्या अपना फ़र्ज अदा कर रहे हैं? सिवा इसके कि मन ही-मन एक कटुता पाले चले जा रहे हैं। अब तो न फ़र्ज है न सद्भावना अलग रहने में। कोशिश करते कि कम से कम दोनों रहें और कुछ भी न होता तो एक तो रह ही।

प्रभा अपलक आसमान को देखती रही। बोली बात तो गलत नहीं लगती।

ठीक यही बात मैंने उनसे कही थी, प्रभा! मैंने कहा कि बात सही जरूर लगती है लेकिन आत्मा नहीं मानती। लगता है यह तो घोर

स्वाथ है। तो फिर वह देर तक आत्मा और सस्कारो का बातें बताते रह। कहत थे कि आत्मा नाम की कोइ चीज नहा होनो। अभ्यास, प्रभाव, परम्परा, नकल, सब मिलाकर एक प्रकार क मस्कार मन म जमा दत हैं। यही सस्कार हर नया काम करन म बाधक हात हैं। हम समझत हैं कि यह हमारी आत्मा हम रोक रही है। आत्मा न हो गई दरवाज पर बँधा हुआ कुत्ता हो गया। अनजान आदमी आय तो भाकन और उछलन कूदन नग और परिचित आए तो दुम हिला रह हैं। जो मांस नहीं खाता, उसकी आत्मा मांस खाने म कोचती है और जो प्याज स परहज करता है उस प्याज अपनी आत्मा क विरुद्ध लगती है। अब या तो यह मानिए कि जा मांस और प्याज खात हैं उनम आत्मा नाम की कोई चीज होनी ही नहीं, और आत्मा का ठका कवल कुछ लोगा न ही ले रखा है या यह कि आत्मा केवल सस्कारा का दूसरा नाम है। एक जमाना था जब कट्टर पडित की आत्मा नल का पानी पीन म रोती थी और वह हाथ धान के लिए मिट्टी भी साथ लिये घूमता था। यानी अब यह भी मानो कि आत्मा केवल पुराने जमान म ही हुआ करती थी। अमल म अपनी परम्परा प्रियता और नये का स्वीकार न कर पान क आलस्य और मूखता का हम अन्तरात्मा नाम द दत हैं। वरना ये केवल सस्कार हैं और एक बार सस्कारा का असली रूप पहचानकर आप अपन सस्कारा को बदल भी सकत हैं।

प्रभा अपलक सुन रही थी और मैं कुर्सी के बल उठा हुआ उसे बताए जा रहा था। मन म आया कि अगर मैं इस इसी तरह समय-समय पर बातें बताता रहूँ तो यह जान कितना सीख जाएगी! खुद जरा-सी लग जान पर थोडा-सा समय देकर मैं तो इसे पढा भी सकता हूँ। आज जब मेरे आस-पास क लोग बी० ए०, एम० ए० हाँ, उनकी बातें एक-स-एक घटी हागी, तब प्रभा को भी तो उनम उठने-बठन लायक बनान क लिए थोडा-बहुत पढ़ाना ही पडेगा। चलो, उसके लिए यह मानसिक तयारी हो सही। कालेज तो जब जायन करेगी तब करगी।

कम-से कम इतना तो हो जाएगा कि शिरीष भाई से मिलाने की बात सोचते समय मन म जो सकोच आया था वह तो नही आएगा तब । मैने उसे सोचने और सवाल करने का पूरा समय दिया। वह बोली, सुनन म तो सभी बातें समझ म आ जाती हैं। लेकिन आज ही तुम मुझसे कहो कि उलटे पल्ले की साडी पहनकर मुह खोले, सडक पर मेरे साथ चलो तो मेरी हिम्मत नही पडेगी ।"

बात उसकी समझ म आ रही है इससे सतोष हुआ। कहा, 'तब तो सस्कारो की ही बात सच हुई न ? शिरीष भाई ने सस्कारो या अन्तरात्मा के बारे म एक बडा अच्छा उदाहरण दिया। उन्होने कहा मन म जमे हुए सस्कार रेल के डिब्बे मे आराम से बठे हुए मुसाफिरो की तरह होते हैं। भरे हुए डिब्बे म आप घुसने की कोशिश कीजिए अन्दर वाला हर आदमी आपको बाहर धकेलेगा, कोशिश करेगा कि आप भीतर न आन पाएँ। लेकिन आपको भी तो आवश्यकता है, सो लड भिडकर जसे-तसे आप भीतर घुस जात हैं। एक बार जहाँ आपने अपने आपको भीतर वालो से स्वीकृत कराया कि सारा विरोध समाप्त हो जाता है। आप भी उनम से एक हो जात हैं। और थोडी ही देर म हालत यह आ जाती है कि जिस जगह को आपने बुरी तरह युद्ध करके हासिल किया था, एकाध घटे बाद उस जगह को छोडकर इधर उधर हो भी आएँ तो आपकी जगह सुरक्षित ही रहती है। लेकिन यही एक मुसीबत और है। जहाँ आप भीतर वालो म से एक बन कि आप भी दूसरो की तरह नये आने वाला का विरोध शुरू कर देत है। इस बात को बिलकुल भूल जात हैं कि आपके साथ भी यही व्यवहार हो चुका है ।"

मगर प्रभा ने इस बारे म कोई सवाल न पूछकर एकदम बात बदल दी मैं अभी अभी यही सोच रही थी कि तुम्हारे यह शिरीष भाई आखिर मानते किस चीज को हैं ? मेरा बडा मन होता है कि उनसे मिलूँ, लेकिन बडी झेंप लगती है। उनसे क्या बातें करूँगी ? मेरी तो जबान भी नहीं खुलेगी।

"जबान कसे नहीं खुलेगी ? तुम्हें हम जरूर मिलाएँगे,' मन कहा। फिर प्रभा की बात का जवाब दिया ठीक यही बात मन उनसे पूछी थी कि शिरीष भाई आप सारी चीजों का विरोध करते हैं, आखिर आप मानते किसे हैं ? तो जवाब में वे जोर से हँस पड़े। बोले ईश्वर धर्म, मन्त्र आत्मा और संस्कार के बाद जो भी कुछ बाकी बच जाता है मैं उस सबको मानता हूँ। मैंने कहा, यानी किसी को नहीं मानते तो बोले 'अगर मानने लायक सारी बातें इन्हीं चार-पाँच शब्दों की बपौती हैं तो यही समझ लीजिए कि मैं किसी को नहीं मानता।' मन फिर और कुरेदा ऐसा कैसे हो सकता है ? बिना किसी चीज के विश्वास के आदमी विकास कैसे करेगा ? किस दिशा में करेगा ? तो बोले, हर स्थिति में, हर कहीं आदमी विकास करता है, वह पुराने को छोड़कर नया ग्रहण करता है—इतना काफी है मानने के लिए। आदमी के पाँव इसीलिए आगे की ओर मुड़े हुए बनाये गए हैं कि वह आगे चले, सामने बढ़े। भूत के पाँव पीछे मुड़े बताए जाते हैं—अर्थात् अतीत-जीवी आदमी भूत होता है। और सच पूछो तो तुम जिस भारतीय संस्कृति, भारतीय गरिमा कहते हो—मुझे यह सारी-की-सारी एक सिरे से इन्हीं अतीत-जीवी भूतों की सभ्यता और संस्कृति लगती है। मेरा हर चीज से विश्वास उठ गया है। इसके बाद प्रभा, उन्होंने एक ऐसी सस्ती बात कह दी कि मेरा खून खौल उठा। अगर उनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा न होती तो मैं उन्हें वहीं उठाकर दे मारता। लेकिन गम खा गया।'

'क्या ?' प्रभा ने जरा चिन्ता और उत्सुकता से पूछा।

वे बोले, 'समरजी मुझे तो ऐसा लगता है कि हम लोग उन झूठा, मक्कारा, ठगों और नपुंसकों की औलाद हैं जो सिर्फ अतीत में जीते थे। न उन्हें अपने समाज की समस्याओं का खयाल था न अपने समय का। वे सारी दुनिया से अलग रहा करते थे और खुद ही अपने माथे पर अक्षत चन्दन लगा-लगाकर अपनी पूजा किया करते थे, कि हम कितने महान् थे। कभी इनने नहीं सोचा कि वे जिन्हें पूजते हैं, या जिन्हें हीरो

बनाए हुए हैं व महान् और हीरो आखिर क्या है ? इसीलिए तो है कि व सीना तानकर अपने समय और समाज की समस्याओं से जूझे थे, सिरों पर कफन बाँधकर उन्होंने अपने युग की ललकार का जवाब दिया था। बटकर राम नाम का कीर्तन करते हुए वे लोग हीरो नहीं बन गए थे।, मैं बात काटकर बोला, खैर जो भी हो अपने पुरखों को यों याद करना अच्छा नहीं लगता। वे जैसे भी थे, अच्छे ही थे। तो शिरीष भाई बोले 'आप ऐसा कह सकते हैं, लेकिन मैं तो अपने आपको भी गाली देता हूँ कि क्यों कुछ नहीं कर पाता ? हमारे ये पुरखे खुद गोबर संस्कृति के अजायबघर थे। हम उनकी संतान हैं, इसलिए सिर्फ भुस के पुतलों की सेनाएँ हैं—जो सिर्फ या तो जलना जानती हैं, या जगह को कूड़े-कचरे से भरना, सो या ही एक दिन जल जलकर खाक रह जाएँगे। और कुछ न कर पाएँ तो कम से कम इतना तो हम कर ही जाएँ कि अपने बीच में जो थोड़ा बहुत लोहा सोना है उसे ही अपनी जलन की आग में तपाकर फौलाद और कुंदन बना दें' सहसा मैंने अपनी बात बीच में तोड़ दी। मुझे लगा शिरीष भाई का यह प्रभाव पता नहीं मुझे कहाँ ले जाएगा ! आजकल जैसे मैं अपनी भाषा में सोचना तो एकदम बन्द ही कर दिया है। हमेशा वही दिमाग पर छाए रहते हैं। मानो उसी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए कहा, 'कभी-कभी तो इस आदमी का गुस्सा देखकर मुझे भी जोश आता है कि मैं भी इसी तरह क्यों नहीं साच पाता ? मुझे भी कोई चीज इसी तरह क्यों नहीं मथती और क्या एकदम जड़ होता चला जा रहा हूँ ? कभी दया आती है कि बेचारा दुखी और परेशान है इसीलिए हर चीज का विरोधी हो गया है। लेकिन जो भी हो, उनकी बातें और बोलने का ढंग मुझे बहुत प्रभावित करता है।" और कुछ देर चुप होकर मैं उनकी भाव भंगिमाओं की कल्पना करता रहा।

अचानक लगा जैसे सुनते-सुनते प्रभा सो गई। पहले मन हुआ कि सोने दो, बेचारी सारे दिन की थकी मांदी है। और मैं उस समय की याद करने लगा जब शिरीष के पास से लौट रहा था। पिछला जो भी कुछ

था उस समय तो उस सबको जैसे मैं भूल गया था मानो वह कभी मरा रहा ही नहीं। इन्हीं नयी बातों का एक-एक शब्द दिमाग में गूंज रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे दिमाग के कमरे हजारों साल से बन्द थे और उनमें सीलन घुटन, धूल-कूड़ा, उमस जाले और भी न जाने क्या अलाय बलाय जमा हो गए थे। उन कमरों की हवा खराब होकर जहरीली बन गई थी। उनके भीतर का सन्नाटा और एकान्त खुद अपने को ही खाए जा रहा था। अब जैसे उन कमरों के दरवाजों को किसी ने भारी बूटों की ठोकर मार-मारकर खोल दिया है धीरे धीरे घुटन और उमस निकलती जा रही है। वर्षों पुरानी धूल प्रचण्ड विक्षोभ से उठ खड़ी हुई है और चारों तरफ ऐसी आवाजें गूंज रही हैं मानो किसी ने गहरी की मक्खियों के छत्ते पर ईंट दे मारी हो। घर में प्रवेश करते हुए मैंने अपने आपसे कहा था, "अब मैं अतीत-जीवी भूत नहीं हूँ। मेरा मस्तिष्क अब दुनिया भर के कूड़ा-करकट से साफ है। लेकिन अब वह कौनसा सपना है जो खाली कमरों में सजाया जाएगा? वे कौनसे स्वरों के गीत हैं जो अब भरनों की तरह गूंजेंगे? वह कौनसा विराट युग है जिसके गाने के लिए हम छोटे-छोटे पहिये एक ताल-लय पर चलने लगेंगे? कहाँ से आएगा वह युग? क्या हमारे रहते ही वह आएगा? हम क्या सचमुच उसे देखेंगे? उसे महसूस करेंगे कि यह वही युग है जिसके लिए हम रातों में तड़पे हैं?

और युग बदलने की कुलबुलाहट और बेचैनी को मैं बाल्टियाँ भर भरकर ऊपर की छत पर छिड़काव करने में बहलाता रहा था। उस समय प्रभा को सब बातें याद आ गईं और मन-ही-मन उन सबको दुहराते फिर वैसी ही अकुलाहट होने लगी। समझ में नहीं आया कि क्या करूँ? प्रभा शायद सचमुच सो गई थी। पहले मन हुआ कि खाट की मूंज का कोई तिनका लेकर उसके कान में घुमाऊँ। हम जाग पड़े हैं और आप कैसे मजे में सो रही हैं! और अचानक मन में आया कि उसकी कमर गुदगुदाने लगूँ। कमर गुदगुदाने से वह बहुत उछलती है, यह मुझे पता था।

एक डर है कहीं जोर से न चीख पड़े। मन की इच्छा ऐसी दुर्निवार हो गई कि सहसा मैं उसकी कमर में उँगली गड़ाकर गुदगुदाने लगा, 'ए प्रभा, उठो भाई, हम तो जाग रहे हैं आप बातें करते-करते सो भी गए।

'हैं ऽऽ? क्या हुआ?' प्रभा एकदम जोर से उछल पड़ी, 'मैं कब सो गई?"

मैं और भी गुदगुदाता कि अचानक मुझे लगा जैसे उसकी कमर में कोई गोली-सी बंधी है। शायद डोरे से बँधी थी। उसे चुटकी में पकड़ कर पूछा यह क्या है, भाई?"

'कुछ नहीं कुछ नहीं, छोड़ दो। प्रभा घबराकर प्रार्थना के स्वर में बोली।

'अब तो और भी नहीं छोड़ूंगा। पहले मुझे बता दो मैंने उसे कसकर पकड़ लिया और टटोलकर जानने की कोशिश करने लगा कि क्या है। सुपारी-जैसी सख्त चीज थी।

'तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। छोड़ दो। कुछ नहीं है,' उसने ऊपर से मेरा हाथ हटाने की कोशिश करते हुए कहा। लेकिन मैंने छोड़ा नहीं। उसके मना करने का ढंग ऐसा घबराया हुआ था कि मैं बार-बार पूछने लगा। उसने बताया, मेरे पेट में तकलीफ रहती है, सो अम्माजी ने दवा बताई है।'

साफ बहाना था। मैंने सख्त स्वर में कहा, 'दवा बाँधी तो नहीं जाती? खाई जाती है। बताओ नहीं तो तोड़कर फेंकता हूँ'

तुम्हें मेरे सिर की कसम है, वह गिड़गिड़ाती रही।

मुझे गुस्सा चढ़ना आ रहा था। गुर्राकर पूछा, "नहीं बताना?"

तब उसने डरते डरते बताया 'भाभी और अम्माजी मानी ही नहीं। मैंने बहुत कहा कि मेरा विश्वास नहीं है तो मुझे ही गालियाँ देने लगीं। उनका मन रखने को करना पड़ा।

मैंने बात काटकर पूछा, उनका मन रखने को व्रत रखना पड़ा, यह तो समझ में आता है लेकिन यह क्या करना पड़ा? साफ-साफ क्यों नहीं

बताती ?"

"उन्होंने कहा उन्होंने कहा ' प्रभा हकलाकर रुआंसी हो आई।

"क्या कहा, अब बोलती क्यों नहीं हो ? सचमुच मुझे लग रहा था कि गुस्सा काबू से बाहर हुआ जा रहा है।

"उन्होंने कहा कि सयद बाबा की धूनी से पेट ठीक हो जाएगा।" मानो मरे पड़ते तमाचे को बचा रही हो, इस तरह कुहनी सामने की ओर करके जस-तस वह बोली।

और जब नहीं रहा गया तो उसके दोनों कन्धे झकझोरकर मैंने पूछा, 'क्या पेट ठीक हो जाएगा ? साफ-साफ क्यों नहीं बताता ? कोई रोग है तो हमसे कहता।

प्रभा सचमुच रोने लगी, ' अवस्थीजी की बीवी कहती थी कि शादी के चार साल बाद सयद बाबा की धूनी से उनके प्रमोद हुआ था "

बात समझ में आयी तो अचानक उसके कन्धे छोड़कर मैं पागलों की तरह हँस पड़ा, "अच्छा तो यह बात है ! इसीलिए ये सारे व्रत-उपवास हो रहे हैं ! सयद-पीर पूजे जा रहे हैं ! कमर में सयद बाबा की धूनी और कपड़ों में इत्र लगाया जा रहा है !' और मैंने इतने जोर से दाँत पीसे कि करकराहट खुद सुनायी दी, 'बच्चा चाहिए ? खुद अपने खाने-पहनने का ठिकाना नहीं और टटूँना अभी से लटका लो " और एक ही झटके में मैंने वह कमर में बँधी धूनी की पोटली ताड़कर गली में फेंक दी। कितनी हवाई और आसमानी बातें सोच रहा था मैं अभी अभी ! सचाई तो यह है ।

बाकी समय निष्फल क्रोध में भुनता हुआ मैं खाट की पाटी से माथा कूट रहा था और पुटना में सिर दबाए प्रभा रो रही थी, 'बताओ मैं क्या करूँ ? सारा दिन मेरी जान खाई जाती है । बाँझ-बाँझ कह कहकर भाभी और अम्मा कोसती रहती हैं । भाभी अपनी बिटिया के पास नहीं झाँकने देतीं। छाया से बचाती हैं '

हर बार माथा ठोककर म कहता कितना अकेला हू म । सोचा था कि प्रभा मरा साथ देगी लेकिन यह यह । यह वही प्रभा है जिसन एक बार गणेशजी से बरतन माँज लिए थे और आज ? इसी के ऊपर मन व बडे-बड सपन सजोए थ ?

दस

"यहाँ क्यो बठ हो सुबह स ? कुछ काम नही है ? कॉलिज नहीं जाना आज ? प्रभा न आकर बहुत मुलायम स्वर म पूछा।

मैं सुस्त और उदास-सा प्रस स मान के बाद ऊपर छज्ज पर ही बठ गया था। कोठरी की आड होन क कारण यहाँ छाया थी—गुम-सुम, न किसी से बोला न कहा-सुना। बठा-बठा एक गिलहरी को कुट-कुट करते दखता रहा। शायद मरा चेहरा इतना थका और उतरा हुआ था कि प्रभा न पास आकर मरी कलाई छूकर दखी—बुखार तो नहा है। मै सूनी सूनी आँखो स प्रभा को देखता रहा और तब भी चुप रहा। उस दिन की बात न मरे भीतर की जान किस चीज को जड से हिला दिया था कि मुझ अब अपन आस पास कुछ भी सच नही लगता था। लगता था, झूठ और छल का एक अन्तहीन जाल है और उसम मुझ कद कर दिया गया है—एक फन्दे को काटता हू तो दूसरा सामने आ जाता है यह प्रभा ? यह भी वसी ही निकली ? इसी को लकर मैंन अपने सुनहल भविष्य क सारे सपन सजोए थ ? जब भी मैं उसे दखता मरे मन म सवाल अपने-आप गूँज जाता।

फिर म चुपचाप नीच आँगन म देखन लगा। नीच चूडियो स भरा बडा भारी-सा हाथ रखा था। इधर उधर मोटा मला सा कपडा लगा था

ताकि चूड़ियाँ फूट न जाएँ। हरी-नीली, लाल-सुनहली, तरह-तरह की चूड़ियों की मालाएँ बड़ी सावधानी से लिपटायी हुई थीं। चूड़ी वाली ओट में पड़ती थी और झुककर ही उसे देखा जा सकता था। नीले-नीले फूल-पत्ती गुदे उनके हाथ ही कभी दीख जाते थे। जिस हाथ का यह गोदना वाले हाथ चूड़ियाँ पहना रहे थे वे निश्चय ही भाभी के हाथ हैं, यह मैं जान गया। उनके अँगूठे के पीछे एक काला-सा दाग है।

मेरी इस चुप्पी से प्रभा शायद एकदम घबरा गई। वहीं धरती पर बैठकर कन्धे पर हाथ रखकर पूछा, 'तुम बोलते क्यों नहीं? तुम्हें मेरी कसम है, बताओ न क्या बात हो गई? किसी से लड़ आए क्या?'

'कुछ नहीं,' चटख गले से सूखी आवाज निकली। मैं जिस तरह बैठा था बैठा रहा। खुली पलकों और सनी आँखों से जिधर देख रहा था उधर ही देखता रहा। अचानक इतनी देर से दबा एक बड़ा-सा प्रश्न उठता हुआ आकर फिर सामने खड़ा हो गया—अब? अब क्या होगा?

'ताभी!' प्रभा जरा-सा ओट में हो गई। आन्तरिक बेचैनी से भरा हाथ हिलाकर भराए गले से प्रार्थना के स्वर में पूछा, 'अभी तक नाराज हो उस बात पर?' उसकी अधखिली गुलाबी कमल कली-सी आँखों में पिघली चाँदी-सा पानी तर आया। वह यों ही अनुराग और क्षमा-याचना के स्वर में मुझे देखती रही।

आवाज की आर्द्रता से चौंककर बहुत ही धीरे से मैंने गरदन घुमाकर उसे देखा और फिर उधर ही देखने लगा जिधर देख रहा था। घुटी आवाज में बताया प्रभा, मेरी नौकरी छूट गई।

छूट गई? कैसे? चौंककर प्रभा उछल-सी पड़ी। शायद एक पल को उनकी आँखों के आगे सारे परिणाम कौंध गए।

तभी नीचे से आती अम्मा की पुकार सुनायी दी, "बहू, अरी ओ बहू। फिर बड़े स्निग्ध स्वर में कहा, 'जरा नीचे तो आ, बिटिया!'

जवाब में जरा-सा झुककर प्रभा ने जवाब दिया आयी अम्माजी।'

मैंने बताया, 'यों ही। लाला कहता था कि पन्द्रह दिन तो तुमने

काम सीखा, इसलिए उन दिनों का कुछ नहीं। तनख्वा कागज पर पचहत्तर होगी, लेकिन देंगे साठ। इसी बात पर मैं लड़ आया। मैंने बिना हिल-डुल प्रभा को बता दिया 'नाम पाट टाइम का और काम पूरा। फिर ये सब।

'क्यों ऐसा क्यों? बड़ा आया पचहत्तर लिखाकर साठ देने वाला! तुम दिवाकर से जाकर क्या नहीं कहते? उनके पिताजी का तो वह दोस्त है न!' प्रभा के माथे पर बल पड़ गए, 'अच्छा अंधेर है यह भी!

'अंधेर तो है ही' दर्दीली मुस्कराहट होठों पर उभर आई। फिर गहरी साँस लेकर धीरे से कहा "अब उनसे क्या कह जाकर! देखो, कुछ न-कुछ तो करना ही पड़ेगा। कल और जाऊंगा आखिरी बार। पन्द्रह दिन के ही सही, कमबख्त कुछ तो दे। इसी उम्मीद में यह जो दुनिया भर का उधार चढ़ा लिया है, इसे भी तो कहीं-न-कहीं से चुकाना ही है।'

फिर अम्मा की आवाज आयी 'अरी आयी नहीं, कर क्या रही है? फिर कर लीजो बातें बाद में, मुझे आश्चर्य हुआ कि आवाज में अब भी चिकनाई और प्यार है।

'क्या बात है? जाती क्यों नहीं हो? अम्मा बुला रही हैं जबसे?" मैंने पूछा।

'तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? चूड़ी पहनने को बुला रही है अब। आजकल तो हमारी वही पूछ हो गई है न!' प्रभा ने परेशानी से जवाब दिया।

हूँ! मैं एकदम गंभीर हो गया। सख्त स्वर में कहा "नहीं प्रभा, चूड़ी-ऊड़ी कुछ नहीं। हम किसी की झूठी उम्मीद नहीं रखनी और किसी से कुछ नहीं लेना।' भरा चेहरा एकदम भावनाहीन हो गया।

अम्मा ने फिर आवाज दी तो मजबूरी की कातर निगाहों से देखती प्रभा बड़े बेमन से उठकर नीचे चली गई। मैंने एक बार उसे देखा लेकिन यों ही चुपचाप देखता रहा। आगे रास्ता से लौटकर उसने धीरे से कहा

देखो तुम फिकर मत करो। गयी नौकरी तो जाने दो, इतना खून क्या जलाते हो ? मेरे पास घड़ी है सोने की चूड़ियाँ हैं, इयरिंग हैं, आखिर किस दिन काम आएंगे ? बाद में बन जाएँगे। या भी तो सन्दूक में ही बन्द रखे रहते हैं। यहाँ कौन रोज रोज पहनने की जरूरत पड़ती है ? थोड़ा देर में आकर निकाल देती हूँ। पढ़ाई तो चलनी ही ' और उसी तरह उलटे कदमों वह लौट गई। कोई और समय होता तो शायद मैं उसकी इस बात से कृतार्थ हो जाता—मेरी आँखें डबडबा आतीं, लेकिन अब सुन लिया और बिना सोचे यों ही बैठा रहा।

नीचे से अम्मा की प्यार भरी झिड़की सुनायी दी, "हमारा इतना भी अधिकार नहीं है तुम पर ? पहना दो जो मनहारिन पहना दो बोल कैसी पहनोगी ? अपने आप पसंद कर लो।" यानी प्रभा नीचे पहुँच गई है।

'नहीं नहीं, अम्माजी, मेरा मन नहीं है। अम्माजी, ऊपर चलकर देख लो, मेरे पास ऊपर सन्दूक में बहुत रखी हैं।' यह प्रभा थी।

'और पहन लेगी तो क्या हो जाएगा ? रखा तो सभी के पास है। हम लोगन का भी तो पेट पलेगा किसी तरह ?' चूड़ीवाली ने कहा और खनखनाहट से लगा कि चूड़ियों की मालाएँ खोल-खोलकर दिखाने लगी। एकाध टूटा फूटा वाक्य ऊपर तक आया 'इसके साथ तो यह खूब खिलेगी गोरी-गोरी कलाई में तो यह खिलती है।

'पहन ले न प्रभा, अब इतना नखरा छोड़ अम्माजी की बात रखने की खातिर ही पहन ले' नीचे का स्वर आया।

एकदम चुप्पी छा गई। मैं थोड़ी देर साँस रोके प्रतीक्षा करता रहा कि कोई और आवाज सुनायी दे। मुझे विश्वास था कि वह नहीं पहनेगी। हूँ, अब चूड़ियाँ पहनाने का ध्यान आया है। अभी तक तो जाना कोई रहता ही नहीं था। जरा-सा नीचे की ओर झाँककर देखा। अम्मा और नीचे चूड़ियाँ पहन चुकी थीं और बड़ी प्रसन्न उत्सुकता से प्रभा की ओर देख रही थीं। अपना घुटना पर बाँह रखे बैठी थीं और उसने अपना हाथ चूड़ी वाली की ओर बढ़ाया हुआ था। एक हाथ दूसरे

पाँव के पंजे पर रखा था और उसमें ढेर सारी चूड़ियाँ पहनायी जा चुकी थीं। दूसरे हाथ का पंजा दबा-दबाकर मनिहारिन चूड़ियाँ चढ़ा रही थी। नीचे कुछ साबुत और कुछ टूटी चूड़ियों के टुकड़े बिखरे थे। दर्द से प्रभा ने अपनी गरदन दूसरी ओर मोड़ ली थी। आँख बन्द थी और होठों से बार-बार सी सी की कराह फूट पड़ती थी। दूसरा हाथ पाँव के पंजे पर रखा अँगूठे को कसकर भींच रहा था।

'सन्न' से जैसे कोई नुकीला तीर दिमाग़ की तहों को चीरता चला गया। मैंने मना किया था न[1] हूँ। फूल नथुनों से कुछ फुफकार निकली और मैं झटके से उठ खड़ा हुआ। दाँत एक दूसरे के ऊपर घिसे और होंठ भिंच गए। दृढ़ता से क़दम रखता हुआ नीचे उतर आया और सीधा चूड़ी वाली के सामने जा खड़ा हुआ।

प्रभा चूड़ियाँ पहन चुकी थी और गोरे के धक धक करते रंगों में दोनों कलाइयाँ झलमला रही थीं। उसने मुझे देखा और जैसे बिजली के करण्ट से उसका चेहरा सफ़ेद पड़ गया। जैसे तैसे आवाज़ ठेलकर खिसियानी-सी हँसी हँसने की कोशिश करते हुए उसने कहा, 'देखो, कैसी लगती हैं? अम्मा और भाभी की पसंद की हैं। उस वक़्त वह शायद यह भी भूल गई कि अम्मा और भाभी के सामने वह मुझसे नहीं बोलती।

मैंने एक पल उसे अपनी निगाह की सारी कड़वाहट और तीखेपन से पूरा और झपटकर उसकी दोनों कलाइयाँ चूड़ियों के ऊपर से पकड़ लीं। भय से प्रभा मानो घिघिया उठी। मुझे नहीं पता उस समय मेरे हाथों में कौनसा दुर्दान्त दर्प आ गया था। तड़पकर मैंने उसकी दोनों कलाइयों को आपस में ज़ोर से बजा दिया और मुट्ठियाँ भींचकर चूड़ियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। चट चट करते हुए चूड़ियों के टुकड़े ज़मीन पर बिखर गए और मैं पागलों की तरह ऊपर मुँह करके गला फाड़कर ऊँची आवाज़ में अट्टहास कर उठा। मानो किसी भूचाल को मसलकर फेंक दिया हो। बुरी तरह से मैंने उसके दोनों हाथ छोड़ दिए। चूड़ियों के

टुकडे मेरी हथेली और उँगलियों में घुस गए थे। मेरे हाथ खून से तर-बतर थे और उसकी कलाइयों से खून की कई धारियाँ चू रही थीं। यह खून टपकता देखकर मैं और भी जोर से ठठाकर हँसा। फिर बिना इधर-उधर देखे, खूब आराम और निश्चितता से हाथ हिलाता हुआ ऊपर लौट आया।

चूड़ीवाली, अम्मा, भाभी, सभी मुझे फटी-फटी आँखों से देख जा रही हैं यह बिना मुड़े भी मैं जान गया।

बड़ी देर बाबूजी प्रतीक्षा करते रहे कि मैं ही अपनी तरफ से कुछ कहूँ। आखिर हारकर उन्होंने बात का सूत्र ही लिया "क्यों रे समर, तूने तो शायद दस तारीख से काम शुरू किया था?"

मैंने लापरवाही से जवाब दिया, 'बाबूजी, मेरी नौकरी तो छूट भी गई।

'अरे तो वो कोई तुमसे कुछ माँग थोड़े ही रहे हैं जो तू नौकरी छूटने की बात बता रहा है?' अम्मा ने बीच में कहा।

उद्धत स्वर में मैंने जवाब दिया, "साफ-साफ तो नहीं ही माँग रहे, लेकिन मतलब क्या है, वह मैं भी जानता हूँ।

इस बार बाबूजी एकदम भड़क गए। हवा में हाथ-पाँव फेंककर कहा जानता है तो क्या फाँसी पर चढ़ा देगा? बड़ जानते हैं ये! हमने तो एक बात पूछी सो सीधा जवाब तो दिया नहीं काटने दौड़े। आ चल मुझे मार! फिर माथे पर हाथ मारकर बोले, बेटा, हम तो तुम्हारी नस-नस जानते हैं। हमारे सामने ही तो बड़े हो। अब साफ-साफ माँगने की धमकी देने लगे? हिम्मत तो देखो पूत की! अरे हमने अपनी पहली तनख्वाह लाकर बाप को दी थी, सो अदब-कायदा गया चूल्हे-भाड़ में साफ-साफ माँगने की धमकी देने लगे। हरामी, तुझे पाला-पोसा पढ़ाया लिखाया, सब इसलिए कि तू यों हमारी इज्जत उतारकर रख ले? छाती पर चढ़ चढ़कर आए? सीधी-सीधी बात करो तो कटखने पागल

कुत्ते की तरह भौंके ?"

मैंने दुखी और सयत स्वर म पूछा, "बाबूजी, मैंने आखिर आपसे कहा क्या है जो आप इतने नाराज हो रहे हैं ?"

"और तू हमसे कहेगा क्या शहजादे ? हम अंधे हैं न ? दीखता थोड़े ही है हमें ? हाँ अब तो पढ़ लिए, लिख लिए, ब्याह हो गया। अब माँ-बाप का क्या है ! जाएँ जहन्नुम म चूल्हे म पड़ें और भाड़ म निकलें ! तुम अपनी मस्ती मत छोड़ना।" वे चीख चीखकर सुनाते रहे।

मैंने तो मना किया था बाबूजी, कि मेरी शादी मत कीजिए। पहले तो आप ही लोगों ने जबरदस्ती

शोर सुनकर घर के और लोग भी जमा हो गए थे। डरे-सहमे-से एक ओर झुण्ड बनाए खड़े सब देख रहे थे।

"शादी शादी ! बाबूजी को जब और कुछ कहने को नहीं सूझा तो बेहद नफरत से उन्होंने दुहराया। वे उत्तेजना के कारण थरथरा रहे थे। "ऐसा पता होता कि तू ऐसा निकलेगा तो हम तो तुझे पैदा होते ही खोदकर गाड़ देते। क्या निहाल कर दिया आपने ! अब पढ़ा लिखाकर हाथी बना दिया है न, सो हमारी ही छाती रोंदोगे। बेटा यही रीत है। खूब नाम ऊंचा कर रहे हो पुरखों का ! अब तो पर फूटे ही हैं। घर में अब और तो कोई कुछ रहा ही नहीं। अपनी मरजी के मालिक हैं। दूसरे भोगत हैं सो भोगन दो। कुत्ते हैं अपने आप चुप हो जाएँगे थककर। सुबह चूड़ियाँ पहनाईं सो फोड़ दी लाट साहब ने। किसी का अब हक थोड़े ही रह गया है तुम पर और तुम्हारी बहू पर ? तू तो ऐसा ही चला आया था ईश्वर के पास से ? हम तो सोचें कि कौन मुँह लगे, कौन मुँह लगे। समझदार लड़का है खुद ही सारी बातें समझता है पर उन्हें तो अच्छा-से-अच्छा खाने को मिलता है न, सो उनकी सोचे बलाय। अपने लिए पढ़ लें अपने लिए कपड़े आ जाएँ अपनी बहू का साज सिंगार हो जाए बस सब अपना ही अपना हो जाए। जब तक कोई कुछ बोले-कहे नहीं तब तक सिर पर ही चढ़े चले

आत हैं ।'

आखिर जब नहीं सुना गया तो पूछा, 'बहू के लिए कौनसा साज सिंगार लाया हू बाबूजी ?"

"और जवाब दिये चला जाएगा जवाब दिये चला जाएगा ?' बाबूजी क्रोध मे हकलाने लगे। अचानक गुस्से से कांपते हुए वे मेरे ऊपर झपट पड़े और भाई साहब, अमर उन्हें रोकते ही रह गए। मेरे संभलने से पहले ही लात घूंसे थप्पड़ों की बौछार शुरू हो गई। हांफते थे और मारते जाते थे, ले ले और दे जवाब ? और जवाब देकर देख ? लाख बुड्ढा हूँ, हजार मरा गिरा हूँ, लेकिन तेरी अक्ल अभी भी ठिकाने लगा दूंगा। तू बहुत हाथ से निकल गया है " मैं चुपचाप बैठा-बैठा पिटता रहा घुटते क्रोध की आग में भुनता रहा और एक शब्द भी मुंह से नहीं बोला। शायद यह बात उनके गुस्से में घी का काम कर रही थी। न रोया न अपने को बचाने की कोशिश की। बाबूजी को भाई साहब और अमर ने पकड़ लिया था, लेकिन खुद ही डर के मारे थर-थर कांप रहे थे।

'निकल जा मेरे घर से, निकल जा ! हट जा दूर, मेरी आंखों से डूब मर कहीं कुएं-तालाब में कमबख्त कमीने ! वो तो हम गुस्से में रंग ढंग देख रहे थे, अब पढ़ने लगे हैं न

'अब चुप रहिए बाबूजी, गुस्सा शान्त कीजिए।' भाई साहब समझा रहे थे। वे लोग उन्हें दोनों तरफ से पकड़कर अलग हटाए लिये जा रहे थे। क्रोध के आवेग में उनके मुंह से झाग-जैसा थूक निकल रहा था आंखें खूब चौड़ी चौड़ी फैलकर माथे पर चढ़ गई थीं और मुंह से गालियों की अजस्र वर्षा हो रही थी। स्त्रियां आपस में रुलाई रोकती-सी फुसफुसा रही थीं, 'क्या हुआ ? क्या बात हो गई ?' शायद दो-एक पड़ोस से भी आ गई थीं। उनकी धोतियों की पटलियों को पकड़े बच्चे भी आ गए थे और अब यह दृश्य देखकर रोने लगे थे।

हाँ बाबूजी, अब चला ही जाऊंगा," मैंने झुका हुआ सिर धीरे से

उठाकर भर्राई आवाज में कहा।

सुनते ही उन लोगों को एक ओर झटककर बाबूजी फिर मेरे ऊपर पलट पड़, बो तो मैं पहले ही जानता था वो तो दीख ही रहा था। असल माँ-बाप का है तो अभी निकल जा, अभी इसी वक्त। तू तो जब जाएगा तब जाएगा ला मैं तुझे अभी रास्ता दिखाए देता हूँ। निकालो जी इनका सामान निकालो। विदा करो दोनों को। हमारे ये कोई नहीं लगते। हमारे लिए पैदा होते ही मर गए। चलो उठो जाओ जी। अपना सामान उठाओ और अपना ठिकाना देखो हमने हाथ जोड़े। उन्होंने जोर से आपस में हथेलियाँ मारकर हाथ झाड़े। फिर मेरी बाँह पकड़कर बुरी तरह झंझोड़ते हुए बोले 'जाइए हुजूर, चलिए तशरीफ ले जाइए। हमारे यहाँ आपके लिए कोई जगह नहीं है। खबरदार जो कभी फिर इस घर में पाँव रखा। मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। हमारी तरफ से कहीं मरो, बाहर सड़क पर पड़ो, हमारा बस का नहीं है साँडों को पालना।' तब तक भाई साहब बगरा ने उन्हें फिर पकड़ लिया था और समझाते शान्त कराते एक ओर ले चले थे।

सारी स्त्रियाँ मेरे ऊपर थू थू करने लगी थीं। अम्मा ने डाँटकर दो झापड़ दिए, "तू चुप क्यों नहीं हो जाता समर? खबरदार जो जबान मुँह से निकाली! बाप का बराबर से जवाब दिये चला जा रहा है बेसरम।

इस बार बिना किसी की बात सुने मैंने खूब गरजकर कहा, बस अम्मा साफ़ ही सुनना चाहता था, आज सुन लिया। मुझे खुद ही इस नरक में नहीं रहना। न रात का चैन न दिन को शान्ति! सब मतलब के माँ-बाप बने हैं। कहाँ रहूँगा कुएँ में भाड़ में, कहीं जा पड़ूँगा। कल यहाँ से चला जाऊँगा। सँभाल लेना अपना राज-पाट।" उस उद्वेग, शोर और गुस्से में भी मन के भीतर कहीं लगा कि मैं घोर अनुचित बात कह रहा हूँ। बाप से इस तरह नहीं बोलना चाहिए। दूसरी बात बड़ी अजब लगी कम-से-कम उस अवसर को देखते हुए। मन में आया कि क्या राम

और सीता भी इसी तरह लड भिडकर घर छोडकर तो नही गये थ ? भीतर ही अपनी इस बात पर काइ हँसा भी ।

बाबूजी ने मेरा बात सुनी ता फिर पलटन को मचले लेकिन किसी न नही छोडा । उन्ह व लाग बाहर बठक म ले गए । उस क्षण मैंन मन-ही-मन कसम खाई—कुएँ भाड सडक फुटपाथ कहा भी पड रहूँगा, यहाँ नही रहूँगा यहाँ नही रहना । कही सही, कहा भी सही जहाँ ऊपर छत और नीचे जमीन हा लेकिन इस नरक म अब नहा । भीख माँगा, चोरी करो दुनिया बहुत बडा है

सारा रोना चिल्लाना बन्द हा गया और सार घर-बाहर वाले एक स्वर स मरी भत्सना करत रह, मरी बदतमीजी पर गालियाँ दत रहे लकिन मैं चुपचाप घुटना म सिर गडाए बिलकुल चुप बठा रहा । बस दिमाग म एक हा बात गूजती रही यहाँ नही यहाँ नहा । दुनिया के किसा भी सिरे पर धरती क किसी भी छोर पर कही भी । एक ही तस्वीर कौधती रही आगे आग टीन का बक्सा लादे मैं और पाछ पीछे ठिठकती चलती प्रभा और शायद उसके पाँव रोकता हुआ कुवर (लक्ष्मण ।।—?)

लाहे की सलाखा पर भुनत हुए कबाब की तरह मैं रात भर अगारा पर भुनता रहा । विचित्र विचित्र आवाजें दिमाग म आती रहा । एक पल को भी आँख नही लग सकी, लकिन एक तन्द्रा या जडता थी जा मेरे ऊपर छायी रही और मैं जागृति और सुषुप्ति के बीच जस लटका रहा। मुझ एसा लगता रहा जस मरे दिल की जगह किसी न एक भारी पत्थर रख दिया हो और उसक बोझ स मरी साँस घुटी जा रही हा । पता नही दिल डूबन की बीमारी म कसा लगता है, लेकिन रह रहकर मुझ लगता कहीं हार्ट-फेल ही तो नही हुआ जा रहा ? शरीर इस तरह सुन्न रहा जस ममी की तरह मुझ किसी खोल म बन्द कर दिया गया है । बिलकुल एसा लगता रहा जस केवल-जसी कोई चीज है जो

कटीदार रोओं वाली बाँहों से मुझे भींच हुए है, और मेरे सिर में अपनी सूँड गड़ाकर बूँद-बूँद मेरा खून चूस रही है। मैं छटपटाता हूँ, रोता हूँ, लेकिन उसकी अंगारों जैसी आँखों के सम्मोहन में बँधा हूँ और वह मुझे खाए चली जा रही है। सांय-सांय, भांय भांय करता अजब सन्नाटा दिमाग में कराहता रहा और मैं अपने को इस तरह डूबते महसूस करता रहा जैसे पानी की सतह पर लिटाकर किसी ने मेरी छाती पर पाँव रोप दिया हो। मुझे ऐसा लगता रहा जैसे रात भर पानी बरसता रहा। बार-बार मैं चौंककर उठ जाता कि अभी बन्द हुआ या नहीं।

अचानक किसी ने मुझे छुआ तो मैं बुरी तरह हड़बड़ाकर उठ बैठा। ऊपर से चौंक गया, लेकिन भीतर से मानो उम्मीद कर रहा था कि इसी तरह कोई मुझे छुएगा और मैं उसके इशारे पर उठकर उसके पीछे-पीछे चला जाऊँगा। बड़ी मुश्किल से आँखें खोलकर देखा कौन है। कलाई में पट्टियाँ बंधे हाथों से बड़ी डरती झिझकती-सी प्रभा मुझे छूकर जगा रही थी 'चार बज गए जागोगे नहीं आज ?

हाँ, याद आया, शायद रात को कई बार प्रभा ने मेरा माथा छुआ था या माथे पर कुछ मलती रही थी। मैं उठ बैठा। मुँह हाथ धोते हुए सोचा मुझे आज यह अजब अजब-सा क्यों लग रहा है। मैं इस तरह सारे काम क्या किये चला जा रहा हूँ जैसे किसी ने मंत्र से मुझे बाँध दिया है और मैं अपनी इच्छा के बावजूद सब करता चला जा रहा हूँ ? मुझे ऐसा क्यों महसूस हो रहा है जैसे यह हाथ पाँव मेरे नहीं हैं ? और मैं कहीं दूर बहुत दूर ऊँची जगह चला गया हूँ, और वहाँ से सारी चीजें बड़ी धुंधली धुंधली, अस्पष्ट और अवास्तविक-सी दिखायी देती हैं। किसी की भी आवाज सुनायी नहीं देती। मुँह धोते धोते अचानक मैंने मुड़कर पूछा रात को पानी बरसा था क्या ?

नीचे हम दोनों शायद अकेले थे। प्रभा अंगीठी जलाकर कुछ कर रही थी और मैं नल पर था। प्रभा ने गत्ते के टुकड़े से अंगीठी झोंकना रोककर पूछा पानी ? कहाँ बरसा था पानी ? और उसकी यह बात

सुनते ही सहसा मुझे याद आ गया—हाँ आज मुझे इस घर को छोड़ देना है, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है। मुझे घर खोजना होगा—कहीं भी कितनी भी मुसीबतों से।

प्रभा ने छोटे-से अल्मोनियम के कटोरदान में खाना भरकर खाट पर रख दिया था। मैंने अन्यमनस्क उसे उठाकर जेब में ठूँसा। कोट पहनते वक्त हथेलियों में पहली बार दर्द हुआ—शायद कल की चूड़ियों के टुकड़े चुनने की तकलीफ़ थी।

बत्ती बुझाकर एक-एक क़दम रखता हुआ जीना उतरा। लगा, आज पाँव कुछ काँप रहे हैं—जूतों की आवाज़ भी कुछ-कुछ अजब-सी निकल रही है। सब-कुछ बड़ा अनजाना और अजीब लग रहा है। निचली सीढ़ी से मुड़कर ऊपर देखा शायद प्रभा मुझे उतरते देख रही हो। लेकिन वहाँ कोई नहीं था। अभी तक सारे जीने साये पड़े थे।

तभी बाहर किसी ने कुण्डी खटखटायी तो मैं इस तरह उछल पड़ा जैसे हत्यारा हूँ और बाहर पुलिस आ खड़ी हुई है। एक पल को सकपका गया, घबराकर चारों ओर देखा, दरवाज़ा खोलूँ या न खोलूँ। फिर सिर के पीछे खुजाता हुआ आगे बढ़ गया।

कुण्डी खटखटाने के साथ फिर ऊँची आवाज़ आयी, तार लेना साहब!

किवाड़ खोले। लाल साफ़ा और खाकी वरदी वाला पियन तार लिये खड़ा था। दस्तख़त करके तार लिया। फिर उसे साइकिल पर चढ़कर जाते देखता रहा। ऊपर बाबूजी का नाम लिखा था।

हल्का-सा उजाला होने लगा था। एक बार फिर तार को पलटकर देखा और मन में आया तार को ज्यों-का त्यों दे जाऊँ। फिर न जाने क्या सोचकर झिर्र हाथों से लिफ़ाफ़ा फाड़ा। पुलावा काग़ज़ पर टाइप की हुई पंक्ति चिपकी थी—मुन्ना एक्सपायर्ड मुन्नी मर गई।

एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और मेरी समझ में ही नहीं आया कि इस अर्थ-हीन वाक्य का अर्थ क्या है? तार की बात सुनकर भाई साहब

और बाबूजी भी घबराए हुए नीचे उतर आए थे, 'कहाँ से आया ? क्या लिखा है ?'

मैं बड़े अस्वाभाविक रूप से धीरे से हँसा और तार उनकी ओर बढ़ा दिया। कहा लिखा है कि मुन्नी मर गई। साफ़ नहीं लिखा कि उसे मार दिया।

और बिना उन पर उस तार की प्रतिक्रिया देखे मैं चला आया—बेहाश और अचेतन। बाद में शायद घर पर रोया-पीटा भी हुई होगी।

मैं जानता था कि प्लेटफ़ार्म किधर लगेगा, इसलिए उसका ठीक उलटी दिशा में बढ़ा ताकि जिधर बढ़ा हूँ उधर ही आने-जाने वाले तंग न करें। गाड़ी चलती रही और मैं खिड़की से बाहर सिर निकाले फटी फटी आँखों से सुबह की फूटती रोशनी को देखता रहा—आज कैसे अजब ढंग से सुबह हो रही है।

मस्तिष्क में एकदम अंधेरा था—ऐसा सन्नाटा जैसे अचानक चलते हुए बिजली वाले कारखाने का फ्यूज़ उड़ जाए और सब कुछ ठप्प होकर एक भयावह सन्नाटे में डूबा रहे। उस क्षण तो एक ही आवाज़ थी जो रक्त की नियमित खट्टर खट्टर में दिमाग़ में गूंज रही थी नसों पर हथौड़े चला रही थी और कानों से पेण्डुलम की तरह टकरा रही थी—मुन्नी मर गई मुन्नी मर गई मुन्नी को मार दिया मुन्नी को मार दिया।

एक बड़े भारी खण्डहर के गुंबद में जैसे चमगादड़ों के पर फड़फड़ाने की कोई हल्की कातर आर्तनादिनी आवाज़ गूंजे और उसकी ध्वनि प्रतिध्वनियाँ सन्नाटे की लहरों की तरह एक के ऊपर चढ़कर अपनी दूसरी लहर की तरह उमड़कर सारे वातावरण में छा जाएँ और और फिर मर-मुर्छा मौन के गाढ़े सन्नाटे में डूब जाए। फिर एक अखण्ड और अभेद्य अंधेरा।।।।

यह मुझे आज हो क्या गया है ! मैंने खुद अपने माथे पर हाथ धरा,

धीरे धीरे इंजन सा ठोका।

तब अचानक गाड़ी एक झटके के साथ रुक गई। दूसरी ओर स्टेशन आ गया था और मुझे यहाँ उतरना था। मैंने एक बार प्लेटफ़ार्म की तरफ़ देखा और बढ़ा-बढ़ा खिड़की से झाँककर अपनी तरफ़ के प्लेटफ़ार्म की ओर देखने लगा। बीच में तीन चमकदार पटरियाँ बिछी थीं, तब प्लेटफ़ॉर्म का ढलान था। अंधेरा अब ज़्यादा नहीं था लेकिन स्टेशन की बत्तियाँ अभी भी जल रही थीं। सामने वाले प्लेटफ़ार्म के दूसरे सिरे पर जमादार झाड़ू लगा रहा था और धूल के गुब्बारे उनके चारों ओर छाए थे। उसने मुँह पर कपड़ा बाँध रखा था। मैं इस तरह बैठा रहा जैसे उतरना ही न हो। पर रस्सी खींची तो अचानक ख़याल आया कि अरे मुझे यहाँ तो उतरना है। झट दरवाज़ा खोला और नीचे गिट्टियों पर उतर आया।

साला पटरियों पर पाँव रखा ही था कि देखा इन्हीं पटरियों पर दूसरी दिशा से धापद दिल्ली से कोई गाड़ी चली आ रही है। दूर सड़क के पुल के नीचे बड़ा-सा इंजन प्रतिक्षण पास आता जा रहा था। झटकों के साथ इंजन धुआँ छोड़ता और लोहे की चमकदार पटरियाँ खनन-खनन करके काँप उठतीं। भयंकर काला दैत्य जैसे लुढ़कता चला आ रहा हो।

सहसा भीतर से जैसे बात उठी—और मैं अपने आपको इसके सामने डाल दूँ तो? इस सवाल के साथ ही बंदूक पकड़े हुए दारोगाजी की तस्वीर कौंध गई। सामने घोड़ा खड़ा था। ज़िन्दगी भर की मुसीबतों से छुटकारा मिल जाएगा। और मुझे लगा जैसे एक अनजान खिंचाव के झोंके से मैं झटककर इंजन के सामने जा पड़ा हूँ, पटरियों पर गिरने से पहले क्षण के अविभाज्य खण्ड में चेतना पर छाया सारा ज्ञान—मकड़ी के जाल-जैसा धुंध—अचानक फट गया है और अपने टूटने पर मैं जाग उठा हूँ। यह मैंने क्या किया? लेकिन तब तक बर्फ़-सी ठण्डी पटरियों ने मुझे अपने से चिपका लिया है और बहुत इंजन का पहिया मुझे छूने लगा है। साँस रोककर मैं जोर से पेड़ को पकड़ लेता हूँ

प्रभा की निरीह सूरत आंखो के सामने आ जाती है। लेकिन इजन की गति के साथ म घिसट रहा हूँ एक पल दो पल । मेरे हाथो की ताकत चुक गई है, मेरी पकड छूट गई है और म जोर लगाकर चीखना चाहता हू—'प्रभा—ा—ा ! और मेरे खुले मुह पर धनधनाते इजन के भारी-भारी पहिये घूमत चले जाते हैं

सारी तस्वीर ऐसी सजीव होकर सामने आ गई कि मुझे लगा कही मैं यह सब कर ही न डालू। लेकिन मने पाँव पटरी स हटा लिया था और तब गाडी आकर सामने खडी हो गई थी। मेरे सामने ही दो डिब्बो के जुडन की खाली जगह थी। मोटे मोट तार और लोहे की भारी भारी हथेलिया-स निकले डण्डे डब्बो की दूरियाँ बनाए रखन के लिए आपस म सट गए थे। एक लालाजी खिडकी स मुँह निकाल दातुन कर रहे थे। म दोनो गाडियो के बीच या ही खडा रहा जसे दो दीवारो क बीच मे घिर गया हूँ।

मन म आया, मान लो अभी हैंडल पकडूँ और इस डिब्ब म जा बठूं तो ? और अगल ही क्षण मन अपन को बम्बइ स विदेशो को जाने वाल पानी के जहाज म खलासी क कपडे पहन हुए देखा लकिन शीघ्र ही वह तस्वीर कोपीन पहने दाढ़ी बढ़ाए, कमण्डल लिये साधु के रूप म बदल गई मन दखा, म बाबा काली कमली वाल के आश्रम में कम्बल लपटे पड़ा रहता हूँ और हृषीकश के एक भारी-स पेड क नीच मरी एक कुटिया है जाने कितना समय यो ही बीत जाता है और तब विधवा वश म एक औरत कइ और बुढ़िया क साथ आकर मेरी कुटी के सामने खडा हो जाती है । नही हरी पहाडी पर म नहाते हुए एक औरत को दखता हू कि अरे यह तो प्रभा है । म प्रभा को पहचान लेता हू, लकिन वह मरी दाढ़ी और मोटे कम्बल क कारण नहीं पहचान पाती फिर दिखायी दिया—लोग मुझे जूता और लाठियो स पीट रहे हैं—नहाती हुई एक जवान औरत के पास मैं पहुचा था और उस प्रभा प्रभा' के नाम स बुलाने लगा था

और फिर एक साथ ही सारी तस्वीरें गडमड होकर एक बड़ी तस्वीर में बदल जाती हैं। अखबार में मरी तस्वीर छपी है— प्रिय बेटा समर तुम्हारी माँ की तबीयत बहुत खराब है, एक बार तुम्हें देखना चाहती है।

सामने वाली ट्रेन का झटका से चौंककर फिर मैं तन्द्रा से जागा सामने वाला ट्रेन का मेरा आने वाला पहिया धीरे धीरे घूमा और दो डिब्बों के बीच की खाली जगह में अचानक कूद पड़ूँ तो ? या लपक कर हैंडल पकड़कर डिब्बे में चढ़ जाऊँ तो ?

अब पीछे वाली ट्रेन भी खिसकने लगी थी दोनों गाड़ियाँ दो विरोधी दिशाओं की तरफ सरक रही थीं। मुझे लगा जैसे मैं तेजी से चक्कर खाते चाक पर खड़ा हूँ भीतर कोई दुहराये चला जा रहा है—कूद पड़ चढ़ जा ! कूद पड़ ! चढ़ जा ! घबराकर मैंने आँखें बन्द कर लीं सारा आकाश डगमगा कर घूमने लगा था।